आदिवासी साहित्य विमर्श

30 रुपए

वागर्थ

अंक 284 मार्च 2019

कहानियाँ

ज्ञानप्रकाश विवेक सुधा ओम ढींगरा
सोनम सिंह रघुबीर ढंड पद्मा शर्मा

स्मरण और अप्रकाशित साक्षात्कार : **कृष्णा सोबती**
रमेश कुंतल मेघ और **खगेंद्र ठाकुर** के आलेख

भारतीय भाषा परिषद

ISSN : 2394-1723

वागर्थ

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका
वर्ष 25, अंक 284, मार्च 2019

संरक्षक
इंद्रनाथ चौधुरी
स्वपन चक्रवर्ती

संपादक
शंभुनाथ

प्रबंध संपादक
डॉ. कुसुम खेमानी

प्रकाशक
नंदलाल शाह

संपादन सहयोग
अंक सज्जा
सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग
36 ए, शेक्सपियर सरणी
कोलकाता–700017
vagarth.hindi@gmail.com
7449503734
(दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे)

आवरण
तारकनाथ राय

इस अंक में

संपादकीय 5

श्रद्धांजलि : कृष्णा सोबती, नामवर सिंह
एक छायादार दरख्त का टूटना : **भारती सिंह** 12
कृष्णा सोबती से **कमल कुमार** का साक्षात्कार 14
नामवर सिंह : सादगी की गरिमा 17

कहानियाँ
खत : **ज्ञान प्रकाश विवेक** 18
खिड़कियों से झाँकती आँखें : **सुधा ओम ढींगरा** 27
फाइल : **पद्मा शर्मा** 35
संदूक कहाँ है : **सोनम सिंह** 39
बाहर के लोग (पंजाबी कहानी) : **रघुबीर ढंड** 43
(अनुवाद : **फूलचंद मानव**)

कविताएँ
जाबिर हुसेन/भारत यायावर/हरीश चंद्र पांडे/स्वप्निल श्रीवास्तव/अतुल जैन/अजय कुमार पांडे अनिरुद्ध सिन्हा/गौरव गुप्ता/पूजा कुमारी 49
मराठी कविताएँ : **संध्या रंगारी** (अनुवाद : **सूर्यनारायण रणसुभे**) 61

परिचर्चा
आदिवासी साहित्य विमर्श : **हरिराम मीणा/महादेव टोप्पो/वाल्टर भेंगरा 'तरुण'/प्रमोद मीणा/सुनील कुमार 'सुमन'/विश्वासी एक्का**
(प्रस्तुति : **अनुज लुगुन**) 63

विशेष आलेख

हजारी प्रसाद द्विवेदी : इतिहास तथा साहित्य की जुगलबंदी : **रमेश कुंतल मेघ** 90

इतिहास और काल्पनिक यथार्थ : **खगेंद्र ठाकुर** 94

विश्व दृष्टि

उड़ान (चीनी कहानी) : **मो यान** (अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद : **विजय शर्मा** 98

वातायन

पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम : **एकांत श्रीवास्तव** 106

समीक्षा संवाद

स्त्री और दलित : पीड़ा की नदियाँ : **यशस्विनी पांडेय** 109

सोशल मीडिया 117

विविध

मत-मतांतर/किताबें/सांस्कृतिक गतिविधियाँ 120

लघुकथाएँ

कुंजी 48/तरीका 89/आधुनिकताबोध 105 : **सुधीर निगम**

देश-देशांतर

भीमा भोई/रोरे हपीली (न्यूजीलैंड)

बैंक और संपर्क में परिवर्तन कृपया नोट कर लें

साधारण डाक खर्च सहित **वार्षिक सदस्यता** : 300 रुपए/**तीन साल** : 850 रुपए

आजीवन : 3000 रुपए/ विदेश : **वार्षिक** : 40 डॉलर

(रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से मंगाने पर वार्षिक रु.240 अतिरिक्त भेजें)

भारतीय भाषा परिषद के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें

एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान Bharatiya Bhasha Parishad के नाम या नेफ्ट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट, A/c no. 8111974982, IFSC Code KKBK0006590 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।

भुगतान के बाद एस एम एस कर दें – मो.9163372683 : **मीनाक्षी दत्ता** (सदस्यता और बिक्री) 11 बजे दिन से 6 बजे संध्या तक

समय पर भुगतान करने वाली एजेंसियों को ही हम भविष्य में पत्रिका भेज पाएंगे।

● प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

● वागर्थ से संबंधित सभी विवाद कोलकाता न्यायालय के अधीन होगा।

● **www.bharatiyabhashaparishad.org**

प्रबंध : **अपूर्व कुमार बैनर्जी, अमृता चतुर्वेदी** – प्रूफ संशोधन : **मिथिलेश प्रसाद**

वितरण तथा अन्य कार्य : **एस पी श्रीवास्तव, सूर्यदेव सिंह, अशोक बारीक, बैद्यनाथ कामती, खेत्राबासी बारीक, संतोष सिंह, प्रदीप नायक, प्रेम नायक**

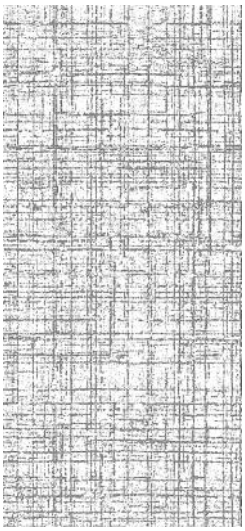

संपादकीय

बौद्धिक पुनर्जागरण

प्राचीन चिकित्सा ग्रंथ 'चरक संहिता' का संपादन करने वाले पुनर्वसु एक दिन अपने शिष्य अग्निवेश के साथ एक जंगल से गुजर रहे थे। उन्होंने एक जगह कुछ देखते ही अचानक कहा, 'महानाश आने वाला है!' अग्निवेश ने पूछा 'कैसा महानाश?' पुनर्वसु बोले, 'मैं देखता हूँ कि जल दूषित हो रहा है, पृथ्वी दूषित हो रही है। अनाज अपनी शक्ति छोड़ देगा। औषधियों का प्रभाव नहीं रहेगा। पृथ्वी पर टूटते तारे गिरेंगे। विनाशकारी आंधियाँ चलेंगी, भूकंप होंगे। मनुष्य बचेगा नहीं, बचेगा नहीं!' अग्निवेश ने हाथ जोड़ कर कहा, 'आपने दुनिया के हर रोग का इलाज लिख दिया, फिर यह विनाश आएगा ही क्यों?' पुनर्वसु बोले, 'बुद्धि का बिगड़ जाना ही महानाश का कारण होगा। बुद्धि के बिगड़ने से सत्य में रुचि नहीं रहती।' क्या यह 'पोस्ट ट्रुथ' का एक ऐसा ही समय है?

धर्मों में भले आस्था पर बल दिया जाता हो, 'पंचतंत्र', 'जातक कथा' जैसी लोककथाओं में बुद्धि, युक्ति और वैज्ञानिक सोच की एक न एक बात मिलती है। 'पंचतंत्र' में है, 'बुद्धि से कुछ भी अगम्य नहीं है।' बौद्ध जातक कथाओं में धार्मिक पाखंड का मखौल है और बुद्धि से काम लेने की बात कही गई है। बुद्धि हो तो कमजोर शक्तिशाली की हिंसा से बच सकता है, जैसे एक कथा में शेर से खरगोश बचा। लोककथाओं में बार-बार दिखाया गया है कि बुद्धि में ही बल है। प्राचीन काल से राजसत्ता और धर्मशास्त्र से भिन्न लोक की भूमि पर सत्य की खोज बौद्धिक-तार्किक जमीन पर हुई है। मनुष्य जब नदी में तैरता है, पहाड़ पर चढ़ता है या भागती गाड़ियों के बीच से सड़क पार करता है, उस समय वह बुद्धि के अलावा किसी दूसरी चीज पर भरोसा नहीं करता।

एक विडंबना यह है कि हमेशा ही कुछ व्यक्ति अपने को दूसरों से बुद्धिमान घोषित करते रहे हैं। महाभारत में है, 'सभी को अपनी ही बुद्धि अधिक महत्वपूर्ण लगती है। वे दूसरों की बुद्धि की निंदा और अपनी बुद्धि की बार-बार सराहना करते

हैं।' (शांति पर्व)। महाभारत में बौद्धिक अहंकार और तर्क की उपेक्षा के अनगिनत दृश्य हैं। वर्तमान दौर में विकसित सभ्यता के बावजूद बुद्धि से सोचना कम हुआ है और तर्क का विस्थापन हुआ है जो लोकतंत्र के ह्रास का चिह्न है। क्या यह एक नए महाविनाश की ओर यात्रा है?

समाज में अंधविश्वास फैले होने के बावजूद प्राचीन युग में बुद्धि पर चर्चा होती थी। बाणभट्ट ने लिखा था, 'महत्वपूर्ण लोगों की बुद्धि स्वभाव से स्वतंत्र होती है और अपनी रुचि से चलती है।' एक संस्कृत सुभाषित में है, 'मनुष्य की निजी विमर्श शक्ति की जय हो!' (विमर्शशक्तिर्निजा जयति)। सवाल है, सामुदायिक कट्टरवाद और उपभोक्तावाद के वर्तमान दौर में बौद्धिक स्वतंत्रता और निजी विचार शक्ति कितनी बची है?

भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'अंधेर नगरी' नाटक आज फिर अर्थपूर्ण लग सकता है। इसमें एक संस्कृत श्लोक है जिसकी ओर कम ध्यान दिया जाता है। उसका अर्थ है, 'जो चंदन, आम तथा चंपा वन को काट कर कीकर के वृक्ष की रक्षा करता है, जो हंस और कोयल के प्रति हिंसक होकर काक-लीला में रुचि लेता है, जो हाथी के बदले गधा खरीदता है और कपूर तथा कपास को उनके श्वेत रंग के कारण एक जैसा समझता है- जहां के गुणी जन ऐसी समझ रखते हों, उस देश को नमस्कार है!' क्या रक्षणीय है- क्या त्याज्य है, क्या सुरुचि है- क्या कुरुचि है, बाजार में क्या खो कर क्या खरीदा जा रहा है, जहाँ इन सबका विवेक नहीं है, वही तो अंधेर नगरी है -'अंधेर नगरी चौपट राजा!' ऐसी ही पृष्ठभूमि में भारतेंदु ने ललकारा था, 'तासों अब लौं करी, करी सों, पै अब जागिय'। 'अंधेर नगरी' का संदेश है जो राजा बहरा है, निकम्मा है, अंधा है और अन्याय पर उतारू है, वह अंततः सूली पर चढ़ता है! कहना न होगा कि 'अंधेर नगरी' एक लोककथा पर आधारित नाटक है।

समृद्धि की कथाओं के भीतर अंधेरा है

21वीं सदी में लोक कथाओं से विच्छिन्नता के साथ लोकबुद्धि भी धीरे-धीरे विलुप्त-सी हो गई है। हालांकि कथाओं का आज भी अंत नहीं हुआ है। बाजार के विज्ञापनों, रोज के राजनीतिक ड्रामा और विकास के दृश्यों में उनकी बाढ़ है। अब भौतिक जीवन में पहले से अधिक कथाएं और रोचक गल्प हैं, लेकिन उनमें दुर्बुद्धि का डेरा है। कोई विकास के आंकड़े दिखा रहा है जिनके पीछे देश में बढ़ रहे बेरोजगारों का भय नहीं दिखता। कहीं सीबीआई ईमानदारी का देवदूत है, लेकिन शीर्ष पर भ्रष्टाचार ही औचित्य पाता है। धर्म ने मुंडमाला पहन ली है तो धर्मनिरपेक्षता ने कंठीमाला और ताबीज धारण कर ली है। अब वे किस्सों में छिप कर आने लगे हैं!

आजकल तेल, साबुन, गंजी, दर्दनाशक दवाओं आदि के विज्ञापनों में जादुई कथाएँ होती हैं। फिल्म और क्रिकेट की दुनियाओं के सेलेब खुद जिन उपभोक्ता चीजों का कभी इस्तेमाल नहीं करते, पैसा कमाने के लिए विज्ञापनों में उनके गुण बखानते दिखते हैं। आम लोग बच्चों की तरह ऐसी कथाएं सच मान लेते हैं। विराट कोहली और अनुष्का शर्मा अपनी प्रेम कथा में बताते हैं कि लाखों की जड़ीदार पोशाक पहने बिना जीवन में सदा साथ रहने और दूसरे का केयर करने का संकल्प नहीं लिया जा सकता। जावेद अख्तर घुटनों के उस दर्द का इलाज बताते घूमते हैं जो वस्तुतः कभी ठीक नहीं हो पाता। बुद्धिजीवियों, कलाकारों और लेखकों से बाजार दुरभि संधि में लगा है।

आज की डिजिटल कथाओं में दिवास्वप्न भरे हैं। इन कथाओं की छवियां पंचतंत्र और जातक कथाओं की तरह लोगों को सावधान नहीं करतीं, बल्कि उनके मन में अज्ञानता का निर्माण करती हैं। आज हम किसी भी युग की तुलना में कथाओं से ज्यादा घिरे हैं, इसके साथ-साथ ज्ञान के

विस्थापन से भी।

सभ्यता का अर्थ महज प्रौद्योगिक विकास नहीं है। अहंकार और लोभ के संसार में बसा रहना कभी सभ्यता नहीं है। सभ्यता वस्तुतः विकास के साथ तर्क क्षमता, प्रेम और ईमानदारी की एक उच्च भूमि पर पहुंचना है। यदि देह पर रक्त और आंखों में आंसू आज भी भारतीय नियति है तो क्या नियति से वह मुठभेड़ व्यर्थ गई जिसका नेहरू ने आश्वासन दिया था या वह मुठभेड़ वस्तुतः शुरू ही नहीं हुई? यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो गया है कि 'भारत के लोग' और 'भारतीय राष्ट्र' क्या दो चीजें हैं?

कहा जाता है कि वैश्विक समृद्धि अपने शिखर पर है। लेकिन इस समृद्धि की जो कथाएं हैं उनमें बुद्धि की जगह धूर्त्तता के संदेश ज्यादा हैं। समृद्धि की चमक के भीतर उत्पादन और रोजगार में आए गत्यावरोध का अंधेरा जमना शुरू हो गया है। हो सकता है, यह समृद्धि जल्दी ही बैलून-सा फटने लगे और हवा निकल जाए।

उदार बुद्धिजीवियों के सबसे बड़े देश फ्रांस के राष्ट्रपति मक्रां ओसाका में जी-20 की शिखर वार्ता (2019) में गए हुए थे। उन्होंने मारे गए पत्रकार जमाल खाशोगी की हत्या की साजिश में लिप्त बताए जा रहे सऊदी प्रिंस मुहम्मद बिन सलमान से हाथ मिलाते हुए कहा, 'चिंता मत करो!' (बस तेल थोड़ा सस्ता कर दो ताकि मैं फ्रांस को असंतोष से बाहर निकाल सकूं!!) आज यह निश्चित नहीं है कि विभीषण रावण के शिविर में लौट कर कभी नहीं जाएगा।

आदिवासियों का स्थान पहले की तरह दुर्गम, अपरिचित और बंद नहीं है

बुद्धि आज 'टाइमिंग' और 'फायदे' पर ज्यादा जोर देती है। सही अवसर पर ही कोई खैरात, कोई छूट, कोई धर-पकड़, सीबीआई की जांच, कोई घोषणा और कोई हत्या। बुद्धि का आज दूसरा संबंध फायदे से है। हर मुद्दे पर मन में यह सवाल होता है- मुझे क्या मिलेगा?

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि बुद्धि और भोलेपन में, बुद्धि और प्राकृतिक चेतना में, बुद्धि और 'कामन सेंस' में गहरा संबंध है। सचमुच की बुद्धि स्वतंत्रता की तड़प पैदा करने वाली होती है और मानवीय होती है।

आदिवासियों के पास बुद्धि का एक अपना भंडार है जिससे सभ्य होते गए लोग धीरे-धीरे इतनी दूर चले गए हैं कि उन्होंने 'जलवायु परिवर्तन' का भयानक संकट खड़ा कर दिया है। हर ओर प्रदूषण का साम्राज्य है। आदिवासियों के लिए पहाड़, नदी-झरने, पेड़, जीव-जंतु बल्कि समूची प्रकृति उनकी जिंदगी के समान ही महत्वपूर्ण है। हम कह सकते हैं कि अतिवाद नहीं, सामंजस्य ही प्रकृति का लक्षण है। यह जीवन में भी जरूरी है। लेकिन अपने को सभ्य समझने वाले व्यक्तियों के लिए प्राकृतिक स्थल अब महज पैकेज टूर के मामले हैं। उनके भ्रम के संसार में टमाटर प्रकृति है और टोमेटो सॉस सभ्यता है!

भारत में आदिवासी 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या के 8.6 प्रतिशत, अर्थात फिलहाल 11 करोड़ के आसपास हैं। इसमें संदेह नहीं कि आदिवासी सैकड़ों साल से प्रकृति की गोद में रहे हैं और देश के भीतरी हिस्सों में स्वायत्तता के साथ बसे हुए हैं। भारत गुलाम हुआ, पर आदिवासी कभी गुलाम नहीं हुए। वे 'नौकरी' की तरह 'गुलामी' शब्द से अपरिचित रहे हैं।

आदिवासियों पर पिछले कुछ सौ वर्षों से लगातार अत्याचार होते रहे हैं। उपनिवेशवादियों ने दुनिया भर में आदिवासियों पर दमनमूलक कार्रवाई की और उन्हें शिक्षा ऐसी दी जिससे वे अपनी भाषा और बौद्धिक परंपरा से कट जाएँ और इस विच्छिन्नता की बुनियाद पर अंधानुकरण की पश्चिमी सभ्यता

खड़ी हो। व्यापारियों ने उनके जंगल-जमीनों को लूटा और उन्हें बार-बार बेदखल किया गया। 40 साल पहले तक मणिपुर के कई माता-पिता अपनी लड़कियों का चेहरा बचपन में ही गोदना से बिगाड़ देते थे, ताकि बाहरी लोगों के लिए वे अनाकर्षक हो जाएं और उनका यौन शोषण न हो।

प्राचीन काल से भारत के आदिवासियों के प्रति आम देशवासियों का रुख अ-हस्तक्षेप और सद्भावना का रहा है। पांच सौ साल पहले के 'रामचरितमानस' में आदिवासियों के प्रति सद्भावना ही व्यक्त नहीं हुई है, उनकी लोकबुद्धि और सामाजिक मिलनसारिता की सराहना भी है।

इस बिंदु पर कहा जाना चाहिए कि अतीत के किसी आघात को ढोकर कुछ न होगा, सिर्फ बुरा होगा। अतीत पर गर्व करने के लिए बहुत कुछ है और उससे सबक लेने के लिए भी बहुत कुछ है। कई लोग कहते हैं, अतीत को गोली मारो! अतीत तोप चलाता है, यदि उसे कोई गोली मारता है!

सवाल उठता है, आदिवासियों की स्वतंत्र पहचान का अर्थ क्या शेष भारतीय जीवन और विश्व से अलिप्त रहना है? क्या उसका अर्थ विकासों से दूर रहते हुए अपनी प्राकृतिक अवस्था से सांस्कृतिक संतुष्टि में देखा जाए? आज आदिवासियों की स्वतंत्र पहचान का अर्थ बदला है। यह विकास की एकतरफा और दूषित प्रक्रिया में शामिल न होना है और वस्तुतः अपने भोलेपन, निष्कलंकता, स्वच्छंदता, पर्यावरण, पृथ्वी से प्रेम और जीवन के उच्च मूल्यों को बचाना है।

बार-बार कहा जाता है कि आधुनिक भारतवासियों का आदिवासियों के समक्ष अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन अशिष्टता है। यह भी कहा जाता है कि आदिवासियों को मुख्य धारा में लाना है। क्या एक विविधतापूर्ण देश में मुख्य धारा जैसी कोई चीज हो सकती है? मुख्य धारा की अवधारणा एक सभ्यतागत दंभ है। हमारे समाज में कोई एक मुख्य धारा नहीं है। वस्तुतः कहीं भी एक बनी-बनाई मुख्य धारा नहीं हो सकती जिसमें बाकी को बस शामिल होना हो। 'मुख्य धारा-उप धारा' एक काल्पनिक विभाजन है। यह वस्तुतः औपनिवेशिक मानसिकता की देन है। आखिरकार हम बौद्धिकता के संसार में औपनिवेशिक विकृतियों को कब तक ढोते रहेंगे और विभाजन-दर-विभाजन के शिकार होंगे?

आज आदिवासियों का 'स्थान' पहले की तरह दुर्गम, अपरिचित और बंद नहीं है। हर आदिवासी जनजाति का, उनकी भाषा और संस्कृति का एक अपना विश्व है। पर आज उनका एक अपना देश भी है और एक बृहत्तर विश्व भी है। वे आधुनिकता, संचार क्रांति और उपभोक्ता वस्तुओं और शहरीकरण से अछूते नहीं रह सकते, लेकिन अंधानुकरण से बच सकते हैं। आदिवासियों की स्वतंत्र पहचान का संबंध अंधानुकरण से बचने से है, अपनी बुद्धि की निर्मलता बरकरार रखने से है तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुनाफाखोरी और अपने हाशियाकरण के विरुद्ध जल, जंगल और जमीन का बलात दोहन रोकने से है। उनका संघर्ष अपने ही घर में अजनबी हो जाने से है।

आदिवासियों का आधुनिक विज्ञानों से रिश्ता और अंधविश्वासों से उनकी मुक्ति उनकी प्राकृतिक बौद्धिकता का ही विस्तार है। उनका शिक्षक, वकील, राजनीतिज्ञ, व्यापारी, डाक्टर, तकनीकविद, क्लर्क, इंजीनियर बनना उनकी अपनी अस्मिता का त्याग नहीं है और न ही यह अपनी नई पेशागत पहचानों में दूसरों जैसा बन जाना है। कोशिश हो सकती है कि वे दृढ़ता के साथ अपनी नई जिम्मेदारियों में अपने पेशे के दूसरे व्यक्तियों से भिन्न दिखें-अपनी प्रखर होती बुद्धि के साथ वे सरल, निष्कलंक और पृथ्वी से गहरा प्रेम करने वाले भारत के सबसे संवेदनशील लोग के रूप में भी दिखें, महज राष्ट्र के रूप में नहीं! अस्मिता और अंध-भौतिक विकास

में अंतर्विरोध है, लेकिन अस्मिता और मूल्योन्मुख भौतिक विकास में कैसा अंतर्विरोध!

यह भी कहा जा सकता है कि आज आदिवासियों की तरह भोले और जिद्दी लोग ही संघर्षशील हो सकते हैं, अन्यथा बुद्धि ज्यादा हुई नहीं कि पहला प्रश्न मुँह बाता है–मुझे क्या मिलेगा?

सच न कह पाने की ग्लानि

ग्रीक दार्शनिक सुकरात और उपनिषद के चरित्र गाड़ीवान रैक्व बुद्धिजीवियों के दो प्राचीन उदाहरण हैं। कीर्केगोर्द ने सुकरात के बारे में लिखा था कि जिस तरह किसी मृत देह को घूस देना संभव नहीं है, उसी तरह सुकरात को भी प्रलोभन देकर विचारों से डिगाना संभव नहीं था। सुकरात ने जहर पिया, पर अपनी बुद्धि नहीं बेची। गाड़ीवान रैक्व ने राजा जानश्रुति के सोने के उपहारों को ठुकराते हुए कहा, 'मैं तुम्हें अपना कोई ज्ञान नहीं दूंगा।' आज पैसा देकर बुद्धि खरीदी जा सकती है, बुद्धिजीवियों को खरीदा जा सकता है। किसी समय ज्ञानवान व्यक्ति बिकाऊ जिंस नहीं थे। कुंभनदास ने कहा था, 'संतन को कहा सीकरी सो काम'। भक्त कवि दरबारी ज्ञानियों और कलाकारों से भिन्न धातु के लोग थे। उनमें सत्ता के प्रलोभन में न पड़ कर सत्य कहने का साहस था।

आज बहुत से बुद्धिजीवी सच जान जाते हैं, पर क्षमतावान के आगे कह नहीं पाते। वे व्यवस्था में फँसे–दबे होने की वजह से सच न कह पाने का कारुणिक बोझ मन में ढोते रहते हैं या 'टाइमिंग' देखते हैं। वे जोखिम नहीं उठाते। उन्हें अपने भविष्य की चिंता होती है। वे गाड़ी के नीचे रास्ते पर रहने वाले रैक्व या गैलेलियो की नियति नहीं पाना चाहते। पहले के बुद्धिजीवियों की तरह असुरक्षित जीवन उनसे चुना नहीं जाता।

गैलेलियो ने बाइबिल की धारणा को चुनौती देते हुए पांच सौ साल पहले कहा था कि सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ नहीं, बल्कि पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती है। राजा ने जब इस नए कथन पर उसे कैद में डाल दिया और यंत्रणा दी तो गैलेलियो ने अपना मत बदल दिया। लेकिन वह जीवन भर सच से पीछे हट जाने की ग्लानि और पीड़ा झेलता रहा।

बुद्धिजीवी जब वास्तविकता समझ जाते हैं, तो उनका यह समझ जाना उन पर एक बड़ा दायित्व लाद देता है। यह भी सच है कि उन्हें कई बार चुप रहना पड़ता है। फिर भी यदि वे एक दार्शनिक अपराध या ग्लानि का बोध करते हैं तो ऐसे बुद्धिजीवी अपनी बौद्धिक पीड़ा में थोड़े बचे माने जा सकते हैं। वे उनसे भिन्न कहे जा सकते हैं जो न सिर्फ जानबूझ कर सच को दबाते हैं, बल्कि प्रलोभन में झूठ के निर्लज्ज प्रचारक होते हैं।

अब सामान्यतः हालत यह है कि बुद्धिजीवियों का वास्तविक जीवन अपनी ही विचारधारा और बड़ी–बड़ी बातों के विपरीत बिल्कुल सुविधावादी और व्यावसायिक होता जा रहा है, अब ग्लानि की स्थिति नहीं होती। उनके शब्द और कर्म में भारी अंतर होता है। हालांकि आज भी ऐसे कई बुद्धिजीवी हैं जो कबीर की इस मनःस्थिति के करीब हैं, 'सुखिया सब संसार है खावे अरु सोवे। दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवे।'

बुद्धिजीवी किसे कहा जाए

बुद्धिजीवी कहने से जिस तरह रूसो, सार्त्र, बर्टेंड रसेल या भारतीय संदर्भ में कबीर, राममोहन राय, डिरोजियो, फुले, भारतेंदु हरिश्चंद्र, रवींद्रनाथ, नर्मद, प्रेमचंद, अज्ञेय, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि का बिंब बनता है, आज के समय में उस तरह की बौद्धिक धातु देखने को नहीं मिलती। आखिरकार बुद्धि और तर्क से सोचने की जो परंपरा 19वीं सदी के नवजागरण काल में बनी थी, वह आज मिटती क्यों दिख रही है?

बुद्धिजीवी वह है जो तर्क से सोचता है, बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए जीता और मरता है। वह इस स्वतंत्रता को कहीं बंधक नहीं रखता। बुद्धिजीवी

को उसकी बुद्धि, उसका आंतरिक विवेक ही सत्य और न्याय का मार्ग दिखाता है। यह बुद्धि है जो उसे सच-झूठ बताती है, छल और लोभ से बचाती है। बुद्धिजीवी का काम है बुद्धि से धर्म और नैतिकता के गुणों को तय करना, बुद्धि से ही राजनीति करना। उसका काम है बुद्धि को बाजार के प्रलोभनों और राजनीति के शार्टकट से दूर रखना, क्योंकि बाजारतंत्र और राजनीतिक रणनीति का अंग बनते ही बुद्धिजीविता परजीविता में बदल जाती है।

अगर कोई सचमुच बुद्धिजीवी होगा, वह बुद्धि का इस्तेमाल हमेशा सौहार्द, उच्चतर स्वतंत्रता और न्याय के लिए करेगा। वह झूठ या संकीर्णता का प्रचारक नहीं बनेगा। वह बहुज्ञता छोड़ कर लोभवश विशेषज्ञता में कैद नहीं रहेगा। वह गैर-जरूरी सुखों के पीछे नहीं भागेगा और ढुलमुल नहीं होगा। हम जानते हैं कि यह सब अब दुर्लभ होता जा रहा है।

सार्त्र ने 1968 में आम लोगों की तरह सड़क पर आकर महसूस किया था कि बुद्धिजीवी के रूप में अपनी पहचान तोड़नी होगी। हालांकि उस दौर तक दुनिया में यह जज्बा था कि ज्ञान ही क्षमता है। धीरे-धीरे स्पष्ट होता गया कि ज्ञान सत्ता संघर्ष में किस तरह विकृत और अनुकूलित हो जाता है। ज्ञान इस हद तक विकृत कर दिया जाता है कि हनुमान को दलित, जाट और न जाने क्या-क्या साबित किया जाने लगता है। कौरवों को टेस्ट ट्यूब से जन्मा बताया जाता है। इसके अलावा, सत्ता संघर्ष में ज्ञान का एक अंश ही संपूर्ण ज्ञान हो जाता है, वह अंतिम ज्ञान हो जाता है।

कभी बुद्धिजीवियों के पास सिद्धांत और विश्वास थे। वे देश, समाज और शासन के बारे में आलोचनात्मक ढंग से सोचते थे। फ्रांसीसी कलाकार आगस्त रोदीं (1840-1917) का एक मूर्तिशिल्प है- 'द थिंकर'। इसमें एक निर्वस्त्र आदमी अपने हाथ पर ठोड़ी टेके कुछ चिंतन करते दिखाया गया है। पहले हर बुद्धिजीवी पूर्वग्रह-मुक्त चिंतक होता था। बाद में बुद्धिजीवी समुदाय में मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा शामिल हुआ। उसमें चिंतनशील लेखकों, वैज्ञानिकों और आंदोलनकारियों के अलावा बड़े पैमाने पर शिक्षक, न्यायविद, इंजीनियर, शिल्पी, डाक्टर, सरकारी अफसर, राजनीतिज्ञ आदि भी गिने जाने लगे। यह भी हुआ कि धीरे-धीरे विचारों को चाट और पटाखा बना दिया गया।

ग्राम्शी ने जन संगठन से जुड़े 'आर्गेनिक इंटलैक्चुअल' की धारणा दी थी। इस समय बहुराष्ट्रीय कंपनियों के 'आर्गेनिक इंटलेक्चुअल' हैं जिनमें कई व्यक्ति एनजीओ से जुड़े हैं।

उत्तर-औपनिवेशिक सबाल्टर्न सिद्धांतों के तहत 'सामुदायिक बुद्धिजीवी' की भी एक कोटि बनी है- जनता के जितने टुकड़े, उतनी तरह के बुद्धिजीवी! इधर कई तरह से शिक्षित और सुखी 'एलीट बुद्धिजीवी' उभरे हैं जिनका एक काम आनंदपूर्वक गरीबी पर बहस चलाए रखना है। कुछ बुद्धिजीवी राजनीतिक दलों के 'थिंक टैंक' हैं। एक कोटि 'सोशल मीडिया का बुद्धिजीवी' है। सार्त्र से आगे बढ़ कर नोआॅम चाम्स्की ने नए युग में कहा कि बुद्धिजीवी अब राजनीतिक खाद्य वस्तु और सत्ता-प्रतिष्ठान के पोषक होते हैं। आज यह दृश्य सार्वभौम है।

मीडियाशाहों से अपील

हाल का एक बड़ा उदाहरण एक अमीर क्लब द्वारा 'भारत की अवधारणा' विषय पर आयोजित डिबेट है जिसे कैंसर जैसे रोग का एक कारण कहे जा रहे मशहूर ब्रांड पान बहार ने प्रायोजित किया था। इसके खर्चे पर प्रायः सभी बड़े दलों के राजनीतिक चिंतक और बुद्धिजीवी आए थे। श्रोताओं में क्लब के अमीर और पढ़े-लिखे लोग थे। ये सभी विचार विलास के लिए आए थे। 'राष्ट्र' के लिए चिंतित इनमें से किसी व्यक्ति ने नहीं सोचा कि विचार की दुनिया में पान मसाले का क्या काम है, वे हिस्सा क्यों ले ऐसे प्रयोजनों में। लेकिन नहीं, कीमत मिले तो आज कुछ भी बेचा जा सकता है।

आज मार्क्सवाद, गांधीवाद, राष्ट्रवाद और अन्य सभी वादों से ऊपर है फायदावाद!

इस दौर के अधिकांश बुद्धिजीवियों की एक खूबी यह है कि वे तथ्यों को दबाने, इच्छानुसार तथ्य चुनने और झूठ के प्रचार की कला में माहिर हैं। सोशल मीडिया ने बुद्धिजीवी वर्गों का काफी विस्तार किया है। यह जबर्दस्ती एक ऐसी अदालत बनी हुई है, जहाँ मुकदमा की शुरुआत में ही फैसला सुना दिया जाता है और तथ्यों तथा तर्क की कोई जरूरत नहीं होती। भीड़ का न्याय सड़क से सोशल मीडिया तक है और भाषा-आतंकवाद चल रहा है। इस पर वैचारिक चैट प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' के मीर और मिरजा साहब की याद दिलाती है। दोनों नवाब विपत्तियों से घिरे लखनऊ शहर से काफी दूर जाकर आराम से शतरंज खेलते रहते हैं और खेलते-खेलते उनकी झड़प हिंसक हो उठती है।

सिगरेट के डिब्बे पर पीने वालों के लिए चेतावनी लिखी होती है। कुछ व्यक्ति हैं जो 'चेन स्मोकिंग' की तरह सोशल मीडिया पर लिखते हैं और उन्माद निर्मित करते हैं। यहाँ तथ्य, तर्क और बुद्धि से कोई संबंध बचा नहीं होता। देखा जा सकता है कि आज सोशल मीडिया ने एक भयावह बौद्धिक माहौल पैदा कर दिया है। इसका दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है। यह मनुष्य को कुछ नहीं सिर्फ खोखला करता है। जुकेरबर्ग जैसे मीडियाशाहों से कहा जाना चाहिए कि वे यदि सचमुच मानवता के लिए चिंतित हैं तो फेसबुक, व्हाट्सएप जैसी जगहों के खुलते ही यूजर को सबसे पहले यह पढ़ने को मिले- 'यह चेतना के लिए हानिकारक हो सकता है!'

ज्ञान में थोड़ा मनुष्य बने रहना

प्रेमचंद ने कहा था, 'इंटेलेजेंसिया में जो भी शक्ति आती है, वह जनता से आती है।' कहा जाता रहा है कि जनता अज्ञानी नहीं है, वह सब समझती है। क्या आज भी यह बात कही जा सकती है? निराला ने एक कविता में कहा था, 'जनता पर जादू चला राजे के समाज का/...आंख-कान मूंद कर जनता ने डुबकियां लीं।' जनता कभी-कभी अंधी और उन्मादी हो जाती है। आज बाजार और राजनीति दोनों ओर से अज्ञानता का बड़े पैमाने पर निर्माण किया जा रहा है। इसका विकसित तकनीकी साधनों द्वारा प्रचार किया जा रहा है। बड़ी संख्या में लोग इस प्रचार के समुद्र में डुबकियां लगा रहे हैं। वे जाति, धर्म, क्षेत्रीयता आदि की मिथ्या भेदभावपूर्ण भावनाओं से घिरते जा रहे हैं और हिंसा से भरे हुए हैं। क्या ऐसे उन्मादी लोगों से बुद्धिजीवी और कलाकार अपने को जोड़ सकते हैं? निश्चय ही बड़ी संख्या में वस्तुतः वे यही कर रहे हैं। लेकिन ज्ञान और किसी भी तरह प्राप्त की जा रही सत्ता दोनों एक चीज नहीं हैं। ज्ञान सत्ता विमर्श नहीं है।

बौद्धिक पुनर्जागरण ज्ञान को सत्ता विमर्श की सीमारेखाओं से मुक्त करना है। यह तथ्य, तर्क और बुद्धि के महत्व को फिर स्थापित करना है। यह बाढ़ में बहना नहीं, तैरना है।

ज्ञान और सत्ता के बीच संबंध है, लेकिन ज्ञान सत्ता का मालवाहक नहीं है। कहा जा सकता है, ज्ञान में मनुष्य बने रहना आज जोखिम भरा है, पर अच्छा है।

प्राचीन ग्रीस के शहरों में ज्ञानियों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों और कानूनची लोगों की भीड़ रहती थी। लोगों ने दार्शनिक डायोजिनिस को जब एक दिन दोपहर में भी लालटेन लेकर चलते देखा, किसी ने पूछ दिया, 'इस तरह कहाँ जा रहे हैं?' डायोजिनिस ने जवाब दिया, 'ज्ञानियों के बीच मनुष्य को खोजने निकला हूँ!'

शंभुनाथ

श्रद्धांजलि

[18 फरवरी 1925 - 25 जनवरी 2019]

कृष्णा सोबती : एक छायादार दरख्त का टूटना

भारती सिंह

'बेख़ुदी ले गई कहाँ हमको, देर से इंतजार है अपना।' कृष्णा सोबती की शख्सियत इतनी बड़ी थी कि वे 'बड़े लोगों' के दरम्यान एक विशाल दरख्त की तरह साहित्यिक दुनिया की अकूत हलचलों को समेटे, शांत और धीर समुद्र की-सी गहराई लपेटे, सुरम्य पहाड़ियों-सी सौम्य थीं। किसी गांव के मध्य 'पीपल' के विराट दरख्त-सी वे थीं जो अपने कोटरों में न जाने कितनी लोक कथाएँ संजोए रखती है। जब कोई पथिक सुस्ताने की खातिर बैठता है, उसकी शिराएँ भी छाया देने लगती हैं। गांव की तब न जाने कितनी कहानियाँ पत्तियों की उन्मादी हलचल से होकर उस पथिक तक पहुँचने लगती हैं। इस गरिमामय विशाल शख्सियत को 'भारतीय ज्ञानपीठ' के सम्मान से नवाजा गया था। उनकी लेखनी को 'स्त्री-विमर्श' का टर्निंग प्वॉइंट माना जाता है। ऐसे दरख्त का टूटना सबके लिए दुखद है।

मैं जब उनसे मिली थी, मैंने महसूस किया था कि वह बहुत धीरे-धीरे जहीन तरीके से बोल रही हैं। वे शुरुआती बातचीत राजनीति को लेकर करती रहीं। पल भर को रुकतीं, फिर जैसे कोई बात उनके जेहन में तेजी से आती और वे फिर बोलना शुरू करतीं। मुख्यतः मुलायम, मायावती, अखिलेश, भाजपा, कांग्रेस उनकी राजनीतिक बातों के केंद्र में थे!

मैंने पूछा, इन दिनों क्या लिखा जा रहा है? उन्होंने बताया कि वे मुक्तिबोध पर काम कर रहीं हैं और गुजरात और पाकिस्तान को लेकर भी कुछ कर रही हैं। सुन कर हैरान थी! 92 साल की उम्र और चेतना की इतनी सजगता! यकीनन देश-दुनिया की गतिविधियों पर उनकी पैनी नजर अब भी बरकरार थी। अनुभूतियाँ अब भी उन्हें आच्छादित की हुई थीं। इसलिए उम्र के इस पड़ाव पर भी लेखकीय जिम्मेदारी से वे लबरेज दिखीं।

वे इधर तेजी से विकृत हो रही हिंदी को लेकर उदास और चिंतित थीं। उन्होंने अफसोस जताते हुए राजनीतिज्ञों की भाषा पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया। वैचारिक मतभेदों के बीच वे कितनी अशिष्ट और असंवैधानिक भाषा का प्रयोग करते हैं, इसको लेकर कृष्णा सोबती में गहरी चिंता और उत्तेजना थी। उन्होंने एक पूरी सभ्यता को मिटते-संवरते देखा था। उनके अनुभव की जड़ें माटी के तले गहरी धँसी हुई थीं। पहले उतार-चढ़ाव के बावजूद

राजनीतिक बिरादरी के लोग कूट नीति का सहारा जरूर लेते थे, किंतु वे भाषा की गरिमा और सहिष्णुता का बाकायदा खयाल रखते थे!

जब 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' की बात आई तो उन्होंने कहा कि यह देश जितना हमारा है उतना ही यहाँ के रहने वाले मुसलमानों का भी है। जो मुसलमान इस मुल्क में पैदा हुए उनका लगाव इसी मिट्टी से रहा है।

अंतरराष्ट्रीय बाजार के दिन-प्रतिदिन फैलाव को लेकर वह विचलित महसूस करती रहीं। उन्होंने कहा कि आज के वक्त में विज्ञान और टेक्नोलॉजी का तेजी से विकास हुआ है। आज का एक साधारण मनुष्य भी जानता है कि इसकी मदद से वह कुछ भी कर सकता है, लेकिन साधारण मनुष्य आज उपेक्षित है। एक लड़ाई यहाँ होनी चाहिए थी। विकास का लाभ किसानों को नहीं मिला। विज्ञान का विकास मनुष्य-विरोधी रहा। आज दुनिया में जितनी दवाइयाँ आईं, यहाँ तक कि अपने देश में ज्यादा आईं, वे मानव-जीवन के लिए कितनी उपयोगी रहीं, यह हम सब जानते हैं। सब तरफ मुनाफे का बाजार है। इधर मनुष्य की संवेदना का क्षरण ज्यादा हुआ है।

इतनी देर में जब भी लेखकीय सरोकार की बात उठी, उन्होंने निरपेक्ष रूप से एक लेखक की भूमिका की बात स्वीकार की। एक रचनाकार को लेखकीय भूमिका निभाने के लिए अपने गुजरे समय को खंगालते हुए, वर्तमान में हस्तक्षेप करते हुए, भविष्य की संभावनाओं पर भी सतर्क होने की आवश्यकता होती है। एक बात और गौर करने लायक है कि बेशक कृष्णा सोबती के लेखन को स्त्री-विमर्श कहा गया, बावजूद इसके उन्होंने स्त्री रचनाकारों और पुरुष लेखकों को दो विरोधी खेमों में नहीं बांटा। वे दोनों के लिए एक ही शब्द इस्तेमाल करती रहीं - लेखक।

हमने उनसे पूछा कि आपने लंबे समय तक प्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम के साथ मुकदमा लड़ा था। वे पूरी सतर्कता तथा ऊर्जा के साथ उस समय में प्रवेश करती हैं और बताती हैं कि 'ज़िंदगीनामा' शब्द को लेकर अमृता प्रीतम के साथ उन्होंने 28 साल की लंबी कानूनी लड़ाई लड़ी। एक दिन जज ने पूछा कि अमृता प्रीतम हिंदी साहित्य की दुनिया में जाना-पहचाना नाम है। आप का नाम तो कभी सुना नहीं, पढ़ा नहीं। फिर आप यह कैसे तोहमत लगा सकती हैं कि इन्होंने आपके शब्द की नकल की है! हशमत ने अपने पूरे तेवर और मिजाज के साथ जज की बोलती यह कह कर बंद कर दी कि हिंदी साहित्य को पढ़ा ही कितना जाता है कि हिंदी-साहित्य के लेखकों को लोग पहचान पाएँ या उनकी शिनाख्त कर पाएँ!

वे किसी बात को उठा कर उसी पर देर तक चर्चा करती रहतीं, बल्कि जब कोई नई बात उस दौरान उन्हें याद आ जाती, वे हमें साझेदार बनातीं।

कृष्णा सोबती और भारती सिंह

नेहरू नगर, चिनिया रोड, गढ़वा-822114, झारखंड मो.9955660054

आज भी हमारे समाज में स्त्री के साथ फ्यूडल रिलेशनशिप है

कृष्ण सोबती के साथ **कमल कुमार** का साक्षात्कार

बहुत मुश्किल से मानी थीं कृष्णा जी। इंडिया इंटरनेशनल में करीब ग्यारह साल पहले यह बातचीत संभव हुई थी। शर्त यह थी कि वे पढ़ कर देखेंगी, फिर बताएंगी कि इसे छापने के लिए पत्रिका में देना है या नहीं। यह महीनों तक उनके पास थी। मैं मांगती रही, फिर मैं भूल गई। मैंने साक्षात्कार की प्रकाशित होने वाली अपनी पुस्तक के लिए इसे निकाला था। 'वागर्थ' के पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

कमल कुमार : श्रेष्ठ रचनाकार आप किसे मानती हैं?

कृष्णा सोबती : श्रेष्ठ रचनाकार अपने समय और परिवेश के साथ गहरे जुड़ा होता है। उसका जुड़ाव द्वंद्वात्मक होता है। यानी एक तरफ वह अपनी रचना द्वारा यथास्थिति की जड़ता को तोड़ता है और दूसरी तरफ रचना यात्रा में गतिमान होकर अपने सरोकारों का दायरा विस्तृत करता चलता है। यह दायरा जितना विस्तृत होता है, रचना उतनी ही श्रेष्ठ और कालजयी होती है।

कृष्णा सोबती युवावस्था में

प्रश्न : 'जिंदगीनामा' स्वाधीनता-पूर्व पंजाबी संस्कृति का दस्तावेज जैसा है। इतिहास न होकर भी इतिहास है। इस संबंध में आप क्या कहेंगी?

कृष्णा सोबती : इतिहास केवल वह नहीं होता जो हुकूमतों के ऐतिहासिक खातों में तथ्यों, सबूतों के साथ दर्ज कर सुरक्षित कर दिया जाता है, बल्कि इतिहास वह भी है जो लोकमानस की भागीरथी के साथ-साथ बहता है, पनपता और फैलता है। वह जन सामान्य के सांस्कृतिक पुख्तापन में जिंदा रहता है। इस उपन्यास में जिंदगी को क्रूरतापूर्वक चाक कर देने की पीड़ा है। इसमें धरती पर रहने वाले मनुष्यों को, दरियाओं को बाँट दिए जाने की छटपटाहट है और इस टूटन को झेलने की गहरी तकलीफ है। लेकिन ये विभाजन मनुष्यों की संस्कृति के साझेपन को कभी नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि जीवन की सर्वांगता में, अपनी परंपराओं, मान्यताओं और जीवन व्यवहार में हम उस साझी

संस्कृति को जीते चलते हैं। इस उपन्यास में जिंदगी का आधार बहुआयामी, विविधतापूर्ण और व्यापक है। इसमें एक ओर जीवन का उमड़ता-घुमड़ता प्रवाह है तो दूसरी ओर जीवन की अनेक छवियाँ हैं और मानवीय व्यवहार के असंख्य धरातल हैं। इसके केंद्र में कोई एक नायक या एक खलनायक नहीं है। कोई भी पात्र वर्ग नहीं है। इसमें जीने की ललक लिए लोग हैं- जिंदादिल लोग। उन लोगों के जीवन से जुड़ा बिखराव और बेतरतीबी है। एक भूखंड और उसके समाज की जिंदगी अपनी समग्रता में दरअसल लोककथाओं, किंवदंतियों, लोकगीतों में निहित है। ये ही उसकी जिंदगी के दस्तावेज हैं। इसी में इस भूखंड की लोक संस्कृति की जड़ें हैं।

प्रश्न : रचनाकार की अपनी पृष्ठभूमि भी तो इसमें महत्वपूर्ण होती है जी?

कृष्णा सोबती : रचनाकार की पृष्ठठभूमि रचना से जुड़ी रहती है। रचना जिंदगी से जुड़ कर जिंदगी की पहचान करती है, यह बुनियादी बात है। कोई भी रचना एक लंबे प्रोसेस का परिणाम है। रचनाकार उस रचना के साथ एक लंबा सफर तय करता है। विभाजन क्यों और कैसे हुआ, विभाजन की प्रक्रिया और उसके बाद की स्थितियों की जानकारी आज की पीढ़ी के लिए बहुत जरूरी है।

मैंने सबसे पहले 'चन्ना' नाम से एक उपन्यास लिखा था और उसे प्रकाशन के लिए दिया भी था। उसका प्रूफ शुद्ध करते हुए देखा कि उसमें प्रयुक्त लोक प्रचलित शब्दों को बदल कर प्रकाशक ने दूसरे शब्द रख दिए हैं। इससे मैं जो कहना चाहती थी, वह संप्रेषित नहीं हो रहा था। मैंने उपन्यास वापिस ले लिया और दुबारा उस पर काम किया। परिवेश और समय का ब्यौरा उन्हीं के अनुरूप भाषा के स्तर पर देना होता है। इसलिए मैंने उसी परिवेश की भाषा का प्रयोग किया था। आखिरकार खेतिहर संस्कृति की बात तो उसी भाषा में कहनी पड़ेगी। शब्दों का स्रोत जाने बिना मैं उनका प्रयोग नहीं करती। शब्दों के स्रोत की ओर जाना उनकी जड़ों की ओर जाना होता है। कथ्य और भाषा के

बीच का संबंध मैं बहुत महत्वपूर्ण मानती हूँ।

प्रश्न : कृष्णा जी आपके उपन्यासों में 'डार से बिछुड़ी' और 'सूरजमुखी अंधेरे के' अलावा 'मित्रो मरजानी' प्रमुख है। इसकी सुमित्रावंती का मित्रो के रूप में हिंदी में पहली बार हाड़-मांस की स्त्री के रूप में चित्रण हुआ है। वह अपने ऊपर लादे गए नैतिक मानों की शृंखलाओं को तोड़ कर अपनी जिंदगी जीती है। वह इस धरती पर सांस लेती हुई एक खरी और सच्ची इंसान है। स्त्री के देह-धर्म को स्वीकारने का अभूतपूर्व साहस पहली बार मित्रो में हुआ। वह लोकलाज, कुल-शील, सगे-संबंधी और नैतिकता के किसी छद्म को नहीं ओढ़ती। इस संबंध में आप क्या कहेंगी?

कृष्णा सोबती : ऐसी नारी पात्रों को लेकर न 'बोल्ड' होने जैसी कोई बात है और न ही चौंकाने वाली कोई बात। इस समय हम 'फ्लक्स' की-सी स्थिति में हैं, यानी हमारे आसपास सारी चीजें मिली-जुली हैं और एक प्रवाह में हैं। जिंदगी की एक तस्वीर में कई चीजें एक साथ देखा जा रही हैं। स्त्री पात्रों को एक तो निजी व्यक्तित्व के स्तर पर और दूसरा समाज के स्तर पर देखना होगा। इन पात्रों को बोल्ड कहने के पीछे परंपारागत 'नैतिकता' काम करती है। मेरी कोशिश हमेशा चरित्रों को उनके सत्यों और उनकी स्थितियों के भीतर से उभारने की रही है।

रचनाकार के लिए चरित्रों की पड़ताल जिंदगी की पड़ताल के बीच से होती है। इसके लिए चौखटे से बंधी हुई नहीं, एक व्यापक दृष्टि चाहिए। वह दृष्टि जिससे एक आदमी दूसरे आदमी की पहचान

कमल कुमार
कवि और कथाकार। स्त्री विमर्श से संबद्ध।

करता है। हमारे यहाँ औरत की एक घरेलू इमेज है। मान्यता है कि इसी नजर से उसे जिंदगी को देखना चाहिए। लेकिन आज की औरत की सच्चाई इतनी भर नहीं है। उसकी दुनिया बड़ी हो चुकी है। वह उसी स्तर पर जिंदगी का साक्षात्कार करती है जिस स्तर पर दूसरे सभी करते हैं। वह भी एक व्यक्ति है, यह जान लेना जरूरी है। औरत की मान्यता वाली छवि से यथार्थ के धरातल पर वह भिन्न होती है। औरत की मान्यता को यूँ भी उसकी रोशनी में न देख कर परिवार की पृष्ठभूमि में देखा जाता है। इसी तरह से किसी रचना के पात्रों को भी। ये जो कई फतवे औरतों को दिए जाते हैं, वे पिछड़ी मानसिकता के परिणाम हैं। औरत को एक व्यक्ति के रूप में देखना, परिवार से अलग उसकी पहचान कर पाना– यह सारी लड़ाई औरत के 'व्यक्ति' को जान लेने, पहचान लेने और समझ लिए जाने की लड़ाई है।

'मित्रो मरजानी' की परिकल्पना में वह औरत है जिसके पास चुनाव का कोई रास्ता नहीं है। उसमें अपने आप को पाने की छटपटाहट है। हमारी मानसिकता में औरत या तो 'देवी' है या 'पतिता' है, ताकि दोनों तरह से उसका शोषण हो सके। वह हमेशा अधीन रही, आजादी की जमीन उसे दी नहीं गई। अज्ञेय जैसे बड़े कवि की प्रेम कविताओं में भी 'लो दिया' का भाव प्रमुख है, पारस्परिक संतोष का, आदान–प्रदान का भाव नहीं है। इसीलिए ऐसी प्रेम कविताएँ ठंडी कविताएँ हैं।

स्त्री–पुरुष के बीच सही संबंध स्त्री के व्यक्तित्व को उभारे बिना संभव हो नहीं सकता। आज भी हमारे समाज में स्त्री के साथ फ्यूडल रिलेशनशिप है। स्त्री के लिए आदमी ही उसका यथार्थ है, जबकि आदमी के लिए औरत एक भावात्मक अनुभव है। यह भी देखना होगा कि औरत पर हमेशा असुरक्षा की छाया मंडराती रहती है।

प्रश्न : नारी मुक्ति के संबंध में आप क्या कहेंगी?

कृष्ण सोबती : नारी मुक्ति चेतना जागृत करने की बात है। जिन औरतों ने आदमियों की दी गई दुनिया का अतिक्रमण किया, वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं। वे अपने लिए स्वयं चुनाव करने की और अपने निर्णय लेने का सामर्थ्य रखती हैं। संविधान ने बराबर के अधिकार दिए हैं, पर धर्म और समाज ने औरत के अधिकारों को छीना है। सामाजिक सीमाओं के बावजूद, व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा औरतों ने अपनी ताकत से 'अपने होने' को सिद्ध किया है। असली बात यह है कि शिक्षा का अधिकार और अवसर उन्हें बराबर मिलना चाहिए।

प्रश्न : आपको कौन–सी लेखिकाएँ अधिक पसंद हैं?

कृष्णा सोबती : मैं अपनी तीनों पीढ़ियों के लेखक और लेखिकाओं को पढ़ती हूँ। एक अच्छी पुस्तक पढ़ने में मुझे उतनी ही खुशी होती है जितनी कि एक अच्छी रचना लिखने में। एक अच्छी किताब पढ़ कर लगता है मैंने कुछ 'उपलब्ध' किया है। मैं अमीर हो गई हूँ। 'तमस', 'सूखा बरगद', 'वरुण के बेटे' का गद्य कितना समृद्ध है! पुस्तकों के समीप रहने का अपना जादू होता है। अच्छी रचनाएँ पढ़ते रहने से मुझे कभी यह गलतफहमी नहीं होती कि मैं ही अच्छा लिख सकती हूँ।

प्रश्न : पढ़ने और लिखने के अतिरिक्त आप क्या करना पसंद करती हैं?

कृष्णा सोबती : मुझे यात्रा करने का बहुत शौक है। नई–नई जगहें देखना अच्छा लगता है। अभी भी मेरे सामने दार्जिलिंग का सूर्योदय और अंडमान का समुद्र का अनुभव ताजा है। मुझे ट्रैकिंग करना भी पसंद है।

कमल कुमार, डी–38, प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नई दिल्ली–110017 मो. 9810093217

श्रद्धांजलि

नामवर सिंह
28 जुलाई 1926 – 19 फरवरी 2019

सादगी की गरिमा

हिंदी आलोचना की परंपरा में प्रगतिशीलता और आधुनिकता की संधिरेखा पर लंबे समय तक साहित्यिक केंद्र में रहने वाले नामवर सिंह का निधन हमारे सांस्कृतिक जगत की एक अपूरणीय क्षति है। उन्होंने न जाने कितनी वैचारिक बहसों में हिस्सा लिया, आलोचना को अपने ताजे मुहावरों से धारदार बनाया और उसे समृद्ध किया। देश भर में अपनी वक्तृता शैली से उन्होंने न सिर्फ अपनी खास पहचान बनाई, बल्कि वे हिंदी के गौरव के रूप में देखे जाते रहे। वे कई दशकों तक साहित्य जगत में आकर्षण के केंद्र बने रहे। उनकी हर आलोचना कृति अद्वितीय है। 'छायावाद' से लेकर 'कहानी–नई कहानी', 'कविता के नए प्रतिमान' और 'दूसरी परंपरा की खोज' तक उनकी आलोचना में गजब की खुली प्रबंधात्मकता है। 'वाद–विवाद–संवाद' लेखों का संग्रह है। विभिन्न विषयों पर उनके भाषणों के संग्रह आए। नामवर सिंह ने आधुनिकता की परंपरा और समकालीन परिदृश्य का मूल्यांकन करते हुए जो वैचारिक सूत्र दिए, वे उनकी नई सूझ–बूझ और वैचारिक ताजगी के लिए हमेशा याद किए जाएंगे।

हिंदी में बहुत कम विद्वान होंगे जिन्होंने लगातार इतना स्वाध्याय किया और नई से नई किताब के बारे में जानकारी ली। वे नई प्रवृत्तियों और हलचलों के प्रति सजग रहते थे और समावेशी प्रकृति के थे। वे हिंदी–उर्दू की एकता और प्रगतिशील आंदोलन के एक प्रमुख स्तंभ थे। उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को लगभग आधी सदी तक प्रभावित किया और विरोधों के बीच भी अपने व्यक्तित्व को जीवंत बनाए रखा। सादगी की गरिमा सचमुच क्या होती है यह देखना हो तो एक बड़ा उदाहरण हैं नामवर सिंह!

कहानियाँ

खत

ज्ञानप्रकाश विवेक

तुम्हें खत लिख रहा हूँ और मुझे यकीन है कि खत तुम तक नहीं पहुँचेगा। सवाल अपनी जगह मौजूद है कि मैं क्यों लिख रहा हूँ खत? कुछ सवालों के जवाब होते ही नहीं। या फिर सवालों की कोख में होते हैं जवाब। सवालों की कोख? ठीक सोचा। सवालों की कोख नहीं होती। सवालों का बीहड़ होता है और खुशफहमियों का नखलिस्तान!

खुशफहमी! जैसे तुम अब भी कहीं आसपास हो। मेरे करीब। मेरे हाथ पर हाथ रखती हुईं। मुस्कराती हुईं। मेरे करीब। इतने करीब कि अपनी सांस की आवाज को मुझे सुनाती हुई...।

कहां से शुरू करूँ? तुम्हारी आमद हर बार किसी नई सुबह की तरह होती थी–ताजगी भरी। शबनम के कतरों के नन्हें घर तुम्हारी हथेली पर होते–तुम ऐसी सुबह की तरह लगतीं। हमेशा नई शुरुआत के साथ। हमेशा नए अनुभव के साथ।

एक बार जब मैं और तुम रेस्तरां में जाने लगे। शीशे का दरवाजा था। दरवाजे पर पुल और पुश लिखा था। मैंने हमेशा की तरह जहां दरवाजे को 'पुल' करना था–उसे 'पुश' किया। एक अच्छी सी गाली दरवाजे को दी। मैंने देखा–तुम मुस्करा रही थीं।

तुमने मुस्करा कर, कुछ भी न कह कर, मेरी स्मार्टनेस का अभिवादन किया था। मैं पहली बार एक सुंदर और शाइस्ता लड़की के सामने अपनी किरकिरी करवा बैठा।

मेरी दूसरी बार किरकिरी तब हुई जब मैं चिकन कटलेट्स के साथ 'भिड़' गया था। ऐसा लगता था जैसे कटलेट में से चिकन जिंदा हो उठा है और मैं उसे मार कर दम लूंगा।

तुम हतप्रभ–सी मुझे देखती रहीं। मैं बहादुर सैनिक की तरह चिकन कटलेट्स को चाकू–छुरी से काटता–पीटता और खाता रहा। ... चाकू–छुरी से खाना मुझे आता ही नहीं था। अब भी नहीं आता। अब भी किसी रेस्तरां में जाऊं तो चाकू–छुरी ट्रे में पड़ी रहने देता हूँ। घर में अभ्यास भी करके देख लिया। कभी चाकू दाएं हाथ में तो कभी कांटा दाएं हाथ में। उस वक्त जब कोई दोस्त सामने बैठा हो और चाकू–छुरी से खाना हो तो – डिप्रेशन और एंग्जैटी दोनों का कॉकटेल मेरे अंदर उतर जाता है। मैं इतना नर्वस

हो जाता हूँ कि समझ नहीं आता क्या करूँ? और जब-जब नर्वस होता हूँ, तुम्हारे साथ का वो दृश्य याद आ जाता है जब मैं कटलेट्स के साथ कुश्ती लड़ रहा था और तुम अचंभित-सी मुझे देख रही थीं।... तुम्हारे पास सलीका था, मेरे पास बेहूदगी!

तब तुम खूब सारा हँसी थी जब मैंने उबलते हुए पानी में टी बैग को फाड़ कर चाय पत्ती डाल दी थी। मैं हैरान था कि गलत क्या हुआ? और तुम हँस रही थी कि मैंने ठीक क्या किया? चाय पत्ती तैर रही थी और एक हल्की सी शरारत तुम्हारी आंखों में भी तैर रही थी। कुछ पल बाद तुमने मुझे संजीदगी से देखा। वेटर को चाय का नया सेट लाने का आदेश दिया। इस बार तुमने उबलते हुए पानी में टी बैग डाला। डिप-डिप किया। टी बैग पानी में डुबकियां ले रहा था और मैं अपनी हैरानियों में।

एक बार हम दोनों बस में सफर कर रहे थे। तुम्हें याद होगा। हम कभी-कभी बेवजह बस में बैठ जाया करते थे। और कहीं बीच रास्ते में उतर पड़ते।

बस जगह-जगह रुक रही थी। हम चिढ़ रहे थे। गर्मी थी और बस की सवारियां बदहाल!

दो छोटे बच्चे बस में सवार हुए थे। एक के हाथ में दो ठीकरियां थीं दूसरे के हाथ में छोटी-सी डफली। उन्होंने खुद को स्थापित किया और गाने लगे- गरीबों की सुनो...। वो गाना बंद तो दूसरा भजन - मैं आया मैं आया शेरां वालिए... उसके बाद तीसरा-शंकर के लाडले मैं तैनूं कीवें मनावाँ...। फिर-देख तमाशा लकड़ी का और आखिर में वो गाना जो सारे गवैये बस में गाकर कीरतना का समापन करते हैं- भला किसी का कर न सको तो बुरा किसी का मत करना...।

बस के बार-बार रुकने से मैं पहले से चिढ़ा हुआ था। ऊपर से ये दो बच्चे और इनके कान फाड़ू भजन! जब वो हाथ पसारे मेरे पास आए तो मैंने झिड़क दिया- 'चल भाग!... दिमाग खराब कर दिया।'

लेकिन तुमने दोनों बच्चों को रोक लिया था। कहा था कि उन्होंने बहुत अच्छा गाया। पूछा था कि वो कहाँ रहते हैं। पूछा था कि सुबह से कुछ खाया या नहीं। उनकी 'नहीं' पर तुम विचलित हो गई थी। तुमने दो का नोट दिया था और पर्स में रखे पारले बिस्कुट का पैकेट भी। दोनों बच्चे खिलखिला कर हँस पड़े थे। तुम भी खिलखिला कर हँस पड़ी थीं। बाकी बस चकित थी। तुम तीनों हँस रहे थे। बच्चे बस स्टाप पर उतर ही जाते। लेकिन छोटा-सा लड़का जल्दी से आया था और तुम्हें सलाम करके वापिस भागा और बस से उतर गया था।

बाद में मैं समझा कि सुख किसे कहते हैं? मैं खुशियाँ ढूंढता रहता था और तुम! तुम छोटे-छोटे सुख इस तरह प्राप्त कर लेती थीं।

मैं तुम्हें खत लिख रहा हूँ। क्या मेरा खत तुम तक पहुँच पाएगा? कोई नामाबर भी तो नहीं जो मेरा खत तुम तक पहुँचा दे।

तुमसे मिलने का पहला वाकया! क्या तुम्हें याद है? मुझे तो पूरी तरह याद है जैसे वो कल की घटना हो।

ये एक सुस्तरफ्तार शहर था। खामोश और कुछ सहमा हुआ-सा शहर! यह एक ऐसा शहर था जिसे शहराना अभी तक नहीं आया था। बेतरतीबी इस शहर के रगरेशे में थी। और ... और बड़ी बात ये कि इस शहर के अपने विभ्रम, यकीन और एतिकाद थे। इस शहर की कुछ कदीमी रवायतें थीं जिन्हें इस शहर के जईफ और वक्त के हाशिए पर ठिठके हुए पुराने लोग, कंधे की खूंटी पर लटका कर रखते थे। रवायतें कदीमी थीं तो दुख भी कदीमी!

शहर में अभाव के साथ जीते लोग, कबीर के पद गाते और बुल्लेशाह की काफियाँ! लोगों में सादगी किसी पहरावे की तरह थी और फकीर किसी ठाठ की तरह!

यह शहर न खुशनुमा था, न खूबसूरत! छोटी-छोटी दूकानें। उधड़ी हुई सड़कें। फटेहाल रास्ते। रास्तों पर रेहड़ीवाले। साइकिल पंक्चर वाले। शकरकंदी, सिंघाड़े और गन्ने बेचने वाले।

इस शहर में लोग ऐसे चल रहे होते जैसे अपने आपको ढूँढने निकले हों।

शहर में एक या दो या तीन सड़कें थीं जो एक

ज्ञानप्रकाश विवेक

गजल लेखन में सक्रिय। गजल संबधी तीन आलोचना पुस्तकें प्रकाशित। अद्यतन गजल संग्रह 'घाट हजारों इस दरिया के'।

तरफ कीचड़ में सनी हुई तो दूसरी तरफ अशोक लेलैंड के ट्रक और टेम्पो।

याद है मुझे तुम यहीं मिली थीं।

ट्रक और टेम्पो समानांतर खड़े थे। बीच में पतला-सा गलीनुमा रास्ता था। पतले से रास्ते के एक सिरे से मैं गुजरने लगा तो सामने से तुमने इस रास्ते में 'एंटर' किया। मैंने तुम्हें देखा और तुमने मुझको। या यूँ कहूँ हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा। एक पल के लिए। बेसाख्ता। न जाने क्या सोच कर मैं रास्ते के सिरे पर ठिठक गया और ट्रक के बोनेट के पास 'स्टिल' हो गया।

रुकी थीं तुम भी! लेकिन उस पतले-से रास्ते से तुम निकल आईं और पतली गली को पार किया। और फिर मैंने। हम दोनों एक-दूसरे के विपरीत सिरों पर पहुँच चुके थे। मैं आगे चल पड़ता। लेकिन मुझे लगा कि तुमने मुझे आवाज दी है। ये शायद मेरा गुमान था या हकीकत! मैंने पलट कर देखा। तुम रास्ते के दूसरे सिरे पर खड़ी थीं। आवाज तुमने ही दी थी। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे तुम कुछ कहना चाहती हो। यह मेरा अनुमान था जो गलत भी हो सकता था। लेकिन तुम रुकी हुई थीं।

मैं अपने वाले सिरे से चला और वहाँ जा पहुँचा जहाँ तुम खड़ी थीं।

मेरे पहुँचते ही तुमने तपाक से कहा, 'थैंक्यू वेरी मच।'

मैंने हैरान होकर पूछा, 'किस बात के लिए ?'

तुमने जवाब दिया, 'किसी के लिए रास्ता छोड़ना भी एक कला होती है।'

'कलाओं के बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं।'

'अपनी अज्ञानता का स्वीकार भी एक कला होती है।' मुस्कराते हुए कहा था तुमने। मुझे याद है।

मैं चौंक-सा गया था।

तुम थोड़ा-सा मुस्कराई थीं।

थोड़ा-सा मुस्कराना दिलकश था- अपनी तरफ खींचता हुआ-सा।

'आप इस शहर में रहती हैं?' मैंने पूछा था और तुम्हारे जवाब ने मुझे फिर हैरान किया था, 'हम शहर में नहीं, शहर की संभावनाओं में रहते हैं।' तुमने कहा था और फिर बिना रुके कह भी दिया था कि तुम इसी शहर में रहती हो।

'लेकिन आप इस शहर की लगती नहीं।' मैंने पूछा था। हम अब भी ट्रक और टेम्पो के बीच जो पतली-सी गली थी, उसके पास ही खड़े थे। जो भी वहाँ से गुजरता एक बार हमें जरूर देखता।

'ये लगना क्या होता है जी?' तुमने मेरे सवाल पर सवाल किया था और फिर बड़ी सहजता से कहा था, 'मैं इस शहर में अभी-अभी आई हूँ...डेढ़ महीना पहले।... इस लिहाज से मैं इस शहर की नहीं लगती।' थोड़ा सा हँसी थी तुम, अपनी बात पर।

मैंने तुम्हें पहली बार गौर से देखा था। इस डर से भी देखा था कि कहीं तुम मुझे देख न लो। मेरा यह देखना उस नौजवान का देखना था जो खूबसूरत युवा लड़की को देखते हुए, कई सारी बातें एक साथ सोच लेता है।

तुमने मुझे देखा और बड़े सहज भाव से पूछा, 'मुझे चाय पीनी है। यहाँ कोई अच्छा रेस्तरां है क्या?'

'गुलमर्ग रेस्तरां है।'

'किधर?'

'टी प्वाइंट से राइट को टर्न लेंगी आप। फिर एक चौराहा आएगा। चौराहा क्रॉस करेंगी आप... थोड़ा आगे जाकर, गुलमर्ग दिखाई देगा, लेफ्ट साइड।'

'मैं तो भटक जाऊंगी।'

मैं चुप रहा था। मुझे चुप देख कर तुमने कहा था,

' आप चल सकते हैं मेरे साथ?'

'रास्ता दिखाने?' शैतान किस्म का सवाल था मेरा।

'नहीं चाय पीने।' तुमने कहा। कनखियों से देखा था मुझे।

यह अक्टूबर का महीना था, शानदार महीना। अक्टूबर और नवंबर हमें इसलिए भी दिलकश लगते रहे हैं कि कभी हम कागज के रावण जलाते हैं तो कभी मिट्टी के दीये।

हम अभी तक धूप में खड़े थे और धूप अखर नहीं रही थी। बेशक, हम दोनों, लोगों को अखर रहे थे। यह ऐसा तंग नजरिए का शहर था जहाँ लड़की-लड़के का एक साथ खड़े होकर बातें करना, शहर की तहजीब और रवायत का उल्लंघन था।

करीब एक चौथाई मील पैदल चल कर हम गुलमर्ग रेस्तरां पहुंचे थे। लगभग खाली था रेस्तरां।

लेकिन अजीब-सी गंध भी थी।

मैंने बेयरे को बुलाया। यहाँ वेटर कोई नहीं कहता था। बेरा कहते थे या फिर छोकरा। बुलाने का अंदाज जैसे पत्थर फेंक रहे हों- ओ छोकरे।...लड़के इधर आ!

मैंने बेयरे से गंध के बारे में पूछा। उसने बड़े इत्मीनान से जवाब दिया, 'साब जी, कल रात एक आदमी के हाथ से शराब की बोतल फिसली, फर्श पे गिरी और टूट गई। फर्श बोत बार साफ किया है पर अभी शराब की बू गई नहीं।'

उसकी साफगोई से रात की घटना के वृत्तांत ने तुम्हें मुग्ध किया था। तुम मुस्काई थीं। चाय लाने के लिए कहा -'हॉफ सेट चाय।'

स्टील की केटली दो कप चाय। ब्रुक बांड रेड लेबल चाय का फ्लेवर। चाय तो अच्छी थी। इसलिए अच्छी थी कि मैं एक सुंदर, अपरिचित लड़की के साथ चाय पी रहा था।

चाय के कुछ घूंट भरने के बाद तुमने बताया था कि तुम छोटे शहरों के व्यवहार, चाल-चलन, रख-रखाव, भाषा-बोली, जीवन जीने का मुहावरा, परंपराएँ, सामाजिकता, रीति-रिवाज, संस्कृति, शऊर संवेदना, निर्धनता, अभाव और संघर्ष-इन सब तत्वों के जरिए थीसिस लिख रही हो। 'यहाँ हर नई बात मेरे शोध को समृद्ध करती है।'

मैंने पूछा था, 'जैसे?'

तुमने कहा था, 'जैसे सड़क के साथ खड़ा ट्रक और उसके साथ खड़ा टेम्पो किसी हस्तक्षेप की तरह होने चाहिए। लेकिन यहां के लोगों की फितरत देखिए। ट्रक और टेम्पो के बीच थोड़ी-सी खाली जगह को ये लोग रास्ता बना लेते हैं और आना-जाना शुरू कर देते हैं।'

'बड़ी अजीब बात है।' मैंने कहा।

'कौन-सी?' तुमने पूछा

'लोग लेखकों-कवियों के लिखे पर शोध करते हैं आप शहरों पर...।'

'हां, मैं शहरों पर शोध कर रही हूँ। और यह विषय मेरे लिए चैलेंजिंग है। कवियों- लेखकों पर शोध करना टेबल वर्क होता है सर! असली शोध फील्ड में जाकर होता है।'

'लेकिन इस शहर में तो ऐसा कुछ भी नहीं।' मैंने कहा था

'तभी तो।' तुम्हारी आवाज में चमक थी। जिस शहर में कुछ नहीं होता। उसी शहर में ही कुछ ढूँढना और ढूँढ कर निकालना शोध होता है। वैसे मैं आपको एक बात बताऊँ।' तुमने ठंडी हो चुकी चाय का घूंट भरा और बात पूरी की, 'हर शहर में कुछ तो होता है जिसकी बुनियाद पर शहर और उसका आचरण खड़ा होता है।'

मैंने अचरज से तुम्हें देखा और तुमने रेस्तरां के बाहर। दिल्ली-रोहतक रोड। लारियाँ, ट्रक, ट्रैक्टर, रिक्शा और साइकिल-जिनके पास अपनी-अपनी जो औकात थी, रफ्तार की औकात।

'मैं यहाँ डेढ़ महीने से हूँ। पूरा शहर घूम चुकी हूँ। रेत से भरी सड़कें और लोग, जेसे कुछ ढूंढते फिरते हों।' तुमने कुछ सोचते हुए कहा था।

मैं चुप था कि मैं तुम्हें सुनना चाहता था। मैं चुप था कि तुम बहुत अच्छा बोल रही थीं। मैं चुप था कि मेरी चुप की जमीन पर तुम्हारी आवाजें अपने

कदम रख सकें।

'पता है, ये शहर मुझे क्यूं अच्छा लगा?' तुमने सवाल किया और मेरे जवाब का इंतजार किए बगैर तुमने कहा, ' कितनी चिड़ियाएँ हैं यहाँ... बहुत! कई तरह की। गिलहरियाँ! औ राम जी! पैरों में लिपट जाने को तैयार। और वृक्षों में कितने कव्वे!... मुझे तो कव्वे बोत-बोत अच्छे लगते हैं। पता है क्यों? उनका काला रंग और उनकी खुरदरी आवाज... कितनी ओरिजनल होती है। ओरिजनल चीजें मुझे अच्छी लगती हैं। और... और हाँ, रिक्शावाले भी मुझे अच्छे लगते हैं। बेचारे पसीना बहाते हुए हमें घर तक छोड़ आते हैं। प्यासे होते हैं पर पानी नहीं मांगते। पानी प्याऊ पर आकर पीते हैं और, येस! मुझे प्याऊ भी अच्छे लगते हैं। एक पल के लिए वो हमारी प्यास से रिश्ता जोड़ लेते हैं। मैंने भी कई बार पानी पीया है प्याऊ पर।'

मैं इस शहर में बरसों से था। पर मैंने शहर को कभी इस नजर से नहीं देखा था। मुझे ये शहर अक्सर खराब ही लगा। कोई शहर इसलिए भी अच्छा लगे कि वहाँ चिड़ियाएँ, कव्वे और गिलहरियाँ बहुत हों। यह भावबोध मैंने तुमसे सीखा था।

हम चाय पी चुके थे। मैं चाहता था चाय कभी खत्म न हो। कम्बख्त चाय जल्दी खत्म हो गई। या फिर तुम्हारी बातों के असर में चाय का पता ही न चला।

तुमने घड़ी देखी। पता नहीं किस बात की जल्दी थी तुम्हें। तुम उठ खड़ी हुईं। काउंटर पर तुमने पेमेंट की। मैं कस्बाई लड़के की तरह तुम्हारी गतिशीलता को देखता रहा।

रेस्तरां से बाहर निकल तुमने इधर-उधर देखा। पता नहीं क्या देखना चाहती थीं तुम! पता नहीं किस चीज की तलाश थी तुम्हें। तुमने लापरवाही से मुझे 'हाय' कहा और चली गईं। मैं भौंचक-सा खड़ा तुम्हें देखता रहा। तुम थीं या कोई जीवित सपना जिसे मैंने अभी-अभी अपनी जागती हुई आंखों से देखा था।

मुझमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि मैं तुम्हारा नाम पूछता। तुम्हें तो जरूरत ही नहीं थी कि तुम मेरा नाम पूछतीं।

कई दिन तक मैं बेचैन रहा। तुम मेरे दिल में कोई छोटा-सा घर बना कर चली गईं जो तुम्हारे बिना खाली उदास और सूना-सूना प्रतीत होता।

अनायास तुमसे एक बार फिर मिलना हुआ। तुम्हारी घड़ी रुक गई थी। तुम परेशान-सी थीं। तुम्हारी घड़ी का मेक मुझे अब भी याद है- हेनरी सेंडो!

छोटा-सा बाजार जिसमें साइकिल की तसल्लीबक्श मरम्मत करने वालों के अलावा, दयाल टाइपिंग कॉलेज और शर्मा वॉच, दरबार वॉच तथा सहगल वॉच कंपनी जैसी छोटी-छोटी दूकानें थीं।

हमने सहगल वॉच कंपनी से घड़ी ठीक करवाई थी। सहगल वॉच कंपनी के सहगल एक शायर थे और उनकी दूकान पर दो-तीन स्थानीय शायर हमेशा मौजूद रहते। शायद इसलिए उन्होंने सहगल वॉच के साथ 'कंपनी' शब्द भी जोड़ दिया था। वो शेर सुनते-सुनाते और घड़ी ठीक करते। मुझे वो शख्स खब्ती लगा और तुम्हें दिलचस्प! तुमने कहा था कि तुम छोटे शहरों के लोगों के मिजाज पर लिखोगी तो सहगल वॉच कंपनी का जिक्र जरूर करोगी।

मजे की बात यह कि सहगल साहब ने जब अपना शेर पूरा किया तो कहा, 'बरखुरदार, घड़ी सफाई मांगती थी, वो पैसे नहीं मांगती थी। ये लीजिए अब ये घड़ी चल पड़ी है।'

तुमने एक बार फिर कहा कि वो पैसे ले लें तो सहगल साहब ने कहा, 'वो कम कीमत हैं गौहर जो कि बाजारों में बिकते हैं।'

हम दोनों अचरज से उस शख्स को देखते रहे। और साथ-साथ चल पड़े। चलते-चलते तुमने कहा था, मुझे अब भी याद है जो तुमने कहा था, ' जिस शहर में कुछ नहीं होता उस शहर की बुनियाद में बहुत कुछ होता है। छोटे शहरों को इस अंदाज से देखना कितना दिलचस्प होता है। सहगल साहब तो विशिष्ट अनुभव हैं मेरे लिए। लिसन, मेरी थिसिस में ये सब लोग हैं। आप नहीं जानते ऐसे लोगों से मिल कर मैं कितनी समृद्ध होती हूँ।' तुमने कहा था।

उस दिन तुमने फिर चाय के लिए कहा था तुम्हें याद है? शायद याद हो तुम्हें। शायद न भी हो याद! तुमने कहा था चलो छाया रेस्तरां में चलते हैं।

'छाया रेस्तरां?' मैं हैरान हुआ था।

'जनाब, आपके शहर में छाया रेस्टोरेंट भी है और आपको पता ही नहीं।' अजीब-सा उल्लास था बात में।

जब मैंने छाया रेस्तरां देखा तो हैरान रह गया। वो एक चाय का खोखा था- थोड़ी दूर। सड़क से हट कर। ऊपर नीम का घना दरख्त। दरख्त की छांव में लकड़ी की साधारण-सी मेज-कुर्सियाँ।

मैं अब समझा था। नीम की छाया और चाय! ये 'छाया' नाम तुम्हारा क्रिएशन था।

चाय अठन्नी की थी। कप-चवन्नी-छाप थे। लेकिन चाय अच्छी थी। चाय इसलिए भी अच्छी थी कि तुम साथ थीं।

नीम की पत्ती शाख से टूट कर चाय के प्याले के पास गिरी। तुमने उठाई। कहा, 'छोटे शहरों की यही तो बड़ी बात है। पेड़ से टूटे पत्ते भी शुभकामना देने चले आते हैं।'

ये तुम थीं... तुम!

हम इत्तेफाकन दूसरी बार मिले थे।

चाय खत्म हुई। तुमने दो का नोट चायवाले को दिया। उसने गल्ला खोलकर देखा। बोला, 'टुट्टे नहीं हैं। बाद में दे जाना।'

' न देने आए तो?' प्रश्न तुम्हारा शानदार था।

'तो कोई बात नईं।' दूकानदार ने उसी बेफिक्री से जवाब दिया।

'भाई जी, दो का नोट तुम रख लो। अगली बार जब चाय पीने आएंगे तो हिसाब कर लेंगे।'

'ठीक है।' दूकानदार ने गल्ले में दो का नोट ऐसे रखा जैसे उसे नोट रखने के अलावा और भी कई जरूरी काम करने हों।

'देखा! इसको कहते हैं छोटे शहर की बड़ी बात।'

अजीब बाजार था। एक सिरे से दूसरे सिरे तक छोटी-बड़ी दूकानें। घड़ी साज। बजाज। साइकिल मरम्मत। टाइपिंग कॉलेज। और इन सबके बीच दो दूकानें लोहारों की। लाल सुर्ख अंगारे। हथौड़े की आवाज। धौकनी। चिमटा। पसीना। रंगत से स्याह दूकानें। दूकानों पर फावड़े, गैती, हथौड़ी, करनी, खुरपी, छेनी...

याद है तुम्हें, तुम यहाँ रुक गईं थीं। मेहनतकश लोगों को देखना अच्छा लगता है- तुमने कहा था। सुर्ख लाल लोहे को आकार देता दस किलो का हथौड़ा। तीन बंदे। तीनों पसीने से नहाए हुए।

मुझे याद है तुमने कहा था, 'लोहे की नाफ पर कस्तूरी पैदा करना इसी को कहते हैं।'

मैं कितनी बार गुजरा था इधर से। इन दूकानों को हमेशा अनदेखा करता हुआ निकल गया था।

लोहे की नॉफ पर कस्तूरी पैदा इन दूकानों पर होती थी। ये शऊर मैंने तुमसे हासिल किया था।

ऐसी बातें तुम्हें हॉट करतीं। तुम ठिठक जातीं। ये जो भावबोध था तुममें, वही तो था जो मुझे चकित करता था।

ये सब तुम्हारे थिसिस का हिस्सा थे। ये सब तुम्हारे जीवन का हिस्सा भी थे। तुम साधारण को तलाश करती रहतीं। तुम कहती भी थीं- साधारण को गौर से देखो। उसमें असाधारणत्व छुपा होता है। तुम्हारी यात्रा में उसी असाधारणत्व की खोज थी।

तुम्हें खत लिखते हुए कितनी सारी बातें याद आ रही हैं। कितने नक्श छोड़ कर इस शहर से विदा हुई थीं तुम। एक अरसा गुजर चुका है। लेकिन तुम्हारी हर बात जैसे अभी-अभी घटित हुई हो।

वो रेस्टोरां याद है न तुम्हें। जहाँ हमने कुछ भी नहीं खाया था, न चाय पी थी। तुम उदास होकर चल पड़ी थीं वहाँ से।

वो तीन लड़के थे। मेज के आसपास। कुर्सियों पर बैठे। दबंग। ताकतवर। हेकड़ीबाज।..

पता नहीं किस बात पर शर्त लगी थी उनकी। शर्त जीतने का चैलेंज था। शर्त थी- मेज पर एक थूकेगा और बेयरे से साफ कराएगा।

दबंग, ताकतवर और हेकड़ीबाज ने मेज पर थूका। कुछ दूर खड़े सोलह-सत्रह साल के बेयरे को बुलाया और बड़ी करख्तगी से हुक्म दिया-'इसे साफ कर।'

लड़का खड़ा रहा।

गुर्राती हुई आंखों से देखा तीनों ने।

लड़के ने पोचा उठाया। थूक साफ की।

दबंग और हेकड़ीबाज ने मेज पर फिर थूका। हुक्म दिया कि वो थूक साफ करे।

लड़के ने फिर थूक साफ की। मन मसोस कर रह गया।

हम दोनों देखते रहे। तुम बहुत विचलित थीं।

तीसरी बार फिर मेज पर थूका गया। फिर बुलाया गया लड़के को।

मेज पर थूक थी।

सवाल शर्त जीतने का था।

लड़का इन्कार कर रहा था। उसके इन्कार में सहमापन था।

एक कड़ियल किस्म का तनाव था।

और इस तनाव को और धार दी तुम्हारे उठ खड़े होने में।

इतना साहस! मैंने तो पहली बार देखा था तुम्हें। तुम ऐन बीच में, कुर्सियों को हटाती हुई आ खड़ी हुईं और दृढ़ता से कहा, 'यंगमैन! लोग तो पृथ्वी पर भी नहीं थूकते। तुम मेज पर थूक रहे हो। इसी मेज पर अभी कोई चाय पीएगा।... तुमने थूका है। तुम साफ करो।'

'ये साफ करेगा।'

'तुम साफ करोगे।'

'सुण! हम थूकते हैं बस! साफ तो कोई दूसरा करता है।' दबंग ने कहा।

'ओके!' असीम धैर्य था तुम्हारी आवाज में।

तुमने स्तब्ध कर दिया था सबको।

पोचा लिया लड़के के हाथ से। मेज पर पड़ी थूक को तुमने साफ किया। पोचा फेंका एक तरफ। और फिर चुपचाप खड़ी रही थी तुम।

वो तीनों लड़के भौंचक! और चुपजदा मैं। तीनों लड़के अपनी कुर्सियों पर ऐसे बैठे थे जैसे बर्फ के आदमी धीरे-धीरे रिस रहे हों।

तुमने अपना झोला उठाया था मेज से। पीठ पर थपकी दी थी सोलह-सत्रह साल के लड़के को जो वेटर का काम कर रहा था।

हम बाहर आ गए थे।

मैंने तुम्हें देखा और तुमने मुस्कराने की कोशिश की। तुम्हारी मुस्कान में उदासी थी। उदासी में जैसे सवाल छुपा हो कि लोग इतने निस्संग क्यों होते हैं।

तुम चली गई थीं।

मैं सोचता रहा था तुम्हारे बारे में। तुम एक संवेदनशील संसार की कामना करती थीं।

हम दोनों के लिए यह पराया शहर था। हम दोनों अलग-अलग कालोनियों में किराए के कमरों में रहते थे। अचानक मिलते । बहुत खुश होते। हम एक साथ चाय पीते। यह हमारा तरीका होता खुशी को सेलीब्रेट करने का।

कभी-कभी हम दिल्ली घूम आते। ऑटो हमें महँगा लगता। हम पैदल चलते रहते या कोई लोकल बस। बस में स्टैंडिंग होती। मुश्किल से खड़ी हो पाती तुम! लेकिन जब बस से उतरती तो मुस्कराती हुई नजर आती।

तुम छोटे शहरों की सामाजिकता पर शोध कर रही थीं। थिसिस लिख रही थीं तुम! पर मुझे कई बार लगता तुम खुद एक थिसिस की तरह हो।

मैं तुम्हें खत लिख रहा हूँ और...।

... और मैं सशंकित हूँ। बेशक हूँ। लेकिन खत लिखते हुए तुम मेरे पास हो- मेरे अवचेतन में- मेरे चेतन में। मेरी उम्मीदों में, मेरी स्मृति में। याद में।

याद!

जैसे जिंदगी के बंद कमरे में दर्द की अगरबत्ती जल रही हो।

मैं बंद कमरे में हूँ, अकेला। अकेला और चुप। मैं और मेरे साथ निहत्थी खामोशी। मैं और मेरे साथ, मेरी उंगली पकड़ कर खड़ा मेरा साया जो दिखाई नहीं देता। लेकिन वो है जरूर।

मैं उठ कर खिड़की तक आया हूँ। आसमान खाली है मेरी तरह। वक्त की खुदगर्ज चील उड़ कर जा रही है। उसकी चोंच में फड़फड़ाता लम्हा होगा- किसी जिंदा परिंदे जैसा।

आसमान का चेहरा और मेरा चेहरा-दोनों एक

जैसे नजर आते हैं। शायद आसमान भी उदास है, मेरी तरह। ऐसा लगता है वो अपनी किसी कहकशां को ढूँढ रहा है, जैसे कि मैं!

मैं वापस कुर्सी पर आ बैठा हूँ। यह वही कुर्सी है जिस पर तुम आकर बैठती थीं। पहली बार जब आई थीं तुम तो कुर्सी पर किताब, हैंगर, कमीज, अंडरवीयर, जुराब कंघी और दूसरी कुर्सी पर बिस्कुट का टुकड़ा जो मैंने आधा खाया और बाकी कुर्सी पर रख कर भूल गया था। तुम देखती रही थीं कुर्सी को और फिर बोल ही पड़ी थीं, 'इतना कीमती सामान तुमने कुर्सी पर रख दिया है। यह सरमाया तो लॉकर में होना चाहिए।'

तुम थोड़ा-सा हँसी थीं।

मैं थोड़ा-सा शरमाया था।

ऐन उस वक्त ट्रांजिस्टर पर गजल सुनाई दी थी- तेरे आने से तो अच्छा था न आना तेरा।...

'यह स्वागतम गीत मेरे लिए है न।' तुमने कहा था और फिर खिलखिला कर हँस पड़ी थीं। शुक्र भगवान का। मैं तो सोच रहा था कि तुम नाराज हो जाओगी। तुम मुस्करा रही थीं। यही तो बात थी। यही तो आकर्षण था तुम्हारा।

चाय का कप थोड़ा दरका हुआ-सा था। वो कप तुम्हारे पास आ गया था। तुमने कप को देखा। फिर मुझे देखा। फिर बड़ी अदा के साथ तुमने कहा था, 'मुगलिया खानदान की कुछ निशानियाँ अब भी बड़े शान से इस्तेमाल की जाती हैं, जैसे कि यह कप!'

फिर तुम्हारा हँसना और मेरा झेपना! बहुत देर तक जारी रहा।

चाय पी चुकने के बाद तुमने कहा, 'अब अपना हाथ दिखाओ। हस्तरेखाएँ देखती हूँ।' और तुम मेरा हाथ पकड़ कर बैठ गई थीं, 'यात्रा का योग है।' तुमने कहा।

'यात्रा?'

'हाँ यात्रा! लोकल बस से।' हम दोनों हँसे।

तुम फिर मेरे हाथ की लकीरों को पढ़ते हुए बोली, 'खर्च होगा।'

'खर्च? मैं समझा नहीं।' मैंने कहा।

'त्रिवेणी में जब खाना खिलाओगे, सब समझ में आ जाएगा।' बात में इतनी नाटकीयता थी कि हम दोनों फिर हँसे।

तुम फिर मेरा हाथ देखने लगी थीं। इस बार मैंने पूछा, 'प्रेम की रेखा के बारे में बताओ?'

'इडियट! प्रेम की रेखा नहीं होती।'

'तो?' मैंने कहा।

'प्रेम की नदी होती है। देखो ये नदी। तुम्हारे हाथ से होते हुए, मेरे हाथ तक। बीच में न कोई बांध न पुलिया।'

इतना कह कर तुमने मेरे हाथ को चूम लिया था और मैंने तुम्हें। और फिर मैं तुम्हें एकटक देखता रहा। और तुम अचंभित-सी, मेरे देखने को देखती रही।

खत लिख रहा हूँ तुम्हें और जानता हूँ कि तुम तक नहीं पहुँचेगा। मुझे नहीं पता कि तुम कहाँ हो? किस शहर में? किस शहर के किस मकान में? न कॉलोनी का पता न मकान नंबर की जानकारी। न शहर का इल्म। फिरा भी तुम्हें खत लिख रहा हूँ। काश, कोई ऐसा भी डाकिया होता जो सर्वज्ञाता होता। जिसे हर शहर के, हर घर का पता होता और वो उस मकान के बारे में जानता, जहाँ तुम हो। मैं खत उस डाकिए को देता और वो तुम्हारे हाथ में रख देता। काश, ऐसा कोई डाकिया होता।

याद है तुम्हें! गर्मी के दिन। तुम मेरे कमरे में थीं। निढाल-सी। थकी हुई। उनींदी। तुम मेरे बिस्तर पर सो गई थीं। शांत-सी परी हो जैसे-तुम वैसी लग रही थी। बहुत गहरी नींद। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि नींद में तुम कुछ-कुछ बोलती भी हो। दो-तीन शब्द...'नईं। ... बिलकुल नईं।.... कल आऊँगी। आऊँगी.... ऊं! नईं!'

मैंने तुम्हें कभी नहीं बताया था। मैंने तुमसे कुछ पूछा भी नहीं था। मुझे लगा, तुम भीतर से डरी हुई हो। उसी बिस्तर पर मैंने थोड़ी-सी जगह बनाई थी। झिझक के साथ। डर था कि तुम्हारी नींद खुल गई तो पता नहीं तुम क्या समझ बैठो। मैं तुम्हारे साथ लेटा हुआ था। मेरा चेहरा, बिलकुल तुम्हारे चेहरे के पास था। ऐसा लगता था मैं एक किताब पढ़ रहा हूँ। सपने

देखती एक किताब। एक खूबसूरत लड़की की बंद किताब जो मेरे सामने खुल गई थी। मैं पढ़ रहा था। मैंने कितनी बार तुम्हारे माथे को चूमा था और कितनी बार होंठों को। यह चोरी थी। पता नहीं। यह तो उस परी से संवाद था जो नींद में थी।

अजीब बात है न! एक लंबा समय हम मिलते रहे। न तुमने नाम पूछा न मैंने। नाम की जैसे हमें जरूरत ही न हो। एक दिन यूँ ही अचानक तुमने कहा था, मेरा नाम मानसी है। मैंने भी तुरंत अपना नाम बताया- देव!

'कितना संक्षिप्त कितना आकर्षक नाम।' तुमने मेरे हाथ पर हाथ रखा था। मैंने भी बड़े जज्बाती लहजे में कहा था कि जितनी तुम दिलकश हो, उतना तुम्हारा नाम।

तुम शहर छोड़ कर जा रही थीं। हम दोनों उदास थे। यह एक मुरझाया हुआ दिन था। मेज पर चाय के दो कप पड़े थे। लेकिन चाय हम पी नहीं रहे थे। ऐसा लगता था हम दोनों के बीच सदियों के फासले आ बैठे हैं। तुम चुप थीं और मैं भी। जब हम मिलते तो कितनी सारी बातें होती थीं हमारे पास। न खत्म होने वाली बातें। सारी बातें वक्त की चील उठा कर चली गई हो जैसे।

इतना सन्नाटा हम दोनों के बीच!

जैसे हम मनुष्य न हों, सदियों पुराने पिरामिड हों, मुर्दा खामोशियों का तर्जुमा करते हुए।

कुछ आवाजें थीं, टूटते हुए रिश्तों की आवाजें।

तुम देर तक मेरे हाथ पर हाथ रख कर बैठी रहीं। तुम्हारी आंखों में पानी था। मेरी आंखों में दर्द का धुआँ।

तुम चली गईं। मैं तुम्हें जाते हुए देखता रहा। एक कारवाँ था जो जा रहा था। एक गर्द थी जो मुझसे लिपट रही थी।

तुम्हारे कमरे के सामने मैं कई दिन तक चक्कर लगाता रहा। तुम्हारे न होने की तड़प महसूस करता रहा। मानसी, तुम्हारे जाने के बाद मैंने न गुलमर्ग में कभी चाय पी, न कभी 'छाया' रेस्तरां में।

बहुत अरसे बाद तुम्हारा खत आया था। मैंने सोचा था तुम बहुत लंबा खत लिखोगी। हजारों बातें होंगी तुम्हारे खत में। लेकिन तुम्हारा खत छोटा-सा था। बहुत बार पढ़ा मैंने-

देव! बहुत याद आते हो तुम! थिसिस के लिए मैंने पांच शहर चुने। लेकिन प्रेमी एक ही चुना। वो तुम थे देव!

मेरी थिसिस पूरी हो गई है।

तुम कहोगे थिसिस तो पहले पूरी हो गई थी।

नहीं, मैं उस थिसिस की बात नहीं कर रही, जिंदगी की थिसिस की बात कर रही हूँ।

मेरी जिंदगी की थिसिस पूरी हो गई है।

खत में तुमने आखिर में मुझे शुभकामनाएं दी थीं। अपना नाम मानसी लिखा था।

यह क्या पहेली है मानसी, मैं बिलकुल भी नहीं समझ पा रहा । तुम्हें खत लिख रहा हूँ। मैं ऐसे खत को लिख रहा हूँ जो तुम तक कभी नहीं पहुँचेगा। मेरी मेज पर पड़ा रहेगा। जिन खतों को लिख कर मेज पर रख दिया जाता है, वो बहुत हलाक करते हैं।

जिंदगी की थीसिस का पूरा होना- मैं बिलकुल भी नहीं समझा। मैं समझना भी नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ तुम्हारा होना। मैं चाहता हूँ तुम्हारी उपस्थिति। मैं नहीं चाहता तुम अनुपस्थित रहो। यह पृथ्वी तुम्हारी है और मैं भी।

1875, सेक्टर -6, बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा), मो. 09813491654

खिड़कियों से झांकतीं आंखें

सुधा ओम ढींगरा

सारा दिन मुझे महसूस होता रहा जैसे कई आंखें मेरा पीछा कर रही हैं। मेरी हर हरकत देख रही हैं। पहले दिन से ही मेरे साथ ऐसा हो रहा है। अभी मैं अस्पताल से घर जा रहा हूँ, ढेरों आंखें मेरा पीछा करती मुझे लग रही हैं। यह सब क्या हो रहा है, मैं समझ नहीं पा रहा। क्या मैं मानसिक संतुलन खो रहा हूँ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। शायद यह मेरा भ्रम है। इस विचार को छिटक कर मैं सामने की सड़क पार करता हूँ। यह क्या...? आंखें फिर मेरा पीछा करने लगीं! मुझे पूरी तरह से लगने लगा है, उन आंखों ने मेरे बदन पर मानों कई मन भार डाल दिया है, क्योंकि शरीर को चलाना मुश्किल हो रहा है।

सड़क पार करते ही मैं रुक गया हूँ। मुझे कदम उठाने कठिन हो रहे हैं। लंबी सांस भीतर खींच कर मैं बाहर छोड़ता हूँ।

जब से इस शहर में आया हूँ, कुछ ठीक नहीं लग रहा। अजीब सी घुटन और उदासी वातावरण में महसूस कर रहा हूँ। वातावरण में कुछ और भी है, जो मेरी पकड़ में नहीं आ रहा। पिछले साढ़े तीन साल न्यूयार्क में रहा हूँ, हाल ही में इस शहर के हॉस्पिटल में डॉक्टर बन कर आया हूँ। पहले तो सोचा, शायद बड़े शहर से छोटे शहर में आने के उपरांत ऐसा लग रहा है, बात यह भी नहीं। हालांकि आते ही मैं निराश जरूर हुआ, छोटा शहर सोच कर यहाँ आया था, पर निकला यह कस्बा। शहर की सहूलियतों से लैस, छोटी सी जगह। मानसिकता भी मुझे कस्बे जैसी लगने लगी है। इस कस्बे को देख कर एक बात पक्की तरह से मैं कह सकता हूँ, अमेरिका के बारे में जो सर्वे पिछले दिनों छपा था, बिलकुल सही है। अमेरिका में युवाओं की संख्या बहुत कम हो रही है और बड़े-बूढ़े बढ़ रहे हैं। जबकि विश्व में भारत एक युवा देश माना जाने लगा है। यहाँ एक भी युवा चेहरा मुझे नजर नहीं आया, चाहे वह सड़क हो या हॉस्पिटल। कोई युवा डॉक्टर मुझे अस्पताल में नहीं मिला, सिवाय एक नर्स के। वह भी मेरी तरह नई आई है इस शहर में, नहीं, नहीं इस कस्बे में। सच कहूँ तो मैं यह नहीं सोच रहा कि यहाँ युवा होंगे ही नहीं, होंगे, जरूर होंगे, पर अधिकतर मुझे बड़े-बूढ़े ही नजर आए हैं।

काश! मैंने इस कस्बे के बारे में जानकारी ले ली होती। पर उससे क्या होता? मेरे पास विकल्प ही कहाँ था? मैं खुद ही अपनी सोच पर झुंझला गया। तीन साल की रेजीडेंसी में मैं यह जरूर समझ गया कि भारत या पाकिस्तान से पढ़ कर आए डॉक्टरों को नौकरी ग्रामीण या दूर दराज के छोटे-छोटे शहरों या कस्बों में मिलती है, जहाँ स्थानीय डॉक्टर जाना नहीं चाहते। हाँ, पैसा बहुत मिलता है। भारतीय डॉक्टर खुशी से स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें पैसा चाहिए होता है। मुझे भी तो पैसा चाहिए। ढेर सारा पैसा। सोचने-समझने के लिए था ही क्या! कहीं से भी नौकरी का प्रस्ताव नहीं आया था। असुरक्षा की भावना घर कर रही थी, गर नौकरी नहीं मिली तो क्या होगा? इसी विचार ने मुझे बेचैन किया हुआ था। कड़ी मेहनत से मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। यही सोच कर परेशान रहने लगा था। कोई नहीं जानता पर मैं तो जानता हूँ, कर्जा लेकर मैं इस देश में आया था। तीन साल की रेजीडेंसी में मैंने उस कर्जे को तो उतार दिया पर खर्चों की एक लंबी लिस्ट बार-बार मुझे अपने होने का अहसास दिलवाती रहती है।

बस ज्यों ही यहाँ के हॉस्पिटल से बुलावा आया, भाग कर मैं यहाँ आ गया। घर के हालात, माँ-पिता जी, चार बहनें और दो छोटे भाइयों के चेहरे आंखों के सामने घूमते रहते हैं। बहन-भाई पढ़ रहे हैं। पिता जी सरकारी स्कूल में शिक्षक हैं, इसी वर्ष रिटायर हो रहे हैं, पेंशन में गुजारा मुश्किल होगा। सिर पर छत नहीं। बहनों की शादियाँ भी करनी हैं। मजबूरी की लिस्ट मेरी आंखों के सामने घूमती रहती है।

पहले ही दिन बूढ़े डॉ. डेविड स्मिथ ने मेरा स्वागत करते हुए जो कहा उसका मतलब था- 'यंग मैन, तुम इस छोटे शहर में बूढ़े होने के लिए क्यों आ गए? बड़े शहर में जाते जहाँ हमेशा जवां रहते।' क्या कहता उन्हें! किसी बड़े शहर ने बुलाया नहीं। कस्बे ने पुकारा तो चला आया। मैं अपने हालात के बारे में सोचते हुए उनकी इस बात पर बस मुस्करा दिया।

'एनी वे, दिस इज़ योर चोईस। वेलकम टू दिस हॉस्पिटल।' डॉ. डेविड स्मिथ ने अंततः हाथ मिला कर बहुत आत्मीयता से मुझे आगोश में लिया।

अमेरिका नहीं चाहता कि मैं यंग रहूँ। मेरी नियति में भी शायद यही लिखा है, जो मुझे सिर्फ इसी शहर से नौकरी का स्वीकृति-पत्र मिला। सोच का चमगादड़ फिर से मेरे साथ चिपक गया।

जब से मैं इस शहर में आया हूँ, सोच ही तो रहा हूँ। मेरे दिमाग को चैन नहीं आ रहा। तनाव में रह रहा हूँ, पता नहीं क्यों रह-रह कर अपने अतीत में झाँकने लगता हूँ। क्या फितूर आया था मुझे, जो अच्छी-भली नौकरी छोड़ दी थी मैंने। यहाँ देश और परिवार से दूर अकेला संघर्ष करने चला आया। घर के हालात ऐसे हैं कि विदेश जाकर ही उन्हें संवारना, मात्र एक विकल्प लगा था मुझे उस समय। सभी तो ऐसा नहीं करते। मेरे जैसे बहुत से मजबूर लोग देश में और भी हैं। शायद मैं ही विदेश आना चाहता था। दरअसल मेरा कसूर भी नहीं, मेरी मेहनत रंग लाती गई। मुझे अवसर भी मिलते गए। सबसे बढ़ कर किस्मत ने साथ दिया जो आज मैं विदेश में डॉक्टर बन गया हूँ। कभी-कभी खुद को समझाने की कोशिश भी करता हूँ, मेरी विवशता थी, जिसे मैं फितूर समझता रहता हूँ। क्या यह देश छोड़ कर विदेश में रहने आने के द्वंद्व से उत्पन्न हुई कुंठा का परिणाम तो नहीं? अरे अब दिमाग में यह क्या प्रश्न पैदा हो गया? आजकल बेतुके प्रश्न सिर उठाते रहते हैं। सारे काम करता हुआ मैं इन प्रश्नों को सुलझाता रहता हूँ। मैं डॉक्टर हूँ, जानता हूँ ऐसा करना गलत है, फिर भी ऐसी हरकत मैं कैसे कर सकता हूँ! पर यहाँ आकर मैं ऐसा कर रहा हूँ। मेरे दिमाग में हर समय कुछ चलता रहता है। देश को तो मैंने साढ़े तीन साल पहले छोड़ दिया था, जब न्यूयॉर्क के एक घटिया से होटल में रह कर यू एस एम एल ई के स्टेप तीन की परीक्षा दी थी। वे क्षण कितने विस्मयकारी थे, जब मुझे पता चला कि मैं उस परीक्षा में पास हो गया हूँ और न्यूयार्क

के ही सिटी हॉस्पिटल में मुझे रेज़ीडेंसी भी मिल गई। साढ़े तीन साल वहाँ रह कर अब मैं इस शहर में डॉक्टर बन कर आया हूँ। दिमाग में विचारों का रेला-पेला लगा हुआ है।

सुधा ओम ढींगरा

अद्यतन कहानी संग्रह 'वसूली', कविता संग्रह 'सफ़र यादों का'। संप्रति 'विभोम-स्वर' की संपादक और ढींगरा फाउंडेशन की उपाध्यक्ष।

मैंने आंखें मूंद कर लंबी-लंबी साँसें लीं, सोच के चक्रव्यूह से मैं इसी तरह बाहर निकलता हूँ। कुछ क्षण रुक कर अपार्टमेंट की ओर चल पड़ा हूँ। डॉ. डेविड स्मिथ की बात कानों में गूँजने लगी- 'व्हाई यू हैव कम हेयर टु गेट गोल्ड इन दिस स्माल ओल्ड सिटी एंड ओल्ड हॉस्पिटल।' सही ही तो है, मैं स्वयं चला आया विदेश में हर कीमत अदा करने। अपने देश और उससे जुड़ीं स्मृतियाँ ही तो हैं अब मेरे पास। धीरे-धीरे वे भी धुंधला जाएंगी, मेरी याददाश्त के साथ। क्या रहेगा मेरे पास? इस सोच ने मेरे बदन में झुरझुरी पैदा कर दी।

अपने देश से मैंने एम बी बी एस किया और दिल्ली के सफदरजंग हॉस्पिटल में डॉक्टर की नौकरी भी ले ली। क्या दिन थे! चारों ओर खुशी की लहर दौड़ा करती थी। आसमान की बुलंदियाँ छूने को मन चाहा करता था, पर जीवन की कठोर सच्चाइयाँ और घर की परिस्थितियाँ शीघ्र ही मुझे जमीन पर ले आईं। कुछ ही दिनों में पता चल गया कि इस कमाई से परिवार की जरूरतें पूरी नहीं हो सकतीं। माँ-पिता जी अपने सब बच्चों को बहुत पढ़ाना चाहते हैं। पढ़ाई उनकी प्राथमिकता है। भरा-पूरा परिवार और एक सरकारी स्कूल के अध्यापक का वेतन! माँ बड़ी जुगत से सबके खर्चे पूरे करती। माँ से ही तो मैंने हिसाब-किताब करना और बजट में रहना सीखा। पढ़ने के लिए सब भाई-बहनों को बाहर छोटा-मोटा काम करना पड़ता। मुझे छात्रवृत्ति मिलती रही और मैं पढ़ता गया और एक दिन मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी की डिग्री मिल गई और मैं डॉक्टर बन गया। कुछ महीने ही मैंने हॉस्पिटल में नौकरी की थी। उस समय को मैं कैसे भूल सकता हूँ, उस समय के हर पल की याद ताजा है। वहाँ बहुत से डॉक्टर अमेरिका जाने की तैयारी कर रहे थे। उन्हीं से तो पता चला कि अमेरिका में डॉक्टर बनने के लिए यू एस एम एल ई की परीक्षा पास करनी पड़ती है। तभी मुझे जानकारी हुई कि यह वह परीक्षा है जो हर विदेशी डॉक्टर को अमेरिका में डॉक्टर बनने के लिए देनी पड़ती है। यू सी एम एल ई के तीन स्टेप होते हैं। मुझे तो यह भी नहीं पता था कि दो स्टेप अपने देश में दिए जा सकते हैं और तीसरा इसी देश में आकर देना पड़ता है। फिर किसी अस्पताल में रेजीडेंसी मिलती है। तीन साल रेजीडेंसी करने के बाद यहाँ प्रैक्टिस करने के लिए बोर्ड की परीक्षा पास करनी पड़ती है। इतनी परीक्षाओं के बाद अमेरिका में एक डॉक्टर बनता है। दूर की नहीं सोची थी, मैंने तो बस इतना सोचा, चलो, किस्मत को आजमाया जाए! किस्मत ने साथ दिया। दिल्ली में ही मैंने यू एस एम एल ई के दो स्टेप पार कर लिए और तीसरा इस देश में। यह सब आसान नहीं था, पर मेरी कर्मठता और मेरा अपने प्रति तथा उस शक्ति के प्रति अथाह विश्वास मेरे साथ था। इस बात में भी यकीन करता हूँ कि इस देश में आना लिखा था तभी मुझे रास्ते मिलते गए।

'क्या मैं भाग्यवादी हूँ?' कई बार अपने से यह पूछ चुका हूँ।

'नहीं, मैं भाग्यवादी नहीं, कर्मयोगी हूँ पर नियति का जीवन पर प्रभाव पड़ता है और उसके महत्व से इन्कार नहीं करता।' हर बार मैं अपने-आपको इस तर्क से समझा चुका हूँ।

ओफ्फ ये आंखें मुझे छोड़ नहीं रहीं, फिर मेरा पीछा करती लग रही हैं। मैं अपार्टमेंट जाने की

बजाय तेजी से अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स के दफ्तर की तरफ जाने के लिए मुड़ जाता हूँ। मुझे यहाँ नहीं रहना। यहाँ मैं पगला जाऊंगा। मैं किसी और अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स में अपार्टमेंट ले लूंगा। गलती मेरी है, मैंने ही रियल एस्टेट एजेंट से कहा था, मुझे हॉस्पिटल के बिलकुल पास अपार्टमेंट लेकर देना। मुझे कार नहीं रखनी। मैं साइकिल पर या चल कर काम पर जाना चाहता हूँ और एजेंट ने हॉस्पिटल से पांच मिनट की दूरी पर इस अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स में अपार्टमेंट ढूंढ दिया। इसमें एजेंट का क्या दोष? अब अपने आप को कोसने से क्या होने वाला है। कोई रास्ता निकाला जाए, मैंने अपने-आप को दिलासा दिया।

ओह! दफ्तर तो बंद है। चलो बंद होने और खुलने का समय देख लूँ, मैंने सोचा, कल सुबह यहाँ से होता जाऊंगा। रियल एस्टेट एजेंट जो मैथ्यू के फोन पर तो मैंने संदेश छोड़ ही दिया है। वह मुझे कॉल कर लेगा। अब मुझे अपने अपार्टमेंट की ओर चलना चाहिए।

मैं अपने अपार्टमेंट की ओर चल पड़ा हूँ। अरे यह क्या! आते-जाते सब राह चलते मुझे ऐसे देख रहे हैं जैसे मैं कोई अजूबा हूँ। अजीब सी नजरें... उदास, बोझिल, परेशान, किसी को खोजती पीड़ित आंखें! मुझे फिर महसूस होने लगा, जैसे ये नजरें मेरे बदन से चिपकती जा रही हैं। सड़क पर मुश्किल से खुद को ढोते हुए, थके बदन के बुजुर्गों की बुझती जीवन-रोशनी में बुझती हुई-सी उनकी आंखें, मेरे युवा बदन को टकटकी बांध कर देख रही हैं। ये आंखें मुझे बेचैन कर रही हैं!

यह कैसा शहर है? मेरे लिए सब कुछ नया है। इस देश में साढ़े तीन साल से मैं न्यूयार्क के एक जीवंत महानगर में रहा हूँ। इस शहर में आकर बौखला गया हूँ, ऐसा लगता है, शहर और शहर के लोगों में जान ही नहीं, हालांकि इस शहर की कुछ बातें और समस्याएँ मैं जान गया हूँ।

इस शहर में तंबाकू की खेती होती थी। तंबाकू सेहत के लिए खतरनाक है। जब से इस बात का संज्ञान सरकार को हुआ, सिगरेट और सिगार पीने पर पाबंदी लग गई। इससे तंबाकू कंपनियों को बेहद घाटा हुआ। मैं जब इस शहर की खोजबीन कर रहा था, मुझे बड़ी हैरानी हुई यह जान कर कि अमेरिका के कई स्टेट्स तंबाकू स्टेट्स ही कहलाते थे, क्योंकि वहाँ इसी की खेती होती थी। इन स्टेट्स के बड़े शहर तो अन्य धंधों की वजह से बच गए पर छोटे कस्बों की आर्थिक हालत बिगड़ गई। यह कस्बा या शहर कहूँ, इसी पाबंदी की चपेट में आ गया। यहाँ के युवा रोटी-रोजी खोजने बड़े शहरों की ओर निकल गए और बड़े-बूढ़े यहाँ रह गए। जो बुजुर्ग बच्चों के पास बड़े शहरों में गए भी, उन्हें वहाँ की भाग-दौड़ वाली जिंदगी रास नहीं आई। सारी उम्र उन्होंने इस छोटे से शांत कस्बे में गुजारी, जहाँ हर चीज आस-पास है। बड़े शहर उन्हें अपने साथ जोड़ नहीं पाए, वहाँ के आकर्षण भी उन्हें बांध नहीं पाए और वे लौट आए, अपने इस छोटे से शहर में कस्बाई जीवन का सुख लेने। अब चाहे वे कितने भी अकेले हैं, पर अपने मनपसंद माहौल में हैं। चलते हुए सोचना मेरी पुरानी आदत है।

आज ही अस्पताल में एक उम्रदराज पाकिस्तानी डॉक्टर खान ने मुझे बताया- 'जिस अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स में डॉ. मलिक आप रहने आए हैं, वहाँ सभी सीनियर सिटिजंस ही रहते हैं, क्योंकि अस्पताल करीब है। यह अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स एक तरह से सीनियर सिटिजंस होम्ज है। इस कॉम्प्लेक्स के सारे बुजुर्ग इसी अस्पताल में आते हैं। बहुत प्यार करने वाले हैं। कुछेक बड़े-बूढ़ों का इस दुनिया में कोई नहीं, घबराना नहीं अगर वे तुम में अपनों की तलाश करने लगें। ये सब अपनों के प्यार और स्नेह से ठगे हुए, टूटे हुए लोग हैं, जिनके बच्चे हैं, वे कभी-कभार उन्हें मिलने आते हैं, जिनके बच्चे नहीं हैं, वे दूसरों में प्यार ढूंढते हैं। अस्पताल में डॉक्टरों और नर्सों से बहुत जुड़ गए हैं। अपनत्व से भरे, अकेलेपन का दंश झेलते ये बड़े-बूढ़े मुझे मेरे अम्मी-अब्बू की याद दिलाते रहते हैं। वे भी इन्हीं की तरह मुझे पाकिस्तान में मिस करते होंगे।'

'डॉक्टर खान, यह नहीं कि मुझे बड़े-बूढ़े पसंद नहीं। मैं बुजुर्गों को बहुत पसंद करता हूँ, उनकी बेहद इज्जत करता हूँ। वे अनुभवों और किस्सों का खजाना होते हैं, पर जो अनुभव मुझे हो रहे हैं, उनसे मैं डर गया हूँ।' मैंने डॉ. खान को कहा था।

'कैसे अनुभव?' डॉ. खान ने पूछा!

मैंने डॉ. खान को पूरा किस्सा बताया- 'पहले दिन ही जब मैं यहाँ आया, घर का दरवाजा खोलते ही, आस-पास के घरों की खिड़कियों से कुछ चेहरे एकदम झांकते हुए मुझे घूरने लगे थे। किसी खिड़की से एक, किसी खिड़की से दो। अगर चेहरा होता तो शायद अजीब नहीं लगता, पर यहाँ तो दो या चार आंखें ही दिख रही थीं मुझे। शून्य में टंगी, निर्जीव स्थिर-सी आंखें। घर के अंदर गया तो ऐसा लगा कि जैसे मेरी पीठ पर वे आंखें चिपक गई हैं। इस खयाल को झाड़ कर मैंने अपने घर की खिड़की से बाहर देखा, वे आंखें उसी तरह मुझे घूरती मिलीं। मेरे बदन को चीरती हुई-सी। मैं बार-बार यह सब सोचता और बेचैन होता रहा। रात मैंने किसी तरह काटी, दूसरे दिन सुबह फिर खिड़की के पर्दे खोलते ही वे आंखें अपनी-अपनी खिड़की से मेरी ओर झांक रही थीं, जैसे सारी रात वहीं चिपकी रही थीं। यह देख कर मुझे बड़ी घबराहट हुई। फटाफट मैंने खिड़की का पर्दा बंद किया। सिर्फ इतना ही नहीं, मैं अस्पताल जाने के लिए बाहर निकला, न चाहते हुए भी उन खिड़कियों की ओर मेरी नजर उठ गई, कई और आंखें अलग-अलग खिड़कियों से मुझे देखती नजर आईं। ज्योंही दरवाजा बंद करके मुड़ा वे आंखें मुझे मेरी पीठ से चिपकी महसूस होने लगीं।'

इतना सुनते ही डॉ. खान जोर से हँस पड़े, 'यंग मैन, इन आंखों से डरने की जरूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगीं।'

पर मैं तो यहाँ से दूसरी जगह जाने का मन बना चुका हूँ।

मेरे पैर कदम दर कदम सड़क नाप रहे हैं और दिमाग एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे विचार से उलझ रहा है और मैं कभी अतीत के गलियारे का चक्कर लगाता हूँ, तो कभी वर्तमान में लौट आता हूँ। सोच-विचार के इसी चक्र में चलता हुआ मैं अपार्टमेंट के सामने आ खड़ा हुआ हूँ। अस्पताल से यहाँ तक दिमाग और कदम कितना कुछ नाप गए मुझे पता ही नहीं चला।

ये क्या? मेरे दरवाजे के आगे तीन प्लास्टिक बैग और उनमें प्लास्टिक के डिब्बे पड़े हैं। मैंने दरवाजा खोलने से पहले एक प्लास्टिक के बैग को उठाया। उस पर एक कागज चिपका है, जिस पर लिखा है, 'वेलकम टू आवर नेवरहुड। इट्स ए फ्रूट केक। टॉम एन्ड सू, अपार्टमेंट नंबर 1130' यानी ठीक उसके सामने वाला।

मैंने दूसरा बैग उठाया। उस पर जो कागज़ लगा है, उस पर हिंदी में लिखा हुआ है- 'तुम हमारे बेटे जैसे हो। एक बैग में रसम वड़ा है और दूसरे में सांभर इडली। तुम्हारी छुट्टी वाले दिन तुम्हें डोसा खिलाऊंगी। खाना नहीं बनाना। तुम्हें रोज खाना मिल जाएगा। मीना और शंकर रेड्डी, अपार्टमेंट नंबर 1132, यानी सामने वाले के साथ वाला। यहाँ के नंबर भी अजीब हैं-1131, 1133 दूसरी तरफ हैं।

बड़ी हैरानी हुई, यह सब पढ़ कर, मेरी आंखों में मोती उभर आए। मैं उन्हें अपनी आंखों में ही सोख लेता हूँ। आंखों से कुछ भी निकले, मुझे गवारा नहीं। पीछे घूम कर मैंने खिड़कियों की ओर देखा, कई आंखें मुझे देख रही हैं। मैंने हाथ हिला कर उन्हें कमरों से बाहर आने का इशारा किया। मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आंखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूंढने लगती हैं। मैंने अपना दरवाजा खोला और तीनों बैग अंदर रखे और फिर बाहर निकल आया। सामने ही मुझे टॉम और सू खड़े मिले। उन्होंने स्वयं को मिलवाया। तकरीबन अस्सी साल के होंगे। मीना और शंकर रेड्डी भी तकरीबन उसी उम्र के होंगे। उन्होंने हाथ मिलाते ही कहा, 'मैं तुम्हारी तरह का ही था, जब यहाँ इसी

अस्पताल में आया। मीना भी इसी अस्पताल में डॉक्टर थी। उस समय का अस्पताल एक गांव का अस्पताल था, अब तो यह शहर का बन गया है। यहाँ रहने वाले मित्र अधिकतर मेरे पेशेंट थे।' वे बिना रुके ही बोलते गए, जैसे किसी से बात करने को तरस रहे हों। सामने के दूसरे अपार्टमेंटों से स्टिक लेकर चलते हुए रिक और रकैल आए। डॉ. रेड्डी ने बताया कि दोनों 95 वर्ष के हैं पर अभी भी खुद अपने सारे काम करते हैं। ऐमा और पीटर, इसाबेल और डिक भी आए, मिले।

'तुम खाना खाओ, फिर मिलेंगे', कह कर सब चले गए पर डॉ. रेड्डी वहीं खड़े हैं, मैं समझ गया, क्यों खड़े हैं? मैंने उन्हें अपने अपार्टमेंट में आने के लिए कहा, 'चलिए, मेरे यहाँ बैठ कर इत्मीनान से बातें करते हैं।'

'मैं तुम्हें खाना सर्व करती हूँ' भीतर आते ही मिसेज़ रेड्डी ने कहा।

'नहीं आंटी जी, मैं अस्पताल से आकर एक दम खाना नहीं खा सकता। पहले थोड़ी देर सुस्ताऊंगा, फिर नहा कर खाना खाऊंगा' मैंने विनम्रता से कहा।

वे दोनों पति-पत्नी मेरे सामने के सोफे पर बैठ गए। वे दोनों चुप हैं। वे बोलना चाह रहे हैं, पर बोल नहीं पा रहे। उनकी खामोशी उनकी बेताबी बन रही है, जो उनके चेहरे पर साफ झलकने लगी है।

मैं भी चुप हूँ। चाहता हूँ वे पहले बोलें। हम तीनों में मौन ने अपना स्थान ग्रहण किया हुआ है। इन्हीं क्षणों में मैं सोचने लगता हूँ- अच्छा है कि यह अपार्टमेंट पूरी तरह सजा-सजाया है। वरना इस समय वे कहाँ बैठते? रियल एस्टेट एजेंट के साथ मैंने यह भी शर्त रखी थी कि अपार्टमेंट फर्निश्ड हो ताकि मुझे कुछ खरीदना न पड़े। मैं थोड़ी आर्थिक मज़बूती के बाद ही अपना सब सामान खरीदना चाहता हूँ। यह सब सोचते हुए अचानक ही मैंने रेड्डी दंपति से सवाल पूछ लिया-

'आपका बेटा कहाँ रहता है?'

यह सुन दोनों भौचक्के से रह गए! वे असहज हो गए। अरे, यह मैंने क्या किया! शायद मैंने उनकी किसी दुखती रग पर हाथ रख दिया।

'सागर मलिक यह तुमने क्या किया? पहली बार मिले हो, इतना इनफॉर्मल कैसे हो गए? बिना कुछ जाने सवाल पूछ लिया।' मैंने खुद को कोसा। अब कोसने से क्या हासिल होगा? तीर कमान से निकल चुका है। इस समय माहौल को ठीक करने की जरूरत है...

'क्षमा चाहता हूँ', अचानक प्रश्न मुंह से उछल गया। 'आपने लिखा कि मैं आपके बेटे जैसा हूँ।' मैंने झिझकते-झिझकते कहा।

रेड्डी दंपति ने लंबी श्वास ली। होंठ हिले पर बोल नहीं पाए। लगा, उनके अंदर पिघलता दर्द उन्हें बोलने नहीं दे रहा। पीड़ा आंखों से झलकने लगी। मैं शर्मिंदगी महसूस करने लगा।

'आई एम सो सॉरी। अनजाने में आपका दिल दुखा दिया।'

डॉ. रेड्डी गला साफ करते हुए धीमी आवाज में बोले, 'डू नॉट फील बैड। तुमने दिल नहीं दुखाया। वर्षों से दबी-घुटी पीड़ा बस कचोटती रहती है। हमीं उसे निकलने नहीं देते।'

मैं बोला नहीं। बस उन्हें देखता रहा... वर्षों के अनुभवों ने दोनों के चेहरों पर गहरी लकीरें खींच दी हैं। ढलता शरीर, इंतजार से टूट कर बुझी-बुझी आंखें।

'बेटा पैरिस में रहता है, फ्रांसिसी लड़की से शादी की है उसने। हम इस शादी के हक में नहीं थे। अपने संस्कारों में बंधे हम अड़े रहे और वह अपनी जिद्द पर डटा रहा। ऐसे में दूरियाँ इतनी बढ़ गईं, जिसका हमें एहसास नहीं हुआ और इस तनातनी में हमने बेटा ही खो दिया।' माँ का दर्द, आवाज और आंखों से बह निकला। 'अहम की इतनी तेज आंधी आई कि सब कुछ उड़ा कर ले गई। हम बस हाथ मलते रह गए हैं। बेटा तो हमसे बात भी नहीं करता।'

मैं उनकी ओर देख नहीं सका और उठ कर रसोई में चला आया हूँ। पानी के तीन गिलास भरे

और कॉफी टेबल पर जाकर रख दिए। मिसेज रेड्डी पानी का गिलास उठा कर पीने लगीं।

'ओह, आई एम सॉरी टू हियर दिस। एक दिन वह आपसे मिलने जरूर आएगा।' मैंने सांत्वना देते हुए कहा। मुझे दुख लगा यह सुन कर।

'उस दिन के इंतजार में तो हम बूढ़े हो गए। हमें मालूम है वह नहीं आएगा, फिर भी हम इंतजार कर रहे हैं। वह मेरा बेटा है, मेरी ही तरह अक्खड़ और जिद्दी।' इस बार डॉ. रेड्डी बोले। उनकी आवाज में मैंने उनके भीतर की टूटन महसूस की।

'सागर बेटा', मिसेज रेड्डी के मुंह से अपना नाम सुन कर मैं चौंकता हूँ पर उसी क्षण संभल जाता हूँ, इनके पड़ोस में आया हूँ, मेरा नाम जान गए होंगे और सहज होकर 'जी आंटी' कहता हूँ।

'अब तो उससे मिलने की आस ही टूट चुकी है। उसका जो नंबर हमारे पास था, वह डिस्कनेक्ट है और नया नंबर उसने अनलिस्टेड करवाया हुआ है। उसकी मर्जी के बिना ऑपरेटर हमें नंबर नहीं देगा।'

'क्या इतने वर्षों में आपकी उससे कभी बात नहीं हुई?' मैं बड़े प्यार से पूछता हूँ।

'घर छोड़ कर जब वह गया, उसका जो नंबर हमारे पास था, वह उसने डिस्कनेक्ट करवा दिया। वर्षों हमें उसकी खबर नहीं मिली। उसके दोस्तों के दरवाजे खटखटाए, किसी ने हमें नंबर नहीं दिया शायद उसने मना किया हुआ होगा। एक दोस्त हमारी हालत देख कर पिघल गया और उसने हमें उसका फोन नंबर दे दिया।' मिसेज रेड्डी अपने उमड़ रहे भावों को समेटने लगीं।

मेरा मन जिज्ञासु हो उठता है। जानना चाहता है, ऐसा क्या हो गया कि एक बेटा अपने माँ-बाप से मिलना नहीं चाहता।

मैं उत्सुकता में पूछता हूँ, 'फिर बात हुई?'

'हाँ हुई।' आवाज कुएँ से आई महसूस हुई और आंखें नम हो गईं।

'वह शुरू से ही विद्रोही स्वभाव का था। हमारा प्यार भूल चुका है, हमारी छोटी-बड़ी बातों की गांठें पाले बैठा है। न उसने माफी मांगने का समय दिया, न स्पष्टीकरण का, बस अपनी बात कह कर फोन काट दिया। अब तो उसका फोन भी नहीं मिल सकता।' आंखों की नमी बहनी शुरू हो गई। मैं कुछ पेपर नैप्किंज़ उन्हें देता हूँ। वे उनसे आंखें सोक रही हैं।

कमरे का माहौल बहुत संजीदा हो गया है।

'यहाँ अकेले रहने से भारत क्यों नहीं लौट जाते? वह तो आपका अपना देश है।' मैं फिर बेबाकी से बोल जाता हूँ।

रेड्डी दंपति के चेहरे के भाव बदल रहे हैं... अरे यह मैंने क्या कर दिया? मेरी सबसे बुरी आदत है, बेमौके, बेतुके प्रश्न कर देना। समय और हालात की नजाकत भी नहीं देखता।

अमावस्या की काली रात उनके चेहरों पर छा गई। मैं समझ गया, यह प्रश्न भी उन्हें कष्ट दे गया। नहीं चाहता वे इस प्रश्न का उत्तर दें। इन क्षणों को टालने के लिए मैं उठ कर रसोई में चला आया हूँ। खाना ठंडा नहीं हुआ, ज्यादा गर्म मैं खा नहीं सकता। प्लेट में डाल कर, उन्हीं के पास जाकर बैठ जाता हूँ।

'अरे... मैं गर्म कर देती।' आंटी जैसे नींद से जागती बोलीं।

'मैं इतना गर्म खाना ही खा सकता हूँ, जितना यह है।' मिसेज रेड्डी की मानसिक स्थिति देख कर मेरी आवाज और भी नरम हो गई, 'आपके लिए भी प्लेट बना लाऊँ, भोजन काफी है, तीनों खा सकते हैं।'

'डॉ. मलिक, उम्र के इस पड़ाव पर सूरज ढलते ही हम कुछ हल्का सा डिनर कर लेते हैं।' मिसेज रेड्डी ने उत्तर दिया। डॉ. रेड्डी के चेहरे पर अभी भी कालिमा छाई हुई है। ऐसा लग रहा है जैसे वे अतीत की ऐसी गुफा में चले गए हैं, जहाँ अंधेरा ही अंधेरा है और अब वे रोशनी में आना ही नहीं चाहते।

'मिसेज रेड्डी, आप दक्षिण भारतीय होते हुए भी हिंदी बहुत अच्छी बोलती हैं।' मैं उनके विचारों

की दिशा बदलना चाहता हूँ।

'हम दोनों के दादा और परिवार व्यवसाय के सिलसिले में कानपुर आ बसे थे। हम दोनों का जन्म कानपुर का है। इतने वर्षों से इस देश में हैं, अभी भी सोचते हिंदी में हैं। हमारे पूर्वज बेल्लरी के हैं, तेलुगु भी आती है पर अधिकतर हम हिंदी में ही बात करते हैं।' मिसेज़ रेड्डी ही उत्तर दे रही हैं। डॉ. रेड्डी उसी तरह अपने विचारों में खोए बैठे हैं। मैं उनकी सोच की तंद्रा तोड़ नहीं पाया।

एक अरसे बाद दक्षिण भारतीय स्वादिष्ट व्यंजन खाने का लुत्फ उठा रहा हूँ। खाना खाते हुए भीतर कुछ कचोट रहा है, खामख्वाह अपने प्रश्नों से मैंने रेड्डी दंपति को चोट पहुंचा दी। मैं अपने उतावलेपन पर काबू नहीं रख सकता, बचपन से मुझे माँ इस आदत के लिए टोकती थी। पर अभी तक मेरे में कोई सुधार नहीं आया। मैं कोशिश बहुत करता हूँ, पर मूलभूत प्रवृत्ति बदल नहीं पा रहा।

'डॉ. मलिक, देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़ कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार कर लिया।' डॉ. रेड्डी की खोई-खोई-सी आवाज कमरे के बोझिल माहौल को तोड़ती उभरी। डॉ. रेड्डी के बोलने पर मैंने राहत की सांस ली।

'जब वह पौधा वृक्ष बन गया तो हम उसे उखाड़ कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आंधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड-मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया आकर हमने विदेशी धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया।' यहाँ उन्होंने एक बार सांस ली। 'इस धरती ने उसका टुंड-मुंड रूप भी स्वीकार किया।' डॉ. रेड्डी के चेहरे से कालिमा हटने लगी। भावनाओं की गहरी निराशाजनक गुफा में, संवेगों को निकास का मार्ग मिल गया, वहीं से आशा की रोशनी भीतर जाने लगी। वर्षों से दबी-घुटी भावनाओं को मुझ अजनबी के सामने प्रकट कर वे अंदर तक सकून पा गए। चेहरा तो आइना है, जिसे आसानी से पढ़ा जा सकता है। उनके चेहरे की शांति मैं देख रहा हूँ। शायद आजतक वे किसी को ये बातें बता नहीं पाए। दोनों पति-पत्नी भीतर-ही-भीतर घुटते रहे। अथक प्रयास के बाद उन्होंने दिल में दबाई गांठों को खोला।

'जी भर कर हर तरह से वसूली की गई हमसे, और हम लुटते रहे, उसे प्यार समझ कर। जिन मित्रों के साथ जीवन के 40 साल गुजारे, अपना दुख-सुख बांटा, अब उन्हीं में वापिस लौट आए।' कह कर डॉ. रेड्डी खड़े हो गए।

'जो कभी विदेश था, अब अपना लगने लगा है। डॉ. मलिक, जीवन की लंबी यात्रा में दिल के रिश्ते ही काम आते हैं, उन्हें संभाल कर रखना।' कहते हुए वे दरवाजे की ओर बढ़े और साथ ही मिसेज रेड्डी भी खड़ी हो गईं और डॉ.रेड्डी के साथ हो लीं। मैंने उन दोनों से हाथ मिलाते हुए कहा, 'मेरे माँ-पिता तो भारत में हैं। यहाँ आप ही हैं मेरे अपने। जब भी मन चाहे, बेटे के घर चले आएँ।' मैं आगे कुछ भी बोल नहीं पा रहा। उनके बाहर जाते ही मैं दरवाजा बंद करता हूँ।

मेरी आंखों के मोती जो मैंने अपनी आंखों में ही सोख लिए थे, मेरी हथेलियों पर आ गिरे। मैं जीवन में पहली बार इतना भावुक हुआ हूँ। मुझे अपना भविष्य दिखाई देने लगा... रिश्ते ही नहीं, यह देश क्या कम वसूल करता है... सहारे को तलाशती मेरी आंखें भी एक दिन इस देश की किसी खिड़की से झांकती हुईं, किसी की पीठ से चिपक जाएंगीं...।

101 Guymon Ct., Morissville, North Carolina-27560, USA
email : sudhadrishti@gmail.com

फाइल

पद्मा शर्मा

गाड़ी शहर की सड़कों को छोड़ती हुई गांव की ओर बढ़ने लगी थी। प्रशासनिक अधिकारी और उनका अमला गड्ढे भरे रास्ते को बड़े ध्यान से देख रहे थे। पहले इस गांव में आने के लिए रेल की पटरी की बगल वाले गिट्टी के रास्ते से आना पड़ता था। अब गांव तक पहुँचने के लिए रास्ता बन गया है। गांव में पहुँचते ही गांव के अन्य अधीनस्थ अधिकारी और कर्मचारी स्वागत के लिए तैयार खड़े थे। अधिकारी एस डी सिंह ने पहले से आदेश दे रखा था कि सभी लोग गांव के स्कूल में ही इकट्ठे हों तहकीकात वहीं होगी। स्कूल का पता एक-दो लोगों से पूछा। सरकारी गाड़ी अपनी लय और ताल से फर्राटे भरती हुई रुकी। तीन लोग उतरे। अमले में से अधिकारी को जल्द ही पहचान लिया हेडमास्टर की निगाहों ने। रुआब, दमखम, कपड़ों की सफेदी, चेहरे का तेज, आंखों के क्रोध, कदमों की कसावट इन सबसे हेडमास्टर ने ताड़ ही लिया। वह अपनी अदबकारी सांसें थामे उनकी अगुआई कर रहा था।

स्कूल की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उन्होंने देखा कि स्कूल में निर्माण कार्य कुछ दिनों पूर्व हुआ है... नए कमरे भी बन गए हैं। खेल के लिए अलग मैदान है, फर्श भी पक्का हो गया है। वे देख रहे थे कि लोग उनके पास आने को लालायित हैं। अधिकारी की एक नजर उन पर पड़े तो वे निहाल हो जाएँ और अधिकारी ने इज्जत से बात कर ली तो फिर कहने ही क्या हैं मानो सारा जहान मिल गया। एस डी सिंह के मन में कसैलापन छा रहा था।

उन्होंने पीछे आ रहे हेडमास्टर से पूछा, 'कितने टीचर हैं यहाँ?'

हेडमास्टर उनके प्रति श्रद्धा में लगभग झुकते-से बोले, 'जी सर, पांच।'

घनी दाढ़ी के बीच चेहरा पहचानते हुए उन्होंने कहा, 'आप यहाँ कब से हैं?'

'जी, मुझे लगभग बीस वर्ष हो गए।'

हेडमास्टर साहब उन्हें अपने कमरे की ओर ले गए। कमरे के बाहर तख्ती लगी थी- अवध नारायण सक्सेना, प्रधानाध्यापक

एस डी सिंह ने कमरे का निरीक्षण किया, छह गद्दीदार कुर्सियाँ और एक अच्छी टेबल भी रखी थी। छत का पंखा भी अच्छी हालत में दिख रहा था।

कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, 'अब मुझे पूरा मामला सुनाइए।'

पद्मा शर्मा
अद्यतन कहानी संग्रह 'जलसमाधि तथा अन्य कहानियाँ'।
संप्रति : म. प्र. उच्चशिक्षा विभाग में प्राध्यापक।

हेडमास्टर जी ने कोल्डड्रिंक उनके सामने रख कर कहा, 'सर, पहले ठंडा पी लीजिए।' एस डी सिंह ने बोतल एक तरफ हटा दी। हेडमास्टर ने उनका भाव समझ बताना शुरू कर दिया, 'सर, यहाँ एक मास्टर है अफजल। वह शहर से स्कूल में पढ़ाने आता है।' थोड़ा रुक कर गला साफ करते हुए बोले, 'सरपंच जी ने उस पर आरोप लगाया है कि अफजल ने उनकी बेटी के साथ अभद्र व्यवहार किया है। इसी बात को लेकर गांव में तनाव है। अफजल को गांव में ये लोग आने नहीं दे रहे।'

एस डी सिंह ने कहा, 'घटना कहाँ हुई?'

अब तो और भी परेशान हो गए हेडमास्टर जी। घबराते हुए बोले, 'सर, यहीं स्कूल में छुट्टी के बाद हुई थी घटना। मैं अपने घर चला गया था।' अंतिम वाक्य कह कर उन्होंने इस घटना से अपना पल्ला झाड़ना चाहा।

'फिर अफजल और वह लड़की यहाँ क्या कर रहे थे?'

'सर, अफजल कमजोर बच्चों की अलग से क्लास लेता था। उस दौरान हुआ सब।'

लंबी सांस खींच कर वे बोले, 'हूँ, तो कोई चश्मदीद गवाह?' एस डी सिंह ने चेहरा पढ़ना चाहा। उनके चेहरे पर पसीना बह रहा था जैसे लाइट जाने के बाद फ्रिज में पानी की बूंदें उग आती हैं।

घबराते हुए बोले, 'नहीं सर।'

'अफजल कब से नौकरी कर रहा है?'

'सर, उसे यहाँ आए दो साल हो गए।'

हेडमास्टर पसीना-पसीना हुए जा रहे थे।

हवा का रुख तय करता है कि चिंगारी से आग जलाना है या आग लगाना। जिला मुख्यालय के अधिकारी चिंतित थे कि घटना सांप्रदायिक हिंसा न बन जाए। गांव का तनाव शहर में न फैल जाए। जरा सी बात बवंडर का रूप अख्तियार कर भीड़ के पास पहुँचती है तो भीड़ विचलित होकर अविवेकी बन जाती है और सत्य तक पहुँचने का सामर्थ्य भी नहीं करती।

गहरी सोच में डूबे सिंह साहब ने कहा, 'पहले भी शिक्षकों पर ऐसे आरोप लगे हैं?'

हेडमास्टर सकपका गए। वह क्या उत्तर दे उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। 'जी... जी... नहीं सर।'

उन्होंने आदेशात्मक लहजे में कहा, 'फरियादी को बुलाओ।'

एस डी सिंह के साथ आए लोग बाहर चले गए। सन्नाटा बहुत कुछ बयाँ करता है। उसकी अपनी भाषा होती है। स्थितियाँ अपने अनुरूप वातावरण का कलेवर तैयार करती हैं। तभी तो तेरहवीं का भोज, भंडारे का भोज और किसी उत्सव आदि के भोज में वैसा ही माहौल व्याप्त जाता है। यहाँ का सन्नाटा भी राख के नीचे दबी चिंगारी की आमद दर्ज करा रहा था।

रामनारायण चौधरी को बुलाया गया। उसके सिर में सफेदी छा रही थी। आंखों पर चश्मा चढ़ा था। कलफ लगे कपड़ों का कड़कपन उनकी चाल में भी दिख रहा था।

अपनी ठसक में एक हाथ ऊपर को थोड़ा सा उठाते हुए चौधरी रामनारायण ने नमस्ते की। अपना परिचय देते हुए कहा, 'मै सरपंच रामनारायण चौधरी।'

सिंह साहब ने देखा बुढ़ापा सिर चढ़ कर बोल रहा था पर अकड़ अभी भी ज्यों की त्यों थी जैसे मुर्दे की अकड़ होती है। रस्सी जल गई पर बल नहीं गया। मूंछें ऊपर की ओर तलवार की नोंक के समान उठीं हुई थीं। चेहरा और चाल का चरित्र से गहरा नाता होता है। उसने सरपंच शब्द पर कुछ ज्यादा ही जोर दिया। रसूखदार को समय और सत्ता बदलने से कोई मतलब नहीं होता वह तो हर हाल

में अपना प्रभाव जमाए रखना चाहता है।

उन्होंने सरपंच की ओर इशारा करते हुए कहा, 'हूँ, आप बताइए क्या घटना है?'

सरपंच ने कहना शुरू किया, 'अरे साब, ये अफजल मास्टर ने हमारी लड़की के साथ गलत व्यवहार किया है। स्कूल और गांव की इज्जत की बात थी जो हमने बात गांव से बाहर नहीं जाने दी। वो पढ़ाता-लिखाता कुछ नहीं बस हमारी लड़कियों को गलत नजरों से देखता है। उस दिन तो हद ही हो गई साब, उसने मेरी लड़की का हाथ पकड़ा उसके कंधे पर हाथ रखा और... और साब क्या कहूँ ...कहते हुए शर्म आती है... हम अपनी बेटी के साथ हुई घटना कैसे बताएँ...।'

'तो आप लड़की को बुलवा दीजिए' एस डी सिंह ने बात काटते हुए कहा।

सरपंच थोड़ा तैश में बोला, 'अरे साब, वो छोटी है और बहुत डरी हुई है। मैं बता तो रहा हूँ आपको सब कुछ...।'

सिंह साहब ने बीच में टोकते हुए कहा, 'किस कक्षा में है तुम्हारी लड़की?'

'जी, कक्षा आठ में।'

'हूँ, तो तुम्हारी लड़की इतनी छोटी कक्षा में है?'

'नहीं साब, वो मेरे बेटे की बेटी है। मेरी बेटियाँ तो अपनी-अपनी ससुराल हैं।'

सिंह साहब ने कहा, 'आपकी लड़कियाँ भी इसी स्कूल में पढ़ी हैं?'

'जी साब।'

'तो क्या उनके साथ भी कभी किसी ने गलत व्यवहार किया था?'

यह प्रश्न सुन कर सरपंच चौंक गया। उसकी बूढ़ी आंखें एस डी सिंह के चेहरे को गहराई से देखने लगीं। उसने झिझकते हुए कहा, 'नहीं साब।'

सिंह साहब ने हेडमास्टर की ओर मुखातिब होते हुए कहा, 'आप बताइए क्या आपके स्कूल में पहले भी ऐसा कभी हुआ है?'

हेडमास्टर जी घबड़ा गए। वह समझ नहीं पा रहे थे कि क्या कहें। यदि सच कहते हैं तो सरपंच परेशान करेगा। झूठ भी कैसे कहें, यदि सच पता चल गया तो फिर उनकी खैर नहीं। बीते हुए कल में पाप की परछाईं व्यक्ति के मन को सदा उद्वेलित करती है। वह बेचैन रहता है कि कहीं सच सबके सामने न आ जाए।

सिंह साहब ने हेडमास्टर की आंखों में आंखें डाल कर कहा, 'मास्टर जी, शिक्षक का काम सत्य बोलना होता है। यदि ये काम शिक्षक नहीं करेगा तो समाज किससे उम्मीद रख सकता है। धर्म भी यही कहता है कि सौ गुनहगार छूट जाएँ पर एक बेगुनाह को सजा न मिलने पाए।

हेडमास्टर ने माथे पर छलक आए पसीने को पोंछा फिर सरपंच की ओर देखने लगे।

सिंह साहब सब कुछ समझ रहे थे। उन्होंने कहा, 'मास्टर जी, आपने मुझे पहचाना?'

हेडमास्टर उत्सुकतावश उन्हें देख रहे थे और स्मृतिपटल पर जोर डाल रहे थे।

अपना नाम बताते हुए वे बोले, 'मैं शिवदत्त सिंह। पहचाना?'

वे आगे बताने लगे, 'मैं इसी स्कूल में शिक्षक बन कर आया था। मैं उच्च जाति से नहीं था इसलिए पूरा गांव मेरा विरोध करता था, विशेष कर ये सरपंच जी। मुझे ताने दिए जाते थे- देखो वो मास्साब जा रहे हैं। अब ऐसे लोग आएंगे हमारे बच्चों को पढ़ाने। सरपंच का दबाव था कि मैं उनके घर जाकर उनके बच्चों को पढ़ाऊँ। पर मेरा उत्तर था कि मेरे लिए सब बच्चे बराबर हैं, मैं स्कूल में ही सब बच्चों की एक्स्ट्रा क्लास लेता हूँ, वहीं पढ़ा दूंगा। वे चाहते थे अन्य लोगों की तरह मैं इनके घर जाकर जी हजूरी करूँ, उनकी हवेली पर जाकर माथा टेकूँ। मेरे मना करने पर इन्होंने इसे प्रेस्टीज पोइंट बना लिया और मुझ पर आरोप लगा दिया कि मैंने इनकी लड़की के साथ बदसलूकी की है।'

सिंह साहब ने उन दोनों के चेहर पढ़े। फिर बोले, 'अगर पुलिस केस हो जाता तो मेरा भविष्य बर्बाद हो जाता। मैंने समझदारी से काम लिया और

लंबी छुट्टी पर चला गया। मैंने संकल्प लिया कि इस योग्य बनूंगा कि सब मुझे सलाम करें। भाग्य ने मेरा साथ दिया और मेरा पी एस सी से नायब तहसीलदार के लिए चयन हो गया।'

वे पानी पीने के लिए रुके। फिर बोले, 'वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है जब मैं आखिरी दिन स्कूल आया तो आप सब मुझे बस तक छोड़ने गए थे। सबके व्यवहार में अचानक अंतर आ गया था। सब मेरा सम्मान करने लगे थे। जो सम्मान मुझे शिक्षक बन कर मिलना चाहिए वह सम्मान प्रशासनिक अधिकारी बन कर मिला। है न ताज्जुब की बात?'

सरपंच हैरान हो गया। उसकी हालत खराब हो रही थी।

सिंह साहब ने उन दोनों की ओर देखा और कहा, 'शिक्षक का सम्मान करना सीखो। हम जैसों को अधिकारी बनाने के पीछे शिक्षक का ही हाथ होता है।'

हेडमास्टर घिघियाते हुए-से बोले, 'सर, आप तो सब जानते हैं, हम पानी में रह कर मगर से वैर कैसे कर सकते हैं?'

सिंह साहब बोले, 'हेडमास्टर सच को सच और झूठ को झूठ नहीं कहेगा तो हम बच्चों को क्या सिखाएंगे। मैं तो शिक्षक ही बने रहना चाहता था पर आप सबने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं इस पद को हासिल करूँ, जिसे लोग सलाम ठोकते हैं। सलाम ठोकना और सम्मान करना दोनों में बहुत अंतर है। अधिकारी जब तक पद पर रहेगा तब तक लोग उसे सलाम ठोकेंगे पर शिक्षक के रिटायर होने के बाद भी लोग उसका सम्मान करेंगे।'

हेडमास्टर घबड़ा कर पसीना-पसीना हुए जा रहे थे। सिंह साहब बोले, 'ये मैं जानता हूँ अफजल निर्दोष है। जो मेरे साथ हुआ, वही उसके साथ हुआ। फर्क बस इतना हुआ वह आपके जाल से बच नहीं पाया। मैंने उसके भी बयान दर्ज किए हैं। उसे पीटने की कोशिश भी की गई। बच्चों को उसके खिलाफ भड़काया गया। बच्चों ने मना किया तो उन्हें फेल करने की धमकी दी गई। स्कूल में उसके विरुद्ध जाने क्या-क्या लिखा तुम लोगों ने।'

सरपंच की ओर देखते हुए बोले, 'एक और शिवदत्त सिंह मत बनने दो। लोगों का विश्वास उठ जाएगा शिक्षक की नौकरी से। अफजल का रिकॉर्ड देखा है मैंने, वह बहुत इंटेलीजेंट है। उसके ज्ञान का फायदा उठाओ तो वह कई शिवदत्त तैयार कर देगा। इस गांव की तस्वीर बदल देगा। मैंने स्कूल के बच्चों और उनके अभिभावकों से बात की है। वे लोग बहुत पसंद करते हैं उसे। इस गांव को जातिगत मुद्दे से दूर रखो।'

स्वार्थ की पूर्ति के लिए किस तरह लोग अकारण ही घटना और दुर्घटना को कल्पना का जामा पहना देते हैं। सुनने वाले उन पर आंख बंद कर विश्वास कर लेते हैं और कूद पड़ते हैं सब हवन कुंड में। ऐसे हवन कुंड में जिसका धुआँ वातावरण की शुद्धि नहीं करता बल्कि उसकी तपन न जाने कितनों को जला कर भस्म कर देती है।

उन्हें लगा लोहा गरम है, वे आगे बोले, 'देख लो, अपनी गलती सुधार लो या फिर मैं झूठा केस लगाने के आरोप में जेल भेज दूँ', कह कर वे बाहर निकल गए।

सरपंच का बुरा हाल था। वह दौड़ते हुए पीछे भागा और पैर छूने लगा, 'साहब हमें बख्श दो, हमें माफ कर दो। मैं यह केस वापस ले लूंगा और आगे से ऐसा कभी नहीं करूंगा।'

सरपंच ने केस वापस लेने के लिए आवेदन लिखा और साथ में माफीनामा भी। हेडमास्टर ने भी अफजल के पक्ष में अपने बयान लिख कर दिए।

एस डी सिंह ने इन सभी कागजातों को फाइल में रख कर उसे बंद कर दिया, जैसे केस भी बंद हो गया हो। सिंह साहब ने फाइल को सीने में भींच कर कस कर पकड़ लिया जैसे उन्होंने अपने ही केस पर फतह प्राप्त कर ली हो।

एफ-1, प्रोफेसर कॉलोनी, शिवपुरी, म.प्र. 473551 मो.9406980207

संदूक

सोनम सिंह

ट्रेन अपनी लय में थी। मुझे खिड़की के पास सीट मिल गई थी। मैं बाहर का नजारा देखने में मगन था। हरे-हरे, चौकोर-चौकोर खेत ट्रेन के साथ-साथ दौड़ते फिर कुछ देर बाद वो हार जाते और अपनी जगह पर छूट जाते। पापा ने बताया अब ट्रेन से हमारा गांव दिखेगा। ट्रेन हमारे गांव से होकर गुजरती और अगले स्टेशन पर रुकती, वहाँ से हम गांव आते। ट्रेन हमारे गांव की ओर बढ़ रही थी। मुझे इंतजार था अपने गांव का, उससे भी ज्यादा उत्सुकता थी एक आकृति को देखने की। क्या वह इस बार भी खड़े होंगे? हो सकता है वह भूल गए हों कि हम आज ही आने वाले हैं, हो सकता है उनके पैर में दर्द हो और वह न आ पाएँ, या फिर आज भी उनकी सांस फूल रही हो और वह मौके पर ट्रेन के पास न पहुंच पाएँ। मैं इसी सोच में पड़ा हुआ था, तभी दूर से एक आकृति दिखाई दी, जो पास आती जा रही थी। अरे! ये वही तो हैं। बिलकुल झुके हुए, दुबले-पतले, कपड़े कम और झुर्रियाँ ज्यादा पहने हुए। ट्रेन उनके आगे से गुजरी, मैं जोर से हाथ हिलाते हुए चिल्लाया, बाबा! बाबा!। उनके चेहरे पर थोड़ी सी मुस्कान और थोड़ी सी निश्चिंतता बिखर गई। अब वह आश्वस्त हो गए कि हम आ रहे हैं। मैं कभी समझ नहीं पाया कि ट्रेन को उनके सामने से होकर गुजरने में कुछ सेकेंड लगते हैं, उन कुछ क्षणों में वह कितना और क्या पा लेते हैं, क्यों जब भी हम आते हैं वह ऐसे ही खड़े मिलते हैं, जबकि हमें घर ही आना होता है।

पक्के घर से सटी हुई मिट्टी की एक छोटी सी कोठरी थी जिसमें बाबा रहते थे। इस छोटे से कमरे के एक कोने में घड़ा था, जिसमें पानी रहता। एक कोने में उनकी खाने की थाली और लोटा रखा रहता। खटिए के नीचे एक पुरानी लोहे की संदूक थी, जिसमें बाबा की जरूरत की चीजें थीं। बाबा को सांस की बीमारी थी जिस कारण घर के सदस्यों का इस कमरे में आना-जाना कम ही होता था, साथ ही बाबा को भी घर के बाकी कमरों में घुसना मना था। जब भी खाने का समय होता बाबा अपने कमरे से थाली और लोटे में पानी लेकर

आंगन में उकड़ू बन कर, दोनों पैरों पर हाथ रख कर बैठ जाते। शायद ही कोई ऐसा दिन होता जब उन्हें कुछ भला-बुरा सुने बिना ही खाना मिलता हो। उन्हें कभी आधे घंटे, कभी एक घंटे बाद खाना मिलता, कभी खाना कम होता तो उनकी थाली में ऊपर से ही गिरा दिया जाता। शाम के समय वह अपनी खटिया दुआर पर बिछा देते और यही वह समय होता जब हम सभी बच्चे उन्हें घेर लेते।

'बाबा कहानी सुनाइए न!...' बाबा खटिए पर लेटे रहते और हम बच्चे उन्हें घेर लेते। सब के सब उन्हें हिलाते हुए जिद करते, 'ए बाबा कहानी सुनाइए न!' बाबा कहते, 'एगो राजा रहलन, एगो रानी रहली। दुनो मर गईलन खत्म कहानी भईल।' हम बच्चे जोर से चिल्लाते हुए कहते, 'बाबा प्लीज अच्छी सी कहानी सुनाइए न।' 'अच्छी कहानी सुननी है तो अच्छे से हाथ, पैर भी दबाओ तुम लोग।' बाबा कभी-कभी ही खड़ी बोली बोलते और उस समय उनके चेहरे पर अलग ही रोब रहता। इतना सुनते ही हम उनके ऊपर टूट पड़ते। कोई हाथ पकड़ लेता, कोई पैर, कोई सिर और सब मिल कर दबाने के काम में लग जाते। वह आंख बंद कर लेते, बिलकुल चिंतन की मुद्रा। फिर धीरे-धीरे कहानी शुरू होती। उनकी कहानियों में राजा-रानी, भर बीतना, बूढ़े आदमी, राक्षस और न जाने कितने-कितने पात्र आते-जाते। कहानी अनेक उतार-चढ़ाव पार करते हुए अंत को आती और कहानी खत्म होने पर वह कहते, 'कथा गईल बन में सोचअ अपना मन में।'

कुछ दिनों से बाबा की तबीयत बिगड़ने लगी थी। कभी-कभी खांसते-खांसते उनके मुंह से खून आने लगता। हम सभी बच्चों को उनके पास जाने की सख्त मनाही हो गई। हम जब भी उनके पास जाते, कोई न कोई आकर हमें उनके पास से खींच ले जाता और फिर हमें खूब डांट पड़ती। जब घर के सभी लोग इधर-उधर के काम में व्यस्त रहते, तब मैं चुपके से बाबा की कोठरी में पहुंच जाता और चुपचाप उन्हें देखता रहता। वह धीरे-धीरे मेरे सिर पर हाथ फेरते, ऐसा लगता जैसे वह मुझसे बहुत कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। मैं कुछ न कुछ करके उन्हें हँसाने की कोशिश करता। मैं उनसे कई सारी बातें पूछता, जान-बूझ कर कई बार गलतियाँ करता ताकि वह मुझे गुस्से से डांटें, पर बाबा न हँसते न गुस्सा ही होते। उनके चेहरे पर एक अजीब सी उदासी छाई रहती, जिसे मैं चाह कर भी दूर नहीं कर पाता।

बाबा दिन भर कुछ न कुछ करते रहते। कभी खटिए की रस्सी को कसते, कभी दुआर पर की घास काट कर गायों को खिलाते, तो कभी खेत की ओर निकल पड़ते। मैं समझ नहीं पाता था कि वह यह सब किसके लिए करते हैं। उन्हें न तो ढंग से खाना ही दिया जाता और न ही कोई उनसे ठीक से बात ही करता, पर मैंने कभी उन्हें गुस्सा होते नहीं देखा। बाबा को मैं कभी-कभी उनकी कोठरी में सोए देखता। उनकी आंखों की कोरे भींगी रहतीं। मैंने कई बार देखा था वह अकेले में कुछ बुदबुदाते रहते थे। कई बार छुप कर सुनने की कोशिश भी की, कि आखिर वह कहते क्या हैं, पर मैं समझ नहीं पाता। बस इतना समझ में आता की वह ऊपर की ओर देखते हुए किसी अदृश्य व्यक्ति से बातें कर रहे हैं और उससे कुछ शिकायत कर रहे हैं। मुझे बाबा बहुत रहस्यमयी लगते थे, उनकी आंखें भीतर धंसी हुई थीं। उनकी मिचमिचातीं आंखों में मुझे हमेशा लगता कि इसमें कई सारे रहस्य छिपे हुए हैं। मुझे लगता इन्हें जरूर इतनी सारी बातें पता हैं, जो हमें नहीं मालूम।

हम बाहर खेल रहे थे तभी भीतर से बर्तनों के पटकने की आवाज आई। चाची चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थीं, 'बस अब और नहीं, अब इस घर का बंटवारा होकर रहेगा। मैं और नहीं झेल सकती।'

माँ पैर पटकते हुए बाहर आई, मुझे खींच कर अंदर ले गई और मुझे डांटते हुए कहा, 'खबरदार जो आज के बाद इन लोगों के साथ खेले तो। कमरे से बाहर नहीं निकलना है, जो भी करना है अकेले करो, किसी से बात करने की जरूरत नहीं है।'

ऐसी छोटी-मोटी अनबन घर में पहले भी होती रहती थी, लगा कि इस बार भी ऐसा ही होगा, पर इस बार जो नई बात हुई वह यह थी कि पहली बार दोनों परिवारों का खाना अलग-अलग बना। उस दिन बाबा दिन भर अकेले इधर-उधर टहलते रहे, कभी खेत की ओर चल देते तो कभी गायों को चारा डाल आते। कभी बिना किसी काम के इधर-उधर भटकते रहते। उन्होंने दिन भर खाया भी या नहीं इसकी किसी को फिक्र नहीं थी।

मैंने माँ से धीरे से पूछा, 'माँ, बाबा किसका खाना खाएंगे?' मैं चाहता था कि बाबा हमारे साथ रहें और मुझे डर था कि बाबा अगर उनके घर का खाना खा लेंगे तो वह उन लोगों के साथ रहने लगेंगे, फिर हमारी उनसे बात नहीं होगी।

माँ ने गुस्से से कहा, 'आज जो कुछ भी हो रहा है वह सब इन्हीं की वजह से हो रहा है, अगर हम पहले ही अलग हो गए रहते तो यह सब नहीं होता' और कुछ ऊंची आवाज में कहा, 'बुढ़ौती में भजन-कीर्तन करने की उम्र में इनको जमीन-जायदाद का मोह लगा हुआ है। पूरी जायदाद का बंटवारा कर के चैन से रहना चाहिए, लेकिन इनको तो सारी दौलत अपने ही पास रखनी है। हम भी देखते हैं मरने के बाद क्या-क्या अपने साथ लाद कर ले जाते हैं।'

बाबा ने पूरे दिन कुछ नहीं खाया। शाम के समय वह अपनी कोठरी से बाहर नहीं आए और न ही घर का ही कोई उनके पास गया। रात के समय जब सब सो गए, मुझे रसोई से किसी की आहट आई। मैं दबे पांव रसोई की ओर बढ़ा। बाबा जमीन पर बैठे हुए थे और उनके सामने एक थाली में थोड़ा सा पानी मिला हुआ भात रखा हुआ था। उनका हाथ कांप रहा था और वह धीरे-धीरे कौर को अपने मुंह में डाल रहे थे। मेरे पैरों की आहट से वह सहम गए और झट से थाली दूर सरका दी। मैं सांस रोके चुपचाप खड़ा रहा, क्योंकि मुझे पता था कि बाबा ने अगर मुझे देख लिया तो वह खाना छोड़ देंगे।

सोनम सिंह
शोध छात्रा। काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

इधर कुछ दिनों से बाबा में मैंने एक अजीब परिवर्तन देखा था। उनके कमरे में जो लोहे की संदूक रखी थी उसे वह बार-बार खोलते और बड़े ध्यान से उसमें कुछ टटोलते रहते। मैं छुप कर उनकी ये सारी हरकतें देखता। मुझे ये सारी चीजें बहुत अजीब लगतीं, पर मैं ये बात किसी से नहीं कहता, क्योंकि मुझे पता था कि मेरी बात की सब लोग हँसी उड़ाएंगे और वैसे भी बाबा से और उनके बक्से से किसी को कोई खास मतलब भी नहीं था, क्योंकि इस बक्से में उनके मतलब की कोई चीज नहीं होती थी। तभी हमारे घर में अजीब घटना घटनी शुरू हुई। एक दिन माँ ने कहा कि, उन्होंने रसोई घर की आलमारी पर सौ रुपए रखे थे वह कहीं गायब हो गए हैं। हमने कई जगह खोजा पर रुपए नहीं मिले। फिर एक दिन पापा का गमछा खो गया, जो नहीं मिला। हमने सोच लिया कि हो सकता है कुछ दिन पहले जो आंधी आई थी उसमें वह कहीं उड़ गया होगा। इसके बाद तो चीजें गायब होने का सिलसिला ही शुरू हो गया। कभी सौ रुपए, कभी पांच सौ रुपए, कभी दस-बीस रुपए। जब भी कुछ खोता कुछ समय के लिए पूरे घर में हड़कंप मच जाता। हम सब मिल कर खोजते फिर कुछ देर बाद घर का माहौल सामान्य हो जाता। कोई भी इन बातों को गंभीरता से नहीं लेता, क्योंकि कोई बहुत बड़ी चीज नहीं खोती थी और दूसरे सबको लगता कि हो सकता है गलती से इधर-उधर रख दी गई हो। एक दिन दोपहर का समय था, गर्म लू से भरी हवा चल रही थी। सभी लोग अपने-अपने कमरे में आराम कर रहे थे। मुझे नींद नहीं आ रही थी, मैं अकेला दुआर पर इधर-उधर

भटक रहा था। तभी मुझे बाबा के कमरे से संदूक के खुलने की आवाज आई। संदूक पुराना था इसलिए उससे अजीब सी आवाज आती थी। संदूक की आवाज कोई न सुने इसलिए उसे बहुत धीरे-धीरे, रुक-रुक कर खोला जा रहा था। मैं आवाज की तरफ बढ़ा। मैंने देखा बाबा अपनी धोती की गांठ से रुपए खोल कर संदूक में रखने जा रहे हैं। आज मैं बाबा को यह बताना चाह रहा था कि, मैं सब कुछ जानता हूँ और आज मैं सब को सब कुछ बता दूंगा। मैं कूद कर उनके सामने चला गया। मेरे अचानक वहाँ जाने से वह बहुत डर गए और उनकी सांस जोर-जोर से चलने लगी। उन्होंने अपने हाथों से मेरा हाथ पकड़ लिया और बिना कुछ कहे मेरी ओर देखते रहे। मैं उनसे कुछ भी न कह सका, चुपचाप कमरे से बाहर निकल आया, पर उनकी आंखें हमेशा मेरा पीछा करती रहीं।

मेरी गर्मियों की छुट्टियाँ खत्म हो गई थीं। हमें वापस जाना था। सारा सामान गाड़ी में भरा जा रहा था। हमें ट्रेन के लिए देर हो रही थी। सब लोग जल्दी में थे। बाबा चुपचाप, बिलकुल शांत चबूतरे पर बैठे हुए थे। पापा उनके पास गए तो, वह फफक कर रो पड़े। जैसे कोई वर्षों का बांध टूटा हो। उनकी आंखों से आंसू बहते जा रहे थे और वह बार-बार एक ही बात कह रहे थे, तुम लोग कभी अलग मत होना। पापा चुपचाप उनके सामने खड़े रहे, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। मुझे पापा की चुप्पी पर गुस्सा आया। मैंने बाबा का हाथ अपने दोनों हाथों से दबा लिया और कहा, 'बाबा, आप रो क्यों रहे हैं? हम लोग फिर आएंगे और तब आप मुझे और अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाइएगा।' बाबा ने अपने कांपते हाथों से मेरे सिर पर हाथ फेरा और मुझे एकटक देखते रहे। मेरी आंखें उनकी आंखों से मिल गईं। पहली बार मुझे ऐसा लगा जैसे उनकी आंखें मुझसे बहुत कुछ कह रही हैं और फिर उनका सारा रहस्य, सारा जादू मेरे भीतर आ गया।

हम घर वापस आ गए। कुछ दिनों बाद गांव से फोन आया कि, बाबा घर छोड़ कर चले गए हैं, वह अपने साथ एक संदूक ले गए हैं। उन्होंने किसी से नहीं बताया कि वह कहाँ गए हैं और न ही किसी के लिए कोई चिट्ठी ही छोड़ी है। बाबा ने अपना सारा रहस्य मुझे दे दिया था। शुरू से लेकर अंत तक की सारी बात मैं समझ गया। बाबा की चीजें चुराने की वजह, उनके रोने की वजह सब कुछ। तब से लेकर आज तक बाबा की वे जादुई आंखें मेरे साथ हैं। मैं जब भी गांव जाता हूँ, तो मुझे अभी भी बाबा पटरियों के किनारे खड़े, हमें देखते हुए मिलते हैं। मैं अब जब भी किसी बूढ़े को देखता हूँ तो मुझे उसमें बाबा दिखते हैं और मैं खोजता हूँ कि उसकी संदूक कहाँ है।

शोध छात्रा, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, मो.9454066633

पंजाबी कहानी

बाहर के लोग

रघुबीर ढंड

अनुवाद : फूलचंद मानव

इंगलैंड के नगर लीड्स में दो भाई रहते थे। बड़े का नाम सतिंद्र और छोटे का जितेंद्र। दोनों शादीशुदा और बाल-बच्चों वाले थे। दोनों की पत्नियां बहुत अच्छी, कमाने वाली थीं। सतिंद्र की पत्नी का नाम शांति और जितेंद्र की पत्नी का नाम था बिंदु। दोनों औरतों का घर में पूरा सम्मान था। इसका एक कारण यह था कि दोनों भाई हिले-मिले थे। लेकिन बड़ा कारण था कि देवरानी-जेठानी दोनों ही जहाज जैसी बड़ी दुकान चला रही थीं। उनकी अथक मेहनत और संयम से कमाल हो रहा था। खुशहाल थे सब। बड़ा सतिंद्र कई बार कहता, 'इंग्लैंड में हम भारतीयों की खुशहाली का श्रेय हमारी औरतों के सिर है। ये बेचारी देवियाँ हैं, जिन पर एक पैसा भी खर्च नहीं होता। न सिगरेट पीती हैं, न शराब। न कभी 'होलीडे' जाने को कहती हैं और न ही काम के घंटे निश्चित रखती हैं। सुबह से लेकर रात के दस बजे तक काम ही काम।'

बहुत सुखी परिवार था। सांझे का काम। राशन-पानी दुकान से आ जाता। मिनि मार्किट जैसी दुकान थी। ऊपर छः कमरे, जो दोनों भाइयों ने तीन-तीन करके अपने लिए रखे हुए थे। हरेक परिवार को सप्ताह के दो सौ पौंड मिलते थे। रोटी अलग-अलग बनाते थे। जब बड़े ने खाना अलग बनाने की पेशकश रखी तो छोटे ने एतराज किया, 'वीर जी! हमारा तो एक ही परिवार है। एक ही मां के पेट से हमने जन्म लिया है। फिर रोटी अलग क्यों? मुझे यह अच्छा नहीं लगता।'

'जतिंद्र! तुम अभी छोटे हो। ठीक वही है, जो मैंने कहा है। मुसीबत में तो लोग एक साथ, इकट्ठे रह लेते हैं, लेकिन खुशहाली-संपन्नता में नहीं। संपन्नता से अहं भाव पैदा होता है।' परिणाम यह निकला कि पिछले दस वर्षों से दोनों भाइयों में कोई फरक नहीं आया। न ही औरतों में।

नाग देवता की इच्छा कि छोटी बिंदु के पिता पल भर में पूरे हो गए। मर गए। उनकी मंडी में आढ़त की दुकान थी। गोदाम में भरा हुआ नरमा देखने गए थे। वहां सांप ने काटा और तभी मर गए। वहीं से जब इंग्लैंड फोन किया तो बिंदु की

चीखें निकल गईं। रोना बंद नहीं हो रहा था। वह बार-बार यही कहती, 'मेरा दिल नहीं मानता कि पिता जी को सांप ने काटा है। वे तो सांप के काटने का खुद इलाज किया करते थे। उन्हें देख कर फुफकारता सांप सलामी देता, दुम दबा कर भाग जाता था। वह हर सप्ताह नाग देवता की 'माड़ी' पर दूध चढ़ाते थे। मैं नहीं मान सकती कि मेरे पिता की मौत सांप के काटने से हुई है।'

खैर, बिंदु के जेठ सतिंद्र ने उसे एयर इंडिया का टिकट पकड़ा कर कहा, 'बिन्दु! यह कलयुग का दौर है। पूजनीय लोग आदरणीय लोग नहीं होते। गद्दी पर बैठते ही पूजनीय को काटते हैं। यही बात पिता जी के साथ हुई होगी। तुम अब इंडिया जाओ। सभी भाई-बहन इकट्ठे होंगे। उनसे मिल कर तुम्हारा मन हल्का हो जाएगा...'

बिंदु तीन सप्ताह के बाद इंडिया से वापस आई थी। उसके पिता जीवित तो नहीं हो सके, लेकिन वह सबसे मिल कर, एक-एक के गले लग कर रोयी। वह अपना मन हल्का कर आई थी। यदि इंग्लैंड में रहने वाले इंडिया में रहते किसी प्रिय की मौत का शोक मनाने न जाएं तो मौत की परछाईं और उसका साथ लंबे समय तक पीछा करता रहता है। बिंदु बता रही थी।

'जब आप सब मुझे इंडिया जाने को कह रहे थे तो मेरा मन जाने को नहीं करता था, लेकिन अब सोचती हूँ कि मैंने जाकर बहुत अच्छा किया। कई भ्रम दूर हुए, कुछ शंकाएं भी।'

'मिसाल के तौर पर... ' उसके जेठ सतिंद्र ने पूछा।

'वीर जी! एक तो यह कि जिस सांप ने पिता जी को काटा, वह विदेश से आया था। गांव के सांपों के साथ पिता का पूरा वास्ता था, सहकार था और उन सांपों में जहर भी नहीं था। मेरे बड़े भाई कहते थे कि नरमे में, कपास में जो सांप छिपा था, उसका बीज अमेरिका से आया था। उसके साथ सर्पिणी का अंडा भी आ गया होगा।'

'ओ हो...!' सभी ने लंबी सांस ली। लेकिन बिंदु की बात जारी रही- 'मेरे पिता जी घर के सतंभ थे। बहुत सयाने, समझदार भी। उन्होंने वसीयत में मेरी माता जी को तीसरा हिस्सा लिखवाया था। इसलिए कि कोई संकट आन पड़े तो उन्हें बहुओं और बेटों की दया पर जीना न पड़े।... रोने-पीटने और अस्थि विसर्जन के बाद भाइयों में होड़ लगी कि किस तरह माता जी अपना हिस्सा उनके नाम लिख दें। भाई लोग माता जी को तरह-तरह के तरीकों से फुसलाने-बहलाने लगे। हम लड़कियों पर दबाव डालने लगे कि माता जी को समझाओ। बाप के बाद पुत्र ही मां के वारिस, उत्तराधिकारी होते हैं। हम माँ को कष्ट नहीं होने देंगे। चारपाई पर बिठा कर रोटी देंगे।

'तो फिर बहनों ने क्या कहा?' इस बार उसके पति जतिंद्र ने पूछा।

'बहनें क्या कहतीं! बस बुत-सी बैठी रहीं। सिर्फ मैं बोली।' इंग्लैंड जैसे आजाद देश में रहते हुए मेरे अंदर बहादुरी पैदा हो गई थी। मैंने कहा कि जब मां के जीवित रहते उसके अधिकार छीनने के लिए आप तैयार हैं आप, तो अपना हिस्सा लिख देने के बाद आप माता जी को सता कर मार देंगे। उनकी उपेक्षा करेंगे। मां का अधिकार, मां ही का अधिकार रहेगा। यदि आपने हेराफेरी करने की कोशिश की, तो हम बहनें भी बराबर का हिस्सा मांगेंगी। इसके बाद पिता जी का जिक्र किसी ने कम ही किया। न जाने ये कैसी हवा थी कि इंग्लैंड की तरह इंडिया में भी कोई किसी के बारे में नहीं सोचता। शेखियां बघारते हैं। मारुति कारें, नए फैशन के कपड़े, जेवर, कोठियों की बातें करते हैं। मुझ से छोटी दोनों बहनें भैंस-सी फैली हुई थीं। सबसे छोटी और पतली मैं ही लग रही थी। वे मेरे शरीर की तारीफ करने के स्थान पर कह रहीं थीं- बिंदु दीदी! तुम तो सूख कर कांटा हो गई हो। तुम्हें कोई बीमारी तो नहीं? ससुराल में तुम्हारे साथ व्यवहार तो अच्छा होता होगा!

'पता है, मैंने क्या कहा?'

'क्या कहा?' इस बार बिंदु की जेठानी ने पूछा।

मैंने कहा- 'सुनों सतरानियों! नौकरों को आज्ञा देती तुम फैल रही हो। मस्ती में जी रही हो। यदि चालीस साल की आयु में ब्लड प्रेसर और शुगर जैसी बीमारियाँ न हो जाएँ तो मुझे बिंदु न कहना। हम दिन भर मेहनत-मजदूरी करती हैं और इंग्लैंड में चूरी खाती हैं।'

'पंजाब के हालात कैसे हैं?' बिंदु के जेठ सतिंद्र ने पूछा।

'वीर जी! डर बहुत है। लोग सहमे भयभीत रहते हैं। खासतौर पर बाहर जाने वाले या देर-सवेर आने वाले। वैसे लोग अपने काम-धंधे करते हैं। सबकुछ पहले जैसा ही चलता है। जब कोई घटना होती है तो सहम कर अंदर घुस जाते हैं। एक-आध दिन के बाद पहले की तरह सब चलने लगता है। इतनी पुलिस और सी.आर.पी. है कि मानों पंजाब में पुलिस का राज हो। लोग अब महसूस करने लगे हैं कि यह सिलसिला अब ऐसे ही चलता रहेगा और लोगों ने भी इस स्थिति से समझौता कर लिया है। ठीक वैसे ही जैसे लाइलाज बीमारी के साथ किसी स्तर पर मरीज समझौता कर लेता है। इसीलिए हम बाहर के लोग बहुत डरते हैं। वहाँ रहने वाले भय होते हुए भी ऐसा व्यवहार करते हैं कि यदि मौत भी आ जाए तो आ जाए। लोगों का व्यवहार और व्यापार वैसा ही रहेगा। मुझे कोई अंतर नहीं लगा। पिता जी के दाह-संस्कार के समय हिंदुओं से ज्यादा सिख भाई हाजिर थे। वैसे मैंने कोई अच्छा कर्म किया होगा या मेरे बच्चों को माँ की जरूरत होगी जो मैं बच कर आ गई, नहीं तो उस दिन मेरा काम तमाम हो जाता।'

'किस दिन?' जेठानी ने जल्दी में सहमे हुए पूछा।

'उस दिन जब मैं मुकेरियाँ से आपको फोन करके आई थी। मेरे हृदय में बच्चों की आवाज सुनने की प्रबल इच्छा पैदा हुई। मैं बड़ी भाभी को साथ लेकर मुकेरियां आ गई। काम निपटा कर दोपहर के समय हमने गांव लौटने के लिए बस पकड़ी। बस मुकेरियां से तलवाड़ा जाने वाली थी।

रघुबीर ढंड
*वरिष्ठ पंजाबी लेखक। 'शा
पंजाब', 'बोली धरती
'रिश्तियां दे रंग' आ
पुस्तकें*

उसमें दस-बारह हिंदू सवारियां थीं। ड्राइवर सरदार था। यह अलग-सी कोई विस्मयकारी बात नहीं थी। बसों-ट्रकों के अधिकतर ड्राइवर सरदार ही होते हैं।

आधे घंटे के बाद जब बस ने नहर का पुल पार किया तो केसरी पगड़ी वालों ने दोनों तरफ से बस को घेर लिया। ड्राइवर ने एकाएक बस रोकी। मैं और भाभी आगे वाली सीटों पर बैठी हुई थीं। मेरी सांस रुकने लगी। मैंने भाभी का हाथ कस कर पकड़ लिया और पसीने से मेरे कपड़े भीग गए।

'पेशाब निकल गई होगी आपकी मम्मी!...'

उसकी दस साल की बेटी ने बहुत भोलेपन से पूछा, क्योंकि जब वह किसी से बहुत डरती थी तो उसकी पेशाब निकल जाया करती थी।

'चुप कर, पेशाब तो तुम्हारी निकलती है जब तुम्हारे डैडी डांटते हैं। मैं तेरे जैसी डरपोक नहीं।'

बिंदु ने अपनी बेटी के सामने बहादुर बनते हुए कहा।

'हाँ, पसीना तो बहादुरों को आता है और दूसरे का हाथ जब लोग कस कर पकड़ते हैं तो वीर कहलाते हैं।' बिंदु के पति जतिंद्र ने कहा।

'आपको बातें खूब आती हैं। वहाँ होते तो पूछती कि ये किस भाव बिकती हैं!'

'अच्छा बाबा', आगे चल।' उसके पति ने कहा।

'ड्राइवर ने खिड़की का शीशा नीचे किया तो केसरी पगड़ी वाले कहने लगे कि सवारियां नीचे उतर आएं।' ड्राइवर ने पूछा, 'सिर्फ हिंदू सवारियां ही उतरें कि सारी भाई?'

'सभी' नीचे खड़े साठ वर्षीय सिंह ने कहा।

'बस, मुझे यकीन हो गया कि अब मौत सामने खड़ी है। भाभी का हाथ मैंने वैसे ही पकड़े रखा।

उस समय मेरी आंखों के सामने अपने बच्चों के सिवाय कुछ नहीं था। यदि उन्होंने मुझे मार दिया तो उनका पालन-पोषण कैसे होगा? यदि उन्होंने दूसरी शादी करवा ली तो मेरे बच्चों का क्या होगा!'

'बच्चों के साथ उनके पिता का ख्याल नहीं आया कि उसका क्या होगा?' बिंदु के पति जितेंद्र ने ठिठोली की।

'सच्ची बात है, बच्चों के बिना मुझे और कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। बस मैं ओम-ओम का जाप करने लगी।'

'बिंदु, वाहेगुरु-वाहेगुरु कहके घेरने वाले सिक्ख हैं। शायद वाहेगुरु हमारी फरियाद सुन लें।' भाभी ने मुझे तब बुजुर्गों की तरह समझाया।

जब हम सारी सवारियां नहर के किनारे से हट कर खड़ी हो गईं तो वह तीन फुट वाली कृपाण वाला बुजुर्ग सरदार आगे आया। और थोड़ी ऊँची जगह खड़ा होकर कहने लगा- 'भाई गुरमुखो और बीबियो! क्षमा करना, तुम्हारे मन में भ्रम और संदेह पैदा हुआ और तुम्हारा सफर भी खराब किया। वस्तुतः आज गुरु पर्व है और हम परसादे छकाए बिना किसी को आगे नहीं जाने देते।'

हाय रे भाई! हमारी तो जान ही निकल गई थी। भाभी ने लंबी सांस ले कर मुंह पर आया पसीना पोंछते हुए कहा।

फिर मेरे साथ चटाई पर बैठते ही बोली, 'डर तो मुझे भी बहुत लगा था, लेकिन ऊपर से साहस दिखा रही थी कि कहीं तुम डोल ना जाओ। मुझे अपने से अधिक तुम्हारी फिक्र है कि तू हमारी अमानत है।'

'लेकिन भाभी मुझे अभी भी बहुत डर लग रहा है। कहीं रोटी खिलाने के बाद मार ही न दें। मंडी क्षेत्र में सुना है कि हिंदुओं को पहले खिलाया-सुलाया जाता है और फिर मार दिया जाता है।'

भाभी ने मेरा हाथ कस कर पकड़ लिया और कहा-'चिंता न कर परमात्मा ठीक करेगा।'

रोटी, सब्जी, दाल, खीर से भरी थालियाँ हमारे सामने रख दी गईं। ड्राइवर ने हम सबसे कहा, 'जल्दी रोटी खा लो। परसादे छको, नहीं तो हम बहुत लेट हो जाएंगे।'

'आप भाई गुरमुखो! धीरे-धीरे प्रेम से खाओ। लेट-लूट होने के जिम्मेदार हम हैं।' वही तीन फुटी किरपाण वाला भाई बोला।

लगता था कि मेरे बिना सभी निश्चिंत-शांत थे। ड्राइवर कहने लगा, 'सरदार जी, यदि मैं बहुत लेट हो गया तो मेरी जवाब-तलबी होगी या किसी बुरे रूट पर लगा मारेंगे। बाल-बच्चेदार आदमी हूँ।'

सरदार ड्राइवर के पास आया। ड्राइवर का चेहरा उतरने लगा, बोला- 'तुम कह देना बस सिंहों ने रोक ली थी। मैं मजबूर था।'

'फिर पुलिस वाले यहां आ धमकेंगे और आपको तंग करेंगे' ड्राइवर सरदार साहब से बोला।

'पहले कौन-सा कम करते हैं। वे दोषियों की अपेक्षा निर्दोष लोगों पर अधिक सितम करते हैं। अब हम पुलिस से नहीं डरते। कोई नहीं डरता। निश्चिंत होकर परसादे छको, खाना खाओ। भली-बुरी के हम जिम्मेदार हैं।'

लेकिन मेरी हालत यह कि मुझसे खाना अंदर निगला नहीं जाता था। भाभी कहने लगी- 'बिंदु! थोड़ा-थोड़ा कौर-निवाला काटती चल। कहीं ये न समझें कि हिंदू हमारी रोटी नहीं खाते। पहले एक-दो ऐसे अवसर आए हैं। एक मंदिर में कुछ सिक्ख छोकरों ने अपने मित्र के विवाह पर मंदिर का प्रसाद लेने से इंकार कर दिया था। हिंदू भी अपनी अधिक आबादी वाले गुरुद्वारों में जाकर ऐसे ही करने लगे।

मैंने जरा अच्छा निवाला निगला। लाल मिर्च ज्यादा होने के कारण मुझे ऐसा उत्थु आया कि रुकने का नाम नहीं लेता था। मैं दूर हट कर खेत की मेंड़ पर बैठ कर खांसने लगी कि कहीं उल्टी न आ जाए। मितली न आ जाए। भय के मारे मन तो पहले ही कच्चा हो रहा था। वही सरदार एक वृद्धा सहित मेरे पास आया। उनकी पदचाप बिल्कुल अपने पास सुन कर मेरी आंखें बाहर निकल आईं। इतने में उस वृद्धा ने मेरा माथा दबाया। बुजुर्ग

सरदार करमंडल से मेरी अंजुरी में पानी डालने लगा। ठंडे पानी के छींटे मार कर कुल्ला करके मुझे तनिक शांति मिली। मैं रुकी रही। वृद्धा सिंहनी ने अभी तक मुझे थामा हुआ था। मैं अधिक डर रही थी कि यह औरत मुझे पकड़ेगी और बुजुर्ग सरदार अपनी तीन फुटी कृपाण के साथ मेरी गरदन उतार कर उधर फेंक देगा। वे मेरा शव बहती नदी में प्रवाहित कर देंगे। मैंने डरते हुए उस बुजुर्ग की ओर देखा। उसका चेहरा इतना दयामय था, जैसे वह मेरे पिता के ही प्रतिरूप हों।

'बेटी! बाहर से आई लगती हो?' वृद्धा महिला मेरे कटे हुए बालों पर ठीक से चुन्नी देते हुए बोली।

'जी, मां जी, इंग्लैंड से आई हूँ। बहुत घबराई हुई हूँ।'

'किसकी बिटिया हो मुन्नी।' इस बार तीन फुटी कृपाण वाला सरदार बोला।

'अंकल जी, धनपतराय आढ़ती की।' मैंने तनिक संकोच से उत्तर दिया।

'जिनकी बाहर मंडी में आढ़त की दुकान है?' बुजुर्ग सरदार ने पूछा।

'जी, अंकल जी। पिता जी अब नहीं रहे। तभी तो मैं इंग्लैंड से आई हूँ।' कहते हुए मेरा रोना निकल आया।

बुजुर्ग सरदार ने मेरे सिर पर हाथ टिकाया और बोला-'भाई साऊ, संतोष कर। बड़ा बंदा था तेरा बापू। हमारा भी वहीं आढ़ती था। जब जरूरत पड़ती, फौरन उसके पास जा पहुंचते। उस मां के लाल ने कभी इंकार नहीं किया था। बस, यूं ही जल्दी में चला गया। यूं तो बेटी बिजली भी नहीं गिरती। जीवन-भर सांपों को दूध पिलाता रहा और छपार की मांड़ी पर जाकर नागदेवता की मिट्टी निकालता रहा। पूरे इलाके के सांप उसकी हाजरी भरते थे। भरी आंखों से सरदार खामोश हो गए। वह खामोश न होते तो फूट-फूट कर रो देते।

'अंकल जी, बाद में पता चला कि सांप का अंडा बाहर से आया हुआ था।'

'हां बिटिया! बाहर का ही होगा। नगर-मोहल्ले के लोग अपनो को कहां मारते हैं, काटते हैं... इस बार वृद्धा बोली।

बुजुर्ग सरदार ने अपनी बास्कट में से पचास का नोट मेरे इंकार करने पर भी मुझे थमाया और मेरा सिर सहलाते, आशीष देकर कहा, 'अपने पंजाब की ओर देख। कोई कहता है आतंकवादी समाज-विरोधी तत्व, बाहर पाकिस्तान से ट्रेनिंग लेकर आते हैं। हथियार भी लाते हैं, निर्दयता से मारते हैं। कोई कहता है कि अमेरिका इस देश के टुकड़े-टुकड़े करने के लिए बहुत-सा धन दे रहा है। ये बातें सत्य भी होंगी, चूंकि धीए! लोगों की भाषा में महाराज खुद बोलता है। लेकिन बेटी, पुलिस भी कम नहीं करती। बाहर से आती है। हमें जानने वाला उनमें एक भी नहीं होता। बेलगाम ऊंट-सी मोरियां निकालती घूमती है पुलिस। हमारे घर के बेटे को पकड़ कर ले गई। निहायत शरीफ, बेहद प्यारा व काम का लड़का था। पांच खेतों में से पच्चीस खेतों जितनी आय निकालता था...। उसकी फसल भी धी राणी तेरे बाप की दुकान के सामने ही ढेर होती थी। हम थाने गए और बताया कि यह तो हमारे गांव का शरीफ मुंडा है। लड़का भलामानस है। हम इसकी जमानत देते हैं। थाने वाले कहने लगे कि सरदार जी संदेह में लेकर आए हैं, बाद में पूछ-पड़ताल करके छोड़ देंगे। सब धी मेरी,... यहाँ आकर सरदार अंकल रो पड़े। आंसू उनकी लंबी दाढ़ी पर ऐसे ठहर गए, जैसे वे जन्मजात वहाँ ठहरे हुए हों... फिर कहने लगे- 'तीसरे-चौथे दिन पुलिस वाले छोड़ गए। उसकी टांगें तोड़ी पड़ी थीं। छाती में सांस तंग चल पाती थी। मुंडे का बापू उनसे कहने लगा- हम क्या करेंगे अब इसका? पुलिस मुकाबला दिखा कर फेंक दो किसी कुएं - तालाब में, या नहर में!... लेकिन लड़के की मां बोली- मेरे श्रवण बेटे को उठा कर लोग अंदर ले आओ। आगे दो तकिए देकर उसे खाट पर डाला। गर्म-गर्म दूध में देसी-घी डाल कर दिया... लड़का कहने लगा- बेबे, मेरी छाती में दर्द बहुत हो रहा है। बूटों और मुक्कों से उसे ढोल की तरह मारते

रहे। तोड़ते रहे, फिर मुंडा बिल्कुल बुझ गया। बस, छत को घूरता रहता। तीसरे दिन मर गया। गांव के कई मुंडे उसका बदला लेने को त्यार-वर-त्यार थे। बस ऐसा ही सिलसिला चल रहा है।'

मुझे सरदार अंकल की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैं जीती-जागती पहले अपने घर पहुंचना चाहती थी। फिर सामान उठा कर अपने बच्चों के पास...।

सरदार अंकल मुझे बस तक छोड़ने आए। कंधे पर टिकाए परने से सीट साफ करते हुए कहने लगे- 'लो धी-रानी! बैठो आराम के साथ।'

'थैंक यू अंकल जी।' मेरे मुंह से सहज निकला।' तू तो बेटी विलायत जाकर मेम ही बन गई। अपनी भी कुछ रख लेना।'

'सॉरी अंकल जी।' बस मैं यही कह पाई। 'फिर वही बात!' कहते हुए वह खिलखिला कर हंस पड़े। फिर ड्राइवर को कहने लगे, 'भई गुरमुखा, अपनी धी है, जरा ठीक से गांव के पास उतारना।'

'कोई फिक्र न करो सरदार जी। धीएं बहनें तो सबकी सांझी होती हैं।'

बस चल पड़ी। नहर के किनारे-किनारे। मैं अब शांत थी। दस मील तक नहर के चांदी-से पानी को निहारती रही। मैं आपको बता नहीं सकती कि हमारे गांव की नहर का पानी कितना सफेद है।

अभी तक इसके किनारों पर किसी सेठ-सरकार ने कोई कारखाना नहीं लगाया। सूरज की चमक में यूं लगता था मानों चांदी-रंगे सांप नहा रहे हों और मेरे पिता जी पानी में खड़े-खड़े उन्हें दूध पिला रहे हों।

फूलचंद मानव, 239, दशमेश एंक्लेव, ढकोली, जीरकपुर-160104 (मोहाली)
मो.9316001549

लघुकथा

कुंजी

सुधीर निगम

एक चित्रकार ने मृत्यु का भयानक चित्र बनाया और उसे कब्रिस्तान के मुख्य द्वार पर टांग कर चित्र के नीचे लिख दिया- 'इसके मुख में प्रवेश किए बिना परलोक में प्रवेश नहीं हो सकता।'

चित्र बहुत प्रभावशाली बन पड़ा था। उसकी शोहरत चारों ओर फैल गई और उसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। एक दिन वहाँ एक उच्चकोटि का दार्शनिक भी आया। उसने चित्र देखा, फिर चित्रकार को बुला कर चित्र में थोड़ा सुधार कराया। मूल चित्र में 'मौत' के हाथ में कुल्हाड़ी चित्रित थी। उसे हटवा कर उसके हाथ में एक सुनहरी चाबी चित्रित कराई गई और उसके समीप लिखा गया, 'मृत्यु के हाथ में ही स्वर्ग की कुंजी है।'

104-ए/315, रामबाग, कानपुर-208012, मो.9839164507

कविताएँ

जाबिर हुसेन

कवि, चिंतक और 'दोआबा' पत्रिका के संपादक। अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के प्राध्यापन के बाद बिहार विधान सभा के सदस्य। विधान परिषद के अध्यक्ष और कई उच्च पदों पर कार्य।

स्वप्निकाएँ

घास

छिपी रहने
लगी हैं
ओस की
बूंदें

न जाने
घास को
क्या हो
गया है।

ताजिर*

आप
ताजिर
हैं तो
रहिए
खामोश

दिल कोई
मिस्र का
बाज़ार
नहीं।

*ताजिर : व्यापारी

महल

कुछ परिंदे
उड़े
मुंडेरों से
ख़ाब
टूटा हुआ
महल
ठहरा।

गुलाब

मैंने धरती पे
उसी तरह
सजाए हैं
ख़ाब
जैसे
आकाश में
खिलते हैं
गुलाब।

भुलावा

ये रोशनी
का
भुलावा है
रोशनी
तो नहीं

हरेक
सिम्त
अंधेरों के
काफिले
क्यों है?

मोर बोला

रात ख़ाब में आए
एक मोर से
मेरी तकरार हो गई

मैंने पूछा क्यों आए
तुम जंगल से

इंसानों की
इस वीरान बस्ती

कहने लगा
जंगल की मोरनी
मुझे पसंद नहीं
उसकी आदतें
शहरियों जैसी
हो गई हैं।

247 एम आई जी, लोहियानगर, पटना-800020 मो.9431602575

भारत यायावर

निबंधकार और कवि। रेणु विशेषज्ञ के रूप में परिचित। महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनावली का संपादन।

आत्म-संभव

अपने-आप से जूझना
अपने ही विरुद्ध हो जाना
मुश्किल है
मेरे शब्द धारदार चाकू की तरह
छीलते हैं मेरी स्थापनाओं को
मेरे व्यक्तित्व के सड़े हुए प्रसंगों को
यह अपनी संस्कृति और परंपरा से दूर होना नहीं है
बल्कि नई दृष्टि से देखना है
तराशना है खुद को
खुद को करना है
खुद के खिलाफ
अपने ही आपको छील देना है
क्योंकि होना है
होना है
आत्म-संभव!

कविता फिर भी मुस्कुराएगी

टहनियाँ सूख जाएंगी
हमारा अपना होने का अर्थ मिट जाएगा
कविता फिर भी मुस्कुराएगी

कविता
मेरे धीरे-धीरे मरने का संगीत ही नहीं
कविता
सृष्टि को अकेले में
या भीड़ में भोगी हुई
संवेदना का गीत ही नहीं

लोग
रेंगते
घिसटते
थके-हारे लोग
कविता, सिर्फ कविता

मेरे अंदर
टूटती हैं शिलाएँ रोज
फिर भी मैं गहरे अंधेरे में खो जाता हूँ
रोशनी मेरी आंखों में
ढेर सारा धुआँ उड़ेलने लगती है
लगातार जारी इस बहस से
आजाद कब होओगे, भाई!
इस विफल यात्रा की झूठ को ढोता थक गया हूँ

आओ
हम अपने को नंगा कर
स्वतंत्र हो जाएँ
यातनाओं के बीच
हमारी अस्मिता का एक सुंदर रूप हो
लय हो

टहनियाँ सूख जाएंगी
हमारे होने का अर्थ भी मिट जाएगा
कविता फिर भी मुस्कुराएगी।

यशवंत नगर, हजारीबाग, झारखंड- 825301 मो. 6207264847

हरीश चंद्र पांडे

सुपरिचित कवि।
अद्यतन कविता संग्रह 'असहमति'।

मैं एक भ्रूण गिराना चाहती हूँ

बलात्कार के अभियुक्त अवयस्क बेटे से
एक माँ का आत्म संवाद

मैं कैसे कह दूँ तुमने मेरा दूध नहीं पिया था
तुम्हारे आने से ही मेरा होना सार्थक हुआ था
तुमने बहनों के आने से हुई रिक्तता भर दी थी

मैं कैसे कह दूँ तुमने मेरा दूध नहीं पिया था
तुमने तो इतना पिया था इतना कि
मुझे तीतेपन की शरण तक जाना पड़ा था

तुम्हारे आने को सूंघते हुए
चला आया था एक झुंड
नाल सूखने के पहले ही
ले गया अपना नेग

घटाएँ नहीं, वे बहनें थीं
तुम्हारे चेहरे पर झुकी हुईं
सात तालों पीछे छुपाई गईं
वे सोने की छड़ें नहीं तुम्हारे मुंडन-केश थे
तुम्हारे लटपटे बोल के
असंख्य अर्थ थे हमारे लिए
भाषा के बाहर रह कर
तुम हमें अर्थों के जंगल में टहलाते रहे
ज्यों-ज्यों साफ होते गए तुम्हारे बोल
हमारे अर्थ-कयासों की दुनिया सिमटती गई

तुम आंखें मूंदते थे
तो हम सब सपने देखने लगते थे

तुम्हारे जल्दी-जल्दी छोटे पड़ते कपड़े
हमारी बढ़ती खुशी के बैरोमीटर थे
तुम इंच-इंच जितना पुरुष होते गए
हमारी वैतरिणी का पाट छोटा होता गया

एक दिन तुम्हारी आवाज़, मसें और दोस्त सब
देह की देहरी पर खड़े हो गए

कहाँ जा रहे हो मैंने पूछा नहीं कभी
कहाँ से आ रहे हो पिता ने नहीं पूछा
तुम्हारा पहली बार रात देर से आना
तुम्हारे बड़े हो जाने की एक खबर थी

इन देरियों से एकदम निश्चिंत थे हम
हमारी मांगी हुईं मन्नतें और
गंडा-ताबीज तुम्हारे साथ थे
कलावे थे हाथ में
कि कोई और हाथ न उठा सके तुम पर
लेकिन हमारे पास कोई ऐसा कलावा नहीं था
जो दूसरों की इज्जत लेने को उद्यत
तुम्हारे हाथों को रोक सके

तुम्हारी आंखों के रास्ते

हमें एक सुंदर दुनिया देखनी थी
तुम्हारे उठे हाथों में
हमें एक नया ग्लोब देखना था
तुम्हारे पांवों में नए-नए रास्ते लिपटे हुए थे
पर ये सब तो तुम्हें
पशु बनाने के लिए इकट्ठा हो गए

मैंने किलकारी का एक पौधा लगाया था
वह अब चीत्कारों के फल देने लगा है

क्या कमान से निकला तीर वापस हो सकता है
क्या कोई अपने भ्रूण-समय में पीछे जा सकता है

मैं एक भ्रूण गिराना चाहती हूँ!

वसंत के लिए

चित्रकार अशोक सिद्धार्थ के एक चित्र को देख कर, जिसमें एक सूखे पेड़ के प्रतिबिंब में उसकी शाखाओं में पत्ते लगे हैं

निपट सूख गया यह पेड़
अपने प्रतिबिंब में पत्ते पा गया है

प्रकृति का हो या किसी और का
एकाधिकार टूटने की आवाज
रंग जैसी भी हो सकती है

ठूंठ हो जाने के ठीक पहले के होंगे ये पत्ते
इनका पीलापन जैसे कह रहा है
हम हरे होते तो
समय कुछ और पीछे हो गया होता

रिवाइंड करो समय को चित्रकार
हम हरा होना चाहते हैं

वहाँ सखा वनस्पतियाँ मिलेंगी हमें
पेड़ की जगह पूरा जंगल मिलेगा

यकीनन पेड़ को काटने वाले
हथियार-विचार भी मिलेंगे
कुछ जीवाश्म और रक्त का जम कर
कोयला हो जाना मिल सकता है
पीछे जाने के इस दौर में
पीछे जाने के लिए कोई नहीं कहता-
यह आम रास्ता नहीं है

तुम वसंत के लिए समय को रिवाइंड करो चित्रकार

इस सूख गए पेड़ के पास
कई वसंतों का अनुभव है।

अ/114, गोविंदपुर कॉलोनी, इलाहाबाद 211004 मो.9455623176

स्वप्निल श्रीवास्तव

सुपरिचित कवि। अद्यतन कविता संग्रह : 'जब तक है जीवन'।

कौन सा है आपका घर

कौन सा है आपका घर
क्या वह जिसे आप अपनी स्मृतियों के साथ
गांव में छोड़ आए हैं
या वह जो शहर दर शहर तबादले के साथ
बदलता रहता है
उसे घर कहना अपने आप को
धोखा देना है

या वह जिसे आप किसी अनजान जगह
पर जमीन खरीद कर बनवाते हैं
या पैसे के दम पर एक सांस में
खरीद लेते हैं
और अजनबियों के बीच रहने के लिए
अभिशप्त हो जाते हैं

बच्चों के घर को जो अपना घर कहते हैं
वे मुगालते में रहते हैं
वहाँ उनकी हैसियत प्रजा से ज्यादा
नहीं होती
उनकी ताकीद के हिसाब से रहना
पड़ता है

जिंदगी भर दौड़ते हुए हम जिस
घर में रहते हैं, वह रिहाइस है
घर नहीं
घर कहीं हमसे बहुत दूर
छूट जाता है।

हँसी

जिसके पास ज्यादा दुख थे
वे अच्छे से हँसते थे
कम दुखवाले लोगों के चेहरों पर
हँसी कम होती थी

सुख में डूबे हुए लोग शेयरों के दाम
बढ़ने पर हँसते थे

लोग अपने-अपने हिसाब से
हँसते थे
एक की हँसी दूसरे की हँसी से
भिन्न होती थी

हत्यारे और तानाशाह तलवार की धार
की तरह हँसते थे
उनकी हँसी से हम लहूलुहान
हो जाते थे

उम्र के साथ हँसी क्रमशः कम होती जाती थी
हँसी के अवसर पर वह ढूंढे नहीं
मिलती थी

हँसी सिर्फ पुराने दोस्तों के पास
बची हुई है
जब वे मिलते हैं, उनकी हँसी से
मेज पर रखे गिलास टूट जाते हैं।

इस बारिश में

इस बारिश में मुझे कुछ जरूरी
काम करने हैं

सबसे पहले छाते को उड़ा देना है
वह हमारे और बारिश के बीच
सबसे बड़ा व्यवधान है

उमगती हुई नदी को जी भर कर
देखना है और तुम्हें याद करना है

बादल हमारे पूर्वज हैं, उनसे बतकही करनी है
वे जब आते हैं भर जाता है
मन का आकाश

इस बीच जंगल घूम आना है
तुम्हारे जूड़े के लिए चुनना है जंगली फूल
और अच्छे वक्त का इंतजार करना है

देखना है कि पहले से कितना ज्यादा
हरा हो गया है जंगल
बारिश के बाद आए हुए नए परिंदों को
चहचहाते हुए देखना है
उनके साथ खोलना है अपने पंख

बारिश में भीगते हुए दुनिया से
अपनी रुलाई छिपानी है
और फिर खुश-खुश रहना है

510, अवधपुरी कालोनी, अमानीगंज
फैज़ाबाद-224001, मो.9415332326

अतुल जैन

युवा कवि। संप्रति आईटी की नौकरी।

विजेता

वे कहाँ हैं जो लड़ाई में मरे थे
हाथियों के पावों के नीचे
डूबते जहाजों के बीच
या जो धँस गए
अपनी गर्म जमीं छोड़ बर्फीले पहाड़ों पर
वे सारे कहाँ हैं

मैं वे सारी किताबें देख आया हूँ
जिन्हें लिखा जंग को जीतने वालों ने
मैंने पढ़े वे शिलालेख
जहाँ खुरची हुई हैं जंग की कहानियाँ
ढूंढे वे गांव जो कर दिए गए विजेताओं के नाम
गाए वे गीत जिन्हें गा कर सैकड़ों और मरते हैं
पर कहीं नहीं मिले उनके नाम
जो मर गए उन लड़ाइयों में
विजेताओं के संवत्सर का एक भी दिन
उनके हिस्से नहीं आया और न ही कहीं लिखी गई
उनके मरने की कोई कहानी
सिपहलसार सोने में तौले गए
किताबों में उकेरे गए
पर वे जो घोड़ों की लीद साफ करते
जयकार लगाते ढोते रहे रसद, बांधते रहे पुल
उनके हिस्से नहीं आया
कुछ भी एकल स्वामित्व का

इतिहास निर्लज्ज है कि वह विजय लिखता है
पर भूल जाता है सैकड़ों चेहरे और उनके नाम
वो बहुत बेशर्मी से कशीदे काढ़ता है
अर्जुन, कर्ण और दुर्योधन के
संजय से लेकर धृतराष्ट्र तक के
पर भूल जाता है अक्षोहिणी सेनाओं को।

1245, 23वाँ क्रॉस मेन, सेक्टर-7, एचएसआर
लेआउट, बेंगलुर-560068

अजय कुमार पाण्डेय

'यही दुनिया है' कविता संग्रह।
संप्रति अधिवक्ता।

मैं झुकना चाहता हूँ

मैं झुकना चाहता हूँ
एक बार नहीं
कई-कई बार झुकना चाहता हूँ
तुम्हारे स्वागत में
तुम्हारी इबादत में नहीं
मैं झुकना चाहता हूँ
उतना जितनी जरूरत होती है
अपने सिर पर
गेहूँ का बोझ उठाने को
बार-बार यत्नरत
किसी किसान के सिर पर
बोझ उठाने के लिए

मैं झुकना चाहता हूँ
किसी सड़क के किनारे पड़े
हताश राहगीर को उठा कर
उसकी जीवन-यात्रा में
शरीक होने के लिए
मैं झुकना चाहता हूँ
उनके लिए जिन्होंने
हर सवाल के जवाब में
और अच्छे दिनों की उम्मीद में
साध रखी है लंबी चुप्पी

मैं झुकना चाहता हूँ
किसी रोते हुए की आँखों से
आंसू पोछने के लिए
क्योंकि आँसू पोछना
रोते हुए के हक की
तरफदारी में

एक बड़ा आश्वासन है

मैं झुकना चाहता हूँ
जहाँ-जहाँ से
लोग पुकारें मुझे
उन्हें बाहों में भरने के लिए
दो बांहों के बीच
पूरी धरती समा आती है
बाँहों की परिधि बड़ी हो जाती है
मैं झुकना चाहता हूँ
जैसे, पहाड़ का सीना फोड़
झुकती और बढ़ती चली
जाती हैं नदियाँ
धरती की ओर
मैं झुकना चाहता हूँ,
फले हुए आम की तरह
बरगद की तरह
पर ताड़ की तरह
तना नहीं रहना चाहता

मैं झुकना चाहता हूँ
क्योंकि झुकना
महज एक क्रिया नहीं है
यह संवाद की गुंजाइश है
और संवाद है
बंद कमरे का रोशनदान
मैं हर घर के कमरों में
रोशनदान चाहता हूँ

और पूरे होशोहवाश में कह
रहा हूँ
मैं झुकूँगा
अपनी आत्मा की मुकम्मल उपस्थिति में
हर कहीं झुकूंगा
पर घुटनों के बल
किसी की चौखट पर नहीं।

उपहार

आज जोन्हिया की बकरी ने
चार बच्चों को
जन्म दिया है।
उसने इनके भरोसे ही
गौने में बेटी को देने के लिए
पहुँचा गढ़ाने को
पहले से सोच रखा है
आज ही के दिन
मुकेश अंबानी ने
अपनी पत्नी के जन्मदिन के
अवसर पर
उपहार में समुद्री जहाज खरीदा है
यह मुद्दा
मीडिया में छाया है
आप बताएँ
आज किसने
बड़ा उपहार पाया है।

अधिवक्ता, जिला 'न्यायालय परिसर, बलिया-277001, मो.7398159483

अनिरुद्ध सिन्हा

सुपरिचित गजलकार। अद्यतन पुस्तक 'हिंदी गजल का नया पक्ष'।

एक

इक खौफ़ बेबसी का मेरे दरमियान था
मिलता रहा सभी से मगर बेज़ुबान था

बारिश में ढह गया है तो हैरत न कीजिए
मिट्टी से जो बना था वो मेरा मकान था

आई अंधेरी रात लिए साथ आंधियाँ
जलते हुए चिराग का ये इम्तिहान था

साहिल पे अपनी प्यास लिए मैं खड़ा रहा
बादल समुंदरों पे जहाँ मेहरबान था

रातों में ख्वाहिशों की उड़ानें हुईं बहुत
दिन में परों से दूर मगर आसमान था

दो

उलझनों से तो कभी प्यार से कट जाती है
ज़िंदगी वक्त की रफ्तार से कट जाती है

मैं तो क्या हूँ मेरी परछाई भी
रोज उठती हुई दीवार से कट जाती है

यूँ तो मुश्किल है बहुत इसको मिटाना साहब
दुश्मनी प्यार की तलवार से कट जाती है

सारी बेकार की खबरें ही छपा करती हैं
काम की बात तो अखबार से कट जाती है

इतना आसान नहीं प्यारे मुहब्बत करना
ये वो गुड़िया है जो बाजार से कट जाती है

गुलज़ार पोखर, मुंगेर, बिहार-811201
मो.9430450098

गौरव गुप्ता
युवा कवि।

दो शहर एक रात

दिन में चमकते
दो अलग-अलग शहरों को
एक काली घनी रात जोड़ती है

तुम्हारे न चाहने पर भी
मैं पहुँच जा सकता हूँ
तुम्हारी सख्त नींद के कमरे में
सपनों के धीमे पाँव से

रात दूरियाँ कम कर सकती है
अजनबी हुए जा रहे दो लोगों के बीच

सुना है
चांद साथ-साथ देखने से
प्रेम बढ़ता है
दो शहरों का चांद
एक ही है
इसके लिए मैं ईश्वर का शुक्रगुजार हूँ

मैं टूटते तारों की खोज में
आसमाँ निहार रहा हूँ
'रातें लंबी हों' कि
मन्नतें होठों पर चिपकी पड़ी हैं
आंखें बंद होने की ताक में हैं
दाएँ हाथ की उंगलियाँ
बाएँ हाथ की उंगलियों से उलझी हुई हैं

दो अलग-अलग छतों पर
क्या हम इस देर रात
साथ चांद देखने की
आखिरी कोशिश नहीं कर सकते?

सबसे खूबसूरत घटना

विपरीत दिशा में सफर करते वक्त
दो लोगों का आखिरी बार
एक-दूसरे को मुड़ कर देखना
दुनिया की सबसे खूबसूरत घटना है।

दुख

दुख की नजर पैनी है
ढूंढ लेता है हमें
वक्त-बेवक्त
सबसे सुरक्षित स्थान पर भी

सुख के लिपटने भर के ख्याल से
दुख आ पहुंचता है
चौखट तक
जैसे
तुमसे अभी ठीक से मिला भी नहीं
और तुमने कहा-
मुझे जाना होगा

दुख
गोंद की तरह चिपकना जानता है मन पर
और सुख
उंगलियों के बीच से कब फिसल जाता है
खबर नहीं होती

मैं ढूंढता हूँ
अपनी हथेलियों पर

तुम्हारे स्पर्श के निशान
और दुख उसी वक्त
दरवाजा खटखटाने लगता है।

मेरी कविता

मेरी कविता
रुई-सा भार लिए
पहुँचेगी तुम तक
जैसे खाली जगह भर से
पहुँच जाती है रोशनी
जैसे ले लेता है पानी सहज आकार
हर बर्तन में
जैसे नवजात शिशु घुटनों के बल
पहुँचता है माँ की गोद में
धीमे-धीमे थप-थप की आवाज लिए
मेरी कविताओं में
तेज धावकों-सी गति नहीं होगी
जिसे मंजिल तक पहुँचने की जल्दी है
जिसे मनाना है जीत का जश्न
मेरी कविता को हारे हुए लोगों के बीच रहना है
जो ढूंढ रहे हैं आखिरी उम्मीद
मेरी कविता
होगी किसी पुरुष की
आंखों पर रुके हुए आंसू की तरह
जो अब लुढ़का कि तब लुढ़का
मेरी कविता
होगी किसी प्रेमिका के माथे पर
पड़े आखिरी चुंबन की तरह
जिसमें किसी के
सांसों की गर्मी, सदियों तक सुलगती रही

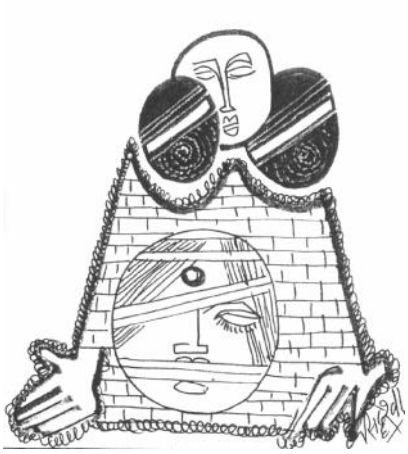

मेरी कविता को
शब्दों में लौटना होगा
जैसे लौटते हैं कामगार थक कर
एक गहरी नींद की आशा में
जैसे लौटते हैं पक्षी हर शाम
घोंसले की ओर
जैसे लौटता है कोई अपना
लंबे इंतजार के बाद
जैसे लौटते हैं पत्ते
टूटने के बाद जड़ों की ओर
जैसे बचता है एक सिक्का
सब कुछ खर्चने के बाद
मैं कविता में क्या दे सकूंगा?
शक्कर के कुछ दाने
गुड़ की मुट्ठी भर ढेली या
चुटकी नमक भर स्वाद
अंतिम सत्य के 'झूठ' से बचा कर
लिखता रहूंगा
थोड़ा-थोड़ा सच।

रानीगंज मुहल्ला, बारा चकिया, पूर्वी चंपारण-845412 बिहार मो. 8826843326

पूजा कुमारी
युवा कवयित्री।

प्रेम

जब तुम लिखोगे प्रेम
मैं रोटी लिखूंगी
रोटी के लिए
बाजार में उतरी हुई औरत लिखूंगी
रोटी के लिए ही दम तोड़ता जीवन लिखूंगी
जब तुम प्रेम में सजी हुई
कजरारी आंखें लिखोगे
मैं बाबा की बूढ़ी आंखों का
जवान सपना लिखूंगी
छोटे भाई के माथे पर पड़ी
बड़ी-बड़ी सलवटें लिखूंगी

जब तुम लिखोगे
सोने-चाँदी की बेड़ियों से सजी-धजी दुल्हन
मैं आजादी लिखूंगी

बित्ते भर जमीन और मुट्ठी भर अनाज के लिए
हमें लड़ना पड़ता है रोज
तो अब तुम ही कहो
तुम्हारे प्रेम में
मैं कैसे लिखूं प्रेम।

बारिश

जब भी बारिश की बूंदें
धरती के होंठों को चूमती हैं
महक उठता है सारा वातावरण
एक सोंधी-सी महक से
मैं ढूंढती हूँ यादों के तहखानों में
तो तुमसे जुड़ा कुछ भी नहीं पाती हूँ
लेकिन जब भी याद आता है घर
खपरैल से टपकती जगह-जगह छत
तपती धूप में रूह को
राहत देने वाला घर
आंखों में आंसू दे जाता है
माँ जगह-जगह बर्तन लगा कर
बचाती है जमीन भींगने से
और कभी आंगन में लगे
मिट्टियों के खेप हटाती है
पड़ोसी के ओसारे के पानी से
बचने के लिए रास्ते बनाती है
चूल्हे जलाने के साधन बचाने में
माँ खुद भींग जाती है
उनकी झुंझलाहट भरी बात सुन कर
समझ नहीं आता
कि माँ बरस रही है कि बादल
बाबा भी शांत दिखते हैं
पर भीतर से बहुत अशांत
बारिश गुजरने की देखते हैं राह
ताकि खपरैल को सही ठिकाना बताएँ
लेकिन बाबा खुश भी होते हैं
क्योंकि बारिश ने ही किया है
धरती के सीने को उर्वर
अब वे उगाएंगे मनचाहे अनाज
माँ करती है सबसे कठिन काम
गीले ईंधनों से चूल्हा जलाने का
मन भर कोसती है बादल और बारिश को
भाई की बगल में बैठी बहन पूछती है
कितना फर्क है
माँ और बाबा की बारिश में।

बी-1/148 सी. के 1 रामानुज नगर कालोनी, अस्सी, वाराणसी मो.8601315078

मराठी कविताएँ

संध्या रंगारी

अनुवाद : सूर्यनारायण रणसुभे

संध्या रंगारी

मराठी की प्रतिष्ठित कवयित्री। चार कविता-संग्रह प्रकाशित।

1.

स्त्रीत्व का बोझ
न फेंक सकती हूँ
और न
अपने लिए जी सकती हूँ मैं
निरंतर किसी-न-किसी की
कुछ तो होती ही हूँ मैं
बस अपनी कभी नहीं होती
एक अरसा हो गया
खुद को ऐसे खो कर
कितने वर्ष बीत गए
एक बार गलती से
कविता के अंतरंग में
मिली थी मैं
भीतर के अपने 'मैं' से।

2.

वह शिक्षित
उच्च पदस्थ
भाषा पर उसकी कमांड
शायद इसी कारण
बाहर पार्टी में वह
जितना अच्छा बोलता है
उतना ही घर में भयंकर
गंदी और अश्लील गालियाँ देता है
कदम-कदम पर अपमान सह कर भी
वह है शांत
शिक्षित, समझदार
उसके इस मौन को वह
उसकी कमजोरी समझता है
एक बार उसने इस गीले जख्म को
अपनी माँ के सम्मुख खोल दिया
तब माँ ने
दिखलाए अपनी पीठ के ताजे जख्म
और कहा
राक्षस की तरह तो पीटता नहीं तुझे?
औरतों का शौकीन तो नहीं है न
तो फिर सहती रह
गालियों से क्या सुराखें पड़ती हैं बदन पर?
वह हतबुद्ध
तेल की कटोरी लेकर
अपने मुलायम हाथों को फिराती रही
माँ की पीठ पर धीरे-धीरे
वह चौंक उठी
माँ को न सुख न दुख
बेजान लाश
ठंडा स्पर्श उसकी हड्डियों तक
जम गई हैं उसकी पेशियाँ

जम गया है शरीर
शक हुआ उसे
खुद को और माँ को लेकर
क्या वे जीवित हैं?
वह सोचने लगी
क्या शवगृह की विरासत
आई है मुझ तक
रिसते हुए!

3.

वह जंगल से एक पौधा लाकर
गमले में लगा देता है
पौधा बढ़ता गया
तो उसकी छँटनी करने लगता है
सूखने लगा
तो जड़ों को पानी देने लगता है
उस पौधे को
जो अब पेड़ बनने जा रहा है
न वह जीने देता है
और न मरने
पेड़ में फूट रही हैं अनेक शाखाएँ
वे अँखुआने लगी हैं
आँखों में है दहशत जीने की
तब भी सम्मोहन है आँखों में
सपने हैं
सपनों में शाखाएँ ऊँची हो जाती हैं
आकाश से भिड़ती हैं
जागने पर पेड़ की आँखों से
सपने बहने लगते हैं
धीरे-धीरे उस पेड़ की जगह
मैं खुद दिखने लगती हूँ
नाक में नथ
हाथों में कंगन
पैरों में पाजेब
घर-घर में बोनसाई बेटियाँ
इसी तरह सजी हुईं।

4.

महत्वाकांक्षी स्त्री
राजनीति में
सामाजिक कार्य में
फिल्म में
प्लेटफार्म पर
ठीक लगती है
लेकिन पुरुष के घर
चलती नहीं ऐसी स्त्री।

5.

शिक्षिका ने बेटे से कहा
घर का चित्र बना कर लाओ
वह ठीक से बना नहीं पा रहा था
मैं आंक देती हूँ उसकी कापी में
एक सुंदर-सा
खपरैल वाला घर
आँगन
आँगन में पौधे-फूल
एक झूला
उस पर बैठा हुआ बेटा
उसके पापा पौधों को सींचते हुए
मैं भीतर किचन में
दीवारों की आड़ में
बेटा झट से पूछता है
मम्मी तू है कहाँ इसमें?
मैं बता नहीं पाती
घर के भीतर
घर के बाहर
मैं कहाँ हूँ।

सूर्यनारायण रणसुभे, निकष, 19 अजिंक्य विला, अंबेजोगाई रोड, लातूर-413512 (महाराष्ट्र)
मो.9423735393

परिचर्चा

आदिवासी साहित्य विमर्श

प्रस्तुति : **अनुज लुगुन**

अब आदिवासी साहित्य विमर्श का स्वरूप उभर कर सामने आ गया है। विकास और विस्थापन के सवाल से शुरू हुआ यह विमर्श आज आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की जड़ों की तलाश है। यह साहित्य, इतिहास, दर्शन और कला तथा विचार के विभिन्न रूपों में अपनी पहचान और देय को रेखांकित कर रहा है। यह सिर्फ अपने 'स्व' पर खड़ा नहीं है, बल्कि औपनिवेशिक काल और उसके पहले तथा बाद में भी हुए हर तरह के उत्पीड़न एवं वर्चस्व के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष कर रहा है। यह मनुष्य का मनुष्य द्वारा किए जाने वाले उत्पीड़न का विरोधी है ही, मनुष्य द्वारा प्रकृति पर किए जाने वाले उत्पीड़न का भी घोर विरोधी है। मानव सभ्यता के इतिहास में मनुष्य ने जाति, धर्म, लिंग, नस्ल इत्यादि के नाम पर वस्तुतः मनुष्य का ही उत्पीड़न किया है। कभी उपनिवेशवाद के नाम पर, कभी रंगभेद, कभी जातिवाद के नाम पर कभी किसी और मंशा से। कुछ समाजशास्त्रियों ने भारत में इसे ब्राह्मणवाद का नाम दिया। आदिवासी साहित्य विमर्श की वैचारिकी इस तरह के भेदभाव के खिलाफ समतामूलक समाज की परिकल्पना करती है। आज आदिवासी समाज वैश्विक स्तर पर पूंजीवादी और नव-साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ सीधी लड़ाई लड़ रहा है। भारत में झारखंड, उड़ीसा और बस्तर से लेकर सभी आदिवासी क्षेत्रों में यह संघर्ष चल रहा है। आदिवासी समाज न केवल अपनी जमीन की लड़ाई लड़ रहा है, बल्कि संपूर्ण सृष्टि और मनुष्यता के लिए जरूरी जल, जंगल, जमीन की लड़ाई लड़ रहा है।

स्वाधीन भारत में तेजी से संकटग्रस्त होता आदिवासी समाज हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक सवाल की तरह है। आजादी के बाद हम जिस 'विकास' की दौड़ में शामिल हुए, वह आज आदिवासी समाज पर हमलावर हो गया है। यह आदिवासी अस्तित्व की शर्त पर हो रहा है। यह संकट पहचान का भी है और अस्तित्व का भी है। औपनिवेशिक काल में आदिवासी समाज और संस्कृति पर जो बाहरी हस्तक्षेप हुआ, वह आज उसी तरह बना हुआ है। आदिवासी विमर्श के तहत इस पर बहस आमंत्रित की गई है। इसमें शामिल लेखकों और विचारकों ने इस पर संविधान निर्माण की प्रक्रिया

अनुज लुगुन
युवा कहानीकार, कवि और स्तंभ लेखक। दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया में सहायक प्रोफेसर।

तथा उसके बाद की स्थितियों का बृहद विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

आदिवासी समाज की अपनी रचनात्मक कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। यह उनके मौखिक साहित्य में 'पुरखा साहित्य' के रूप में मौजूद है। यह उनकी मातृभाषाओं में है। अपनी मातृभाषाओं के अलावा भी आदिवासी समाज का चिंतन हिंदी और हिंदीतर भाषाओं में लगातार मौजूद है। आदिवासी साहित्य विमर्श का यही आधार है। इन्हीं सब बिंदुओं को विस्तार से समझने के लिए यह परिचर्चा आयोजित है। इसमें जिन लेखकों की टिप्पणियाँ हम तक पहुँची हैं, उनके आधार पर हम कह सकने की स्थिति में हैं कि आदिवासी समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ लंबे समय से मौजदू रही हैं। वे अपनी वैचारिकी और सौंदर्यबोध को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त करती रही हैं। आज वैश्विक दुनिया से संवाद कर रहे हैं। इस तरह उसकी अस्मिता और अस्तित्व का दायरा सीमित नहीं है।

सवाल

1. आदिवासी लोगों को कैसे परिभाषित किया जा सकता है? संवैधानिक भाषा में उन्हें 'जनजाति' कहा गया है, गाँधी ने उन्हें 'गिरिजन' कहा है, हिंदूवादी संगठन उन्हें 'वनवासी' कहते हैं, क्या सच है?
2. क्या कारण रहा है कि संविधान में आदिवासियों को उनका पहचानमूलक विशेषण'आदिवासी' नहीं मिला? क्या इसकी जरूरत है?
3. देश में आदिवासी समुदाय के लिए दो अनुसूचियाँ बनी हैं – पाँचवीं अनुसूची और छठी अनुसूची। दोनों में अलग-अलग शक्तियों का प्रावधान है। क्या देश के एक ही समुदाय के लिए इस तरह दो अलग-अलग अनुसूचियों का होना उचित है या यह आदिवासियों को विभाजित करने का एक तरीका है?
4. संविधान निर्माण के दौरान आदिवासियों की सांस्कृतिक विशिष्टता को ध्यान में रखने की कोशिश हुई है। जयपाल सिंह मुंडा और वेरियर एल्विन वैचारिक और दार्शनिक रूप से इस प्रक्रिया को देखते रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू 'पंचशील' की बात कर रहे थे। लेकिन क्या आदिवासियों की सांस्कृतिक विशिष्टता के प्रति यह संवेदनशीलता बाद के दिनों में बची रही?
5. आज साहित्य की दुनिया में आदिवासी विमर्श की आवाज सुनाई दे रही है। क्या आदिवासी साहित्य के विमर्शकार उपर्युक्त सवालों से परिचित होकर इससे जुड़ रहे हैं, या यह भी एक एक अवसर की तरह है और विमर्श में रूमानियत का भाव है?
6. किन सवालों के साथ आदिवासी विमर्श की शुरुआत हुई है और इसकी संवेदनात्मक दिशा क्या है?
7. क्या आदिवासी विमर्श में उसका अपना इतिहास अभिव्यक्त हो रहा है? आदिवासी समाज की इतिहास दृष्टि क्या है?

8. आदिवासी विमर्श में आदिवासियों की मातृभाषा और उसमें शिक्षा का सवाल कितना जुड़ा हुआ है? क्या यह विमर्श मुख्य धारा की भाषा जैसे हिंदी या अंग्रेजी में ही है, या आदिवासी भाषा साहित्य में भी है?

9. दलित विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण आधार उसकी आत्मकथाएँ रही हैं। आदिवासी विमर्श में आत्मकथाएँ उस तरह नहीं लिखी गई हैं, ऐसा क्यों है ?

10. आदिवासी विमर्श के लिए सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा कौन सी है और क्यों? कुछ रचनाओं और रचनाकारों का उदाहरण भी दीजिए।

11. आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र क्या है?

12. आदिवासी समाज को किससे और क्यों खतरा है – हिंदुत्ववाद से, पूंजीवाद से या किससे?

सहायक प्रोफेसर, विनोबा नगर, चंदौती, गया-823002 बिहार, मो.7677570764

आज भोली-भली संवेदना और आधुनिकता की स्वार्थकेंद्रित वैचारिकी का द्वंद्व तीव्र है

हरिराम मीणा

(1) विश्व की संपूर्ण मानवता जब प्रारंभिक अवस्था में थी, उसका जीवनयापन वनोपज एवं आखेट पर आश्रित था। सुरक्षा के लिए कबीलाई सामूहिकता, संपत्ति की अवधारणा की अनुपस्थिति, पुरुष वर्चस्व का अभाव, मानवेतर जीवजगत के साथ सह-अस्तित्व और प्राकृतिक तत्वों के प्रति पूजनीय भाव जैसी विशिष्टताओं वाले उस युग को हम 'आदिम साम्यवाद' के नाम से जानते हैं। धीरे-धीरे ज्ञान-विज्ञान की सहायता से मनुष्य आदिमता के उस खोल से बाहर निकलता गया। आज भी दुनिया भर में जो मानव समुदाय आदिमता की उस मौलिक जीवन शैली के निकट दिखाई देते हैं, उन्हें हम 'आदिवासी जन' के रूप में चिह्नित करते हैं। भारतीय समाज को जाति-आधारित समाज के रूप में हम जानते रहे हैं। इसलिए आदिम समुदायों को 'जन-जाति' की संज्ञा दे दी गई, जबकि यह समाज जाति व्यवस्था से दूर था। इन्हें 'गिरिजन' या 'वनवासी' कहना इनकी प्राचीन आदिमता और मूलवासियत का नकार है।

(2) हाँ, आदिवासी समाज को 'आदिवासी' संज्ञा की जरूरत है ताकि उसकी मौलिक पहचान सुरक्षित रह सके।

(3) छठी अनुसूची में पूर्वोत्तर भारत के राज्य सम्मिलित हैं और पांचवीं अनुसूची में शेष भारत के 10 राज्यों को लिया गया है। सलाहकार परिषद का प्रावधान दोनों अनुसूचियों में है, किंतु छठी अनुसूची में उसे करीब डेढ़ दर्जन क्षेत्रों में व्यापक प्राधिकार दिए गए हैं जिनमें वित्तीय शक्तियाँ, जाति प्रमाणपत्र जारी करना, वनाधिकार

और प्रथागत कानून के अंतर्गत आपराधिक और दीवानी मामलात तक का निर्णय इत्यादि भी सम्मिलित हैं। पांचवीं अनुसूची में प्रमुख रूप से जमीन का संरक्षण, साहूकारी शोषण से मुक्ति और निजी उपभोग के लिए देशी मदिरा निर्माण की छूट को शामिल किया गया है। इस अंतर को देखते हुए देश के सभी आदिवासी क्षेत्रों और समुदायों को छठी अनुसूची के अंतर्गत लिया जाना आदिवासी उत्थान के लिए जरूरी है, ताकि लोकतांत्रिक विकास और राष्ट्र निर्माण में उनकी व्यापक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

(4) संविधान निर्मात्री सभा में हुए विचार-विमर्श और उसके बाद भारत के लोकतांत्रिक नेतृत्व के मन में आदिवासी समाज के उत्थान के प्रति जो प्रतिबद्धता थी, उसमें 1991 में लागू की गई नई आर्थिक नीति के बाद भारी कमी आई है। विकास के नाम पर आदिवासी क्षेत्रों में प्राकृतिक संपदा का अंधाधुंध दोहन, देशी-विदेशी निगमों की घुसपैठ, आदिवासी विस्थापन की त्रासदी, नक्सलवाद का पुनर्प्रादुर्भाव और उससे प्रभावित अंचलों में आदिवासी कल्याण और विकास योजनाओं की क्रियान्विति में व्यवधान और भूमंडलीकरण के कारण आदिवासी सांस्कृतिक विशिष्टता के संरक्षण पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इन सबका एक बड़ा कारण सत्ता की संवेदनशीलता में आती जा रही कमी को माना जा सकता है।

(5) आदिवासी समाज को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। एक, उन्हें 'जंगली-बर्बर' की संज्ञा देते रहने का। इस दृष्टिकोण को भारतीय मिथकों की 'राक्षसी' अवधारणा, उपनिवेशवाद के समय में 'आपराधिक जनजातीय अधिनियम' और अब 'विकास में बाधक' के रूप में विकसित की जाती रही सैद्धांतिकी में देखा जा सकता है। दूसरा नजरिया है रोमांटिक, जिसके तहत कह दिया जाता है कि 'आदिवासी समृद्ध प्रकृति के बीच मस्ती से नाचता-गाता रहता है।' दोनों ही दृष्टिकोण अतिवादी हैं। इन पूर्वग्रहों से मुक्त होकर जो 'असल' आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, उसके माध्यम से निस्संदेह उपरोक्त सवालों को केंद्र में लाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

(6) अस्मितावादी साहित्य के अन्य सवालों की भांति आदिवासी विमर्श अपनी पहचान और विकास के मुद्दों को लेकर सामने आया है। जब दुनिया की शेष मानवता अपनी 'आदिमता' को त्याग कर अभिनव ज्ञान-विज्ञान के सहारे भौतिक विकास, आधुनिक लोकतंत्र और वैश्विक दृष्टि के विस्तार की ओर अग्रसर हो रही है, आदिवासी समाज का अपनी सदियों प्राचीन 'आदिमता' से चिपके रहना मानव स्वभाव की तार्किक विसंगति को संकेतित करता है। देर-सवेर आदिमता के खोल को त्यागना होगा। यहाँ एक सवाल खड़ा होता है जो आदिमता की प्राकृत भोली-भली संवेदना और आधुनिकता की अति-भौतिकतावादी स्वार्थकेंद्रित वैचारिकी का द्वंद्व पैदा करता है। आदिवासी विमर्श की आत्मा प्रकृति-प्रेम, मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह-अस्तित्व, सामूहिकता, भाईचारा, अव्यावसायिकता, निजी संपत्ति के प्रति न्यूनतम लगाव और एक सहज-सरल जीवन प्रणाली जैसे आदिम मूल्यबोध की धरा पर निवास करती है। मुद्दा यह है कि इसके साथ आधुनिक भौतिक सुविधाओं से युक्त विकास का सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए? यह सामंजस्य तभी संभव है, जब आदिम मूल्यों को सुरक्षित-संरक्षित-संवर्द्धित करते हुए आधुनिक भौतिक प्रगति की राह पर अग्रसर हुआ जाए।

(7) साहित्य का एक रूप जीवन के हर्ष-विषाद की अभिव्यक्ति से जुड़ा है। इसकी निरंतरता

हरिराम मीणा
वरिष्ठ आदिवासी कवि, कथाकार और विचारक। सेवानिवृत पुलिस महानिरीक्षक।
संप्रति : अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच, नई दिल्ली के अध्यक्ष

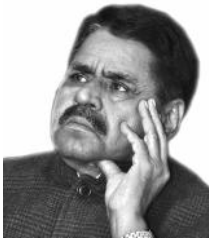

की एक वैचारिकी होती है, चाहे उसे कोई सैद्धांतिक स्वरूप दिया गया हो अथवा नहीं। उस निरंतरता से टूट कर यदि कोई रचनात्मक साहित्य के बारे में सोचता है तो वह अवश्य अपनी जड़-जमीन से उखड़ जाएगा। इसलिए आदिवासी ही नहीं, किसी भी साहित्यकार को अपने अतीत के प्रति सचेत होकर काम करना होगा। आज जिसे हम आदिवासी समाज के नाम से जानते हैं, वह भारतीय इतिहास में 'अलगाव' के यथार्थ में रहा है। अलगाव 'बंद समाज' की रचना करता है। बंद समाज बाहरी लोगों का प्रतिरोध करता है।

आदिवासियों का इतिहास प्रतिरोध का रहा है। यह प्रतिरोध आदिवासी साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा है।

(8) आदिवासी विमर्श में यह मुद्दा बार-बार आया है कि कम से कम माध्यमिक शिक्षा तक आदिवासी भाषाओं को माध्यम बनाया जाए ताकि भाषिक परंपरा, मुहावरा, समझ और परिवेशगत पृष्ठभूमि के पुट से आधुनिक पाठ्यक्रम को अपनत्व, सहजता और सरलता के साथ सीखा जा सके। शिक्षा के इस स्तर तक होने वाले 'ड्रॉप-ऑउट' की एक बड़ी वजह पराई भाषा है। जहाँ सेव का फल पैदा नहीं होता, वहाँ 'ए' का मतलब 'एपल' बताएंगे तो बात नहीं बनेगी। इस फ़ॉर्मूला को अंग्रेजीदां बोर्डिंग स्कूलों में लागू नहीं किया जा सकता, पर आम आदिवासी बच्चे तो सरकारी शिक्षण संस्थाओं में ही पढ़ते हैं।

(9) यह मुद्दा 'आदिम' मानसिकता के राग से जुड़ा है। किसी भी 'असल' आदिवासी लेखक की मानसिकता (मनोविज्ञान) व्यक्ति अथवा आत्म-केंद्रित नहीं रही है। आदिवासी सदैव 'सामूहिकता' में विश्वास करता है। उसमें अभी ईमानदारी बची हुई है। इसलिए दूसरा सवाल यह उठता है कि क्या कोई व्यक्ति अपनी 'आत्मकथा' पूरी ईमानदारी के साथ लिख सकता है?

(10) आदिवासी विमर्श क्या, किसी भी साहित्य की बात की जाए, तो यह कहना उचित होगा कि विषयवस्तु अपनी विधा तय करती है न कि लेखक।

(11) दलित साहित्य की भांति आदिवासी साहित्य को समझने के लिए आलोचना के परंपरागत स्थापित प्रतिमानों को बदलना होगा। आदिवासी दर्शन में मनुष्य की श्रेष्ठता का नकार है। वहाँ सभी प्राणी समान हैं। नारी सौंदर्य के प्रस्थापित निकष पर यह प्रश्न स्वत: उठ खड़ा होगा कि चपटी नाक वाला कृष्णवर्णी गोल चेहरा 'असुंदर' कैसे हो सकता है? यदि पसीना श्रम का प्रतीक है तो उसमें बदबू आने के एहसास पर सवाल उठेगा। महाप्राण निराला जब कुकुरमुत्ता के पक्ष में कविता लिखते हुए 'अबे ओ गुलाब' कहते हैं तो हमें गौर से सोचना होगा कि वे किस सौंदर्यबोध की तरफ इशारा करते हैं? आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र यह कह देने में शायद समाहित हो कि 'जो कुछ मुझे सुख देता है, वह सब सुंदर है और जो मुझे दुख देता है वह सब कुछ असुंदर।' आदिवासी साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को समझने के लिए आदिवासी जीवन की गहरी समझ जरूरी है।

(12) आदिवासी समाज को खतरा है 'गैर-आदिवासियत' से!

31, शिवशक्ति नगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019 मो.9414124101

विस्थापन की समस्या ने आदिवासियों को सबसे ज्यादा परेशान किया है

महादेव टोप्पो

(1) सबसे पहले आदिवासी समाज को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं, 'एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाला ऐसा जन समूह जो अपने अनुभव से अर्जित ज्ञान, परंपरा, भाषा, संस्कृति पर भरोसा करते हुए, धरती, प्रकृति, मनुष्य के परस्पर सम्मान, संरक्षण-संवर्द्धन को प्राथमिकता देता है, जो बंधुत्व भाव से समस्त प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत भर उपभोग करते हुए, मुनाफा कमाने और सत्ता के शिखर पर रहने की अंधी इच्छा रखे बगैर, सहयोगपूर्ण सामूहिक जीवन जीता है और भावी पीढ़ी के लिए भी सभ्यता, तकनीक और विज्ञान के विनाशकारी आविष्कारों-प्रभावों से इस सुंदर पृथ्वी को, संपूर्ण मानव जाति के लिए खुशहाल और शांतिमय रूप में बचा कर रखना चाहता है, वही आदिवासी समाज है।'

किसी भी समाज की दो छवियाँ होती हैं- पहली वह जिससे वह समाज या समुदाय स्वयं को पहचाना जाना पसंद करता है। दूसरी छवि वह है जिससे दूसरा समाज उसे पहचानना चाहता है। इसी कारण समुदायों के नाम का संघर्ष चलता रहता है। जैसे यूरोपीयनों ने जिन्हें कभी नीग्रो कहा आज, उन लोगों ने ब्लैक कहलाने में सम्मान खोज लिया है। भारत में संविधान बनाते समय आदिवासी प्रतिनिधियों की बातें सुनी नहीं गईं। ऐसे में जिन लोगों ने आदिवासी शब्द के लिए प्रस्ताव रखा, उनकी बातों की उपेक्षा की गई। फलतः उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया। उस समय की कांग्रेस में हिंदूवादी और सामंती मानसिकता से ग्रसित अनेक लोग थे जिन्हें आदिवासियों की उभरती चेतना अच्छी नहीं लगती थी। आज भी बहुतों को अच्छी नहीं लगती है। इसलिए चाहे महाभारत काल हो या आधुनिक काल, आदिवासी जैसे समुदाय को सभ्य कहे जाने वाले समुदाय ने हमेशा हाशिए पर डाले रखने की कोशिश की है। ऐसे लोगों के लिए जरूरी था कि वे अपने उच्चताबोध को बनाए रखने के लिए आदिवासी समाज को एक हीन या छोटे माने जाने वाले शब्दों से संबोधित करते। वैसे आदिवासी आज भी झारखंड में सभ्य समाज के अधिकांश लोगों को 'दीकू' कहते हैं। यह तब तक चलता रहेगा जब तक सभी लोग एक मानव के रूप में इस धरती, प्रकृति के रक्षक या हितैषी के रूप में स्वयं को मान न लें। यदि आदिवासियों को हीन और निकृष्ट साबित करने के लिए वर्चस्ववादी शक्तियों द्वारा हालात पैदा किए जाते रहेंगे- आदिवासी को वनवासी, गिरिजन आदि कहा जाता रहेगा तो आदिवासी भी उनके लिए दीकू जैसा कोई संबोधन तलाशता रहेगा।

(2) पहचानमूलक विशेषण किसी भी समुदाय को अच्छा लगता है और वह इस तरह अपनी छवि विकसित करता है। विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों और क्रिया-कलापों से किसी समुदाय की छवि में अंतर आ सकता है। उनके विचारों, गतिविधियों, क्रिया-कलापों से दूसरा समुदाय संभव है असुरक्षित, अपमानित या उपेक्षित महसूस करे।

आदिवासी का पहचानमूलक शब्द नहीं मिलने के ये कारण हो सकते हैं। अगर पूरा विश्व अपनी पहचान एक मानव के रूप करना चाहे तो एक आदिवासी को भी यह स्वीकारने में हिचक नहीं होगी। लेकिन उसे छोटा या हीन समझने, बताने के लिए कोई सामंती और वर्चस्ववादी समुदाय उसके इच्छित शब्द संबोधन के अलावा कुछ कहेगा तो निश्चय ही वह अपने लिए एक सम्मानजनक शब्द ढूंढेगा। इसलिए उसका

अपनी पहचानमूलक शब्द के प्रति आग्रह बना रहेगा। दूसरे लोगों को अपने सम्मान की चिंता है तो आदिवासियों को भी अपनी पहचान और सम्मान की चिंता है। दिक्कत है, लोगों को अपनी पहचान तथा सम्मान की बात अच्छी लगती है, लेकिन आदिवासियों की नहीं। क्यों? क्या इसलिए कि अधिकांश आदिवासी दुर्गम स्थानों में या जंगलों में रहते हैं और आपकी तरह पढ़े-लिखे नहीं हैं। या सभ्य कहलाने के लिए आपके निर्धारित मानदंडों को पूरा नहीं करते इसलिए? या आपकी तरह हिंदी, अंगरेजी आदि भाषा नहीं बोल पाते? लोगों को अपनी सम्मानजनक पहचान के लिए शब्दों की जरूरत है तो आदिवासी को भी है। अगर आदिवासी अपने लिए आदिवासी शब्द में सम्मान अनुभव करता है तो उसे आदिवासी कहना चाहिए।

(3) एक ही समुदाय के लिए दो तरह की सूची बनाना, लगता है एक समुदाय को विभाजित करने का तरीका है, ताकि मतभेद और तनाव बने रहें और आदिवासी एकजुटता बाधित होती रहे।

(4) संविधान निर्माताओं को आदिवासियों को चिंता जरूर थी। लेकिन इसके क्रियान्वयन के लिए जो तंत्र अथवा प्रणाली विकसित की जानी चाहिए थी उसके लिए मन में कहीं अपूर्ण, अपुष्ट, अधूरी जानकारी के साथ-साथ दुविधा या खोट रही होगी। इसीलिए हो सकता है क्रियान्वयन नहीं हुआ। आजाद भारत में न राज्य द्वारा इच्छा दिखाई गई और न कोई सार्थक प्रयास किया गया। फलतः देश के आदिवासी इलाकों में कई तरह की नासमझियाँ विकसित होती रही हैं। आदिवासियों में घोर निराशा भी उत्पन्न हुई।

अंगरेजों के आदिवासी इलाके में प्रवेश के समय से ही आदिवासियों ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का विरोध किया है। यह बेहद त्रासद है कि स्वतंत्र भारत में भी इसे समझा नहीं गया, उसी औपनिवेशिक प्रक्रिया को जारी रखा गया। विस्थापन के सवाल पर आदिवासियों ने अपनी आवाजें उठानी शुरू कीं। आज आदिवासी मुद्दे, साहित्य के माध्यम से उनकी आवाजें आकार में आने लगी हैं। लेकिन मूल मुद्दा तो आदिवासी के जीने का है- धरती और प्राकृतिक संसाधनों को बचा कर उनके सीमित उपयोग का भी है।

हमारे सभ्य भाइयों को लगता है कि जंगल पिछड़ेपन की निशानी है। पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं की रक्षा, जमीन की रक्षा विकास में बाधक है। तो क्यों दिल्ली या कोई महानगर शुद्ध हवा के लिए बेचैन हो जाता है? क्यों हमारे हजारों लोगों को पानी नहीं मिल रहा है? और क्यों नदी, तालाब, झील रोज मारे जा रहे हैं? इन पर गंभीरतापूर्वक सोचने की जरूरत है। इस पर भी आज सोचने की जरूरत है कि अपनी प्रतिभा के बल पर पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा मिले। उनकी भूमि और जंगल के अधिकार का सम्मान किया जाए। उनको प्रशिक्षित कर विकसित करने की बात कही गई थी। बहुत सारे लोगों के आदिवासी क्षेत्र में प्रवेश को रोकने की बात भी कही गई थी। इनके साथ प्रतिस्पर्धा से काम नहीं करने की बात भी कही गई थी।

लेकिन सत्तर साल में सब कुछ उल्टा किया गया। उनकी भाषा, संस्कृति, परंपरा, जीवन-शैली को कमतर बताने और छोटा साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। उन्हें एक उपयोगी किंतु सस्ते वस्तु के रूप में देखा गया जिसका उपयोग कर, कचरे में फेंक दिया जाए। उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया गया जैसा कभी यूरोपियनों ने रेड इंडियनों या अफ्रीकी आदिवासियों के साथ किया था।

विकास के लिए निर्माण कार्य को अनिवार्य बताया गया है, और आदिवासी इलाकों में कई ऐसे भी निर्माण-कार्य भी किए गए हैं जिनकी कोई सामाजिक, आर्थिक उपयोगिता नहीं है। आधे-अधूरे स्कूल, पुल, अस्पताल, खनन, डैम, कारखाना-निर्माण के लिए किए कार्य इसके उदाहरण हैं। इस तरह आदिवासी इलाकों में संवेदनहीन, अनुत्पादक निर्माण कार्यों ने आदिवासियों के साथ, देश का भी नुकसान किया।

एक और उदाहरण- आदिवासियों की भाषा-संस्कृति के प्रति थोड़ी भी संवेदनशीलता रहती तो रांची विश्वविद्यालय में आदिवासी भाषाओं के लिए

महादेव टोप्पो
चर्चित आदिवासी रचनाकार। कविता संग्रह
'जंगल पहाड़ के पाठ' और लेखों का संग्रह
'सभ्यों के बीच आदिवासी'। फिल्मों से जुड़े।
मातृभाषा कुड़ुख में नाटक लेखन।

1981 से स्थापित क्षेत्रीय एवं जनजातीय भाषा विभाग में आज स्थायी शिक्षक होते। यहाँ अंतरराष्ट्रीय स्तर के शोध व शिक्षण-कार्य आदि हो सकते थे। वस्तुतः आदिवासी-भाषा और लोक साहित्य, संस्कृति, दर्शन, इतिहास के अलावा वनस्पति-विज्ञान, भूगोल, वन-विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन आदि के अध्ययन की जो संभावना थी, उन्हें पहचाना नहीं गया, जबकि ये विषय अनेक विश्वविद्यालयों में नई सामाजिक चेतना के साथ उदारतापूर्वक पढ़ाए जा रहे हैं। यह अंतरराष्ट्रीय स्तर का शिक्षा केंद्र बनाया जा सकता था। लेकिन आदिवासियों को निम्नतर समझने और उन्हें 'दबाए रखो' वाली सामंती और औपनिवेशिक मानसिकता से किसका नुकसान हुआ या हो रहा है यह देश के प्रबुद्ध लोग सोचें। आदिवासी इलाके को मुनाफा और नौकरी पाने के साधन के रूप में 'लूटो-कमाओ' वाले औपनिवेशिक संवेदनहीन नजरिए से देखा गया।

आदिवासी और देश के अन्य लोग एक नए किस्म का विकास मॉडल बना सकते थे, वह नहीं बना। आदिवासियों के पारंपरिक ज्ञान और क्षमता का आधुनिक तरीके से विकास किया जा सकता था, जो न हो सका। आज आदिवासियों की नैसर्गिक क्षमताओं को कतर कर, एक भीड़ में तब्दील किया जा रहा है, ताकि वे आज्ञाकारी रोबोट की तरह सोच सकें, काम कर सकें।

(5) 1970 के आस-पास अमेरीका में अश्वेतों के नागरिक आंदोलन चल रहे थे। इन आंदोलनों ने भारत में पहले दलितों को फिर आदिवासियों को प्रभावित किया। इसका प्रभाव महाराष्ट्र में पहले पड़ा और वहाँ इसके सम्मेलन आदि होने लगे। इसी के आस-पास झारखंड में एक साहित्यिक, भाषिक सांस्कृतिक, सामाजिक चेतना जाग रही थी और 'झारखंडी बुद्धिजीवी मंच' के बैनर तले सभा-संगोष्ठियाँ, विचार विमर्श के काम हो रहे थे। इसमें वीर भारत तलवार जैसे बुद्धिजीवियों का भी सहयोग था। 1881 में क्षेत्रीय और जनजातीय भाषा विभाग, रांची विश्वविद्यालय में रामदयाल मुण्डा के नेतृत्व में काम होने लगा था। सभी आदिवासी जल, जंगल, जमीन के अस्तित्व और आत्म-सम्मान के लिए संघर्षरत रहे हैं। लेकिन स्वतंत्र भारत में आदिवासी भाषाओं से जुड़े लोगों के लिए जान- बूझ कर रोजगार उपलब्ध न कराने की साजिशें सफल होती दिखाई देती हैं। इस तरह आदिवासी भाषा-साहित्य, कला-संस्कृति को जिस तरह से बढ़ना चाहिए था, वे बढ़ नहीं पाए। लेकिन इस परिघटना ने कुछ लोगों में यह जिद व जज्बा जरूर पैदा किया कि वे विपरीत परिस्थितियों के बावजूद आगे बढ़ने के लिए कुछ न कुछ करते रहेंगे। यह जिद कभी सामूहिक और कभी व्यक्तिगत प्रयासों से आगे बढ़ता दिखता है। देश-दुनिया में आदिवासी-लोग साहित्य के माध्यम से आदिवासी जीवन को नए ढंग से परिभाषित करने की कोशिश कर रहे हैं, हिंदी में भी यह हो रहा है। इससे कुछ आशा बंधती है।

(6) आजादी के बाद विस्थापन की समस्या ने आदिवासियों को सबसे अधिक परेशान किया। फलतः वे जल, जंगल, जमीन, जमीर, जुबान के मुद्दों पर एकत्रित हुए और संघर्ष किया। इसे कुछ विद्वानों ने उनकी आत्मकेंद्रीयता कहा और विकास के सवाल पर आदिवासियों के संघर्ष को घेरे में लाने की चेष्टा की। उन्हें विकास-विरोधी कहने और साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। लेकिन आज सिर्फ भारत ही नहीं पूरी दुनिया देख और समझ रही है कि आदिवासियों का यह जिद्दी संघर्ष न केवल मानवीयता के लिए बल्कि पृथ्वी में हवा, पानी, हरियाली बचाने

के लिए जरूरी मुद्दे बन चुके हैं। इसलिए आदिवासी विमर्श मात्र आदिवासी से जुड़ा सवाल नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता, पृथ्वी और प्रकृति को बचाने का आह्वान भी है।

इस धरती को खोखला बनाने की मुनाफाखोर और आदमखोर पूंजीपति–सामंती, उपभोक्तावादी और वर्चस्ववादी शक्तियों का यह विरोध करता है। आज जो आदिवासियों को गंवार और पराजित कौम कहते हैं वे बताएँ क्या उन्हें हरी धरती, हवा, पानी नहीं चाहिए? आदिवासी विमर्श को इस तरीके से संवेदना और विचार के स्तर पर समझने की आज अत्यंत आवश्यकता है। आदिवासी साहित्य मनुष्य की बेहतरी के लिए अब तक साहित्य में उपेक्षित सवालों, मुद्दों, समस्याओं को सामने लाता रहा है।

(7) आदिवासी साहित्य लेखन में उनका इतिहास जरूर झाँकता है। अपने इतिहास के उपेक्षित पन्नों को देखने–परखने के कारण आदिवासी साहित्य आज ज्यादा प्रासंगिक हो गया लगता है। इसलिए उनकी इतिहास दृष्टि में मनुष्य के जन सरोकारों से जुड़े मुद्दे हैं। उसमें मनुष्य की ज्यादा जीवंत कहानी है।

(8) आदिवासी विमर्श में इनकी मातृभाषा का सवाल स्वाभाविक रूप से जुड़ा है लेकिन लोग भाषाई भिन्नता के कारण हिंदी, अंगरेजी या अन्य भारतीय भाषाओं में लिख रहे हैं। मूल लेखन आदिवासी भाषाओं में भी हो रहा है। आदिवासी भाषाओं से वंचित पहली या दूसरी पीढ़ी के आदिवासी लेखक भी लिख रहे हैं। इसके समानांतर आदिवासी लेखकों ने आदिवासी भाषाओं में भी काफी कुछ लिखा है। इनके समीक्षक या इनके बारे पत्रिका आदि नहीं होने के कारण चर्चा नहीं के बराबर है। हिंदी में आदिवासी मुद्दों ने ऐसे लोगों को आकर्षित किया है जो अपनी पहचान के लिए महत्वाकांक्षी रहे हैं। वे आदिवासी साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए हैं।

(9) कोई समुदाय साहित्य की किस विधा को अपनाएगा यह उस समुदाय विशेष की शैक्षणिक और सामाजिक–आर्थिक विकास पर निर्भर करता है। आदिवासी समाज चीजों को सामूहिकता, सहजीविता और परस्पर सम्मान की भावना से देखता रहा है। यही कारण है कि यहाँ व्यक्तिवादी रुझान हावी नहीं हो पाया है। इसलिए आत्मकथाएँ कहने का रुझान कम है। आदिवासी सामूहिक गीत गाने में ज्यादा अच्छा महसूस करते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि आत्मकथाएँ नहीं लिखी जा रही हैं। कुछ नवसाक्षर आदिवासियों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। 'रोमिंग इन कलकत्ता' इसका उदाहरण है। भविष्य में आदिवासी आत्मकथाएँ आएंगी। वे समाज के समक्ष नए अनुभव और दृष्टिकोण लाएंगी। आत्मकथा की विधा ज्यादा आदिवासी साहित्य को लोकप्रिय बनाने में अधिक सक्षम भी होंगी। ऐसा इसलिए कि एक आदिवासी का अनुभव किसी भी अन्य आदमी से हमेशा भिन्न और नया होता है। एक आदिवासी होने के कारण उसे जीवन के हर क्षेत्र में कठिनतम स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

(10) आदिवासी रचनाकारों द्वारा कविताएँ काफी लिखी गई हैं। रामदयाल मुण्डा के 'सेलेद' का द्विभाषी रूप में तीसरा संस्करण प्रकाशित हो गया है। इस कविता संग्रह में आदिवासी जीवन की विविध स्थितियाँ और प्रसंग, मुण्डा परिवेश पर आधारित हैं। हरिराम मीणा, रोज केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, वाहरू सोनवणे, जमुना बीनी तादेर, फ्रांसिस्का कुजूर, विश्वासी एक्का, सरिता सिंह बड़ाईक, चंद्रमोहन

किस्कू, ज्योति लकड़ा, ऊषा किरण आत्राम, जसिंता केरकेट्टा, जोराम यालाम नाबाम आदि कुछ चर्चित नाम हैं। हरिराम मीणा, हैरॉल्ड सैमसन तोपनो, बासुदेव बेसरा, केदार प्रसाद मीणा, रमेशचंद्र मीणा, गंगा सहाय मीणा, प्रमोद मीणा, दयामनी बरला, वंदना टेटे, रविकुमार गोंड, सावित्री बड़ाईक आदि ने आलोचना और अपने विविधतापूर्ण लेखन से प्रबुद्ध लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। इनके अलावा कई लोग हिंदी और अपनी मातृभाषा में लिख रहे हैं।

अरुणाचल प्रदेश से गुजरात और लद्दाख से केरल तक आदिवासी कुछ न कुछ लिख रहे हैं। कई गैर-आदिवासी रचनाकारों ने भी आदिवासी जीवन पर अच्छी रचनाएँ लिखी हैं और आदिवासी मुद्दों पर आदिवासी समस्याओं को सामने लाया है। अपने अनुभव की सीमाओं के बावजूद राधाकृष्ण, विद्याभूषण, संजीव, शैवाल, अरविंद चतुर्वेद, रणेंद्र, पंकज मित्र, महुआ माझी आदि की कुछ रचनाएँ अच्छी हैं। उनके इस प्रयास की प्रशंसा की जानी चाहिए। लेकिन ऐसा भी हो रहा है कि कुछ लोग आदिवासी साहित्य के नाम पर कुछ भी लिख कर साहित्य में नाम कमाने के लिए घुसपैठ कर रहे हैं। इन्हें आदिवासियों के बारे न कुछ पता है और न सामान्य जानकारी। ऐसे लोगों के लेखन में प्रवेश से समाज में कुछ गलत जानकारियाँ या धारणा विकसित हो जाती है जो चिंताजनक है। इसलिए आदिवासी लेखन को सही नजरिए से समझने और परखने की जरूरत है।

(11) आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र साहित्य के पुराने सिद्धांतों के आधार पर निर्धारित नहीं कर सकते। आदिवासी साहित्य मूलतः आदिवासियों के सरोकारों से जुड़ा है अतः मनुष्य के जीवन को बचाने के सवालों से जुड़ी व्याख्या या सिद्धांतों को आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र माना जा सकता है। यहाँ उसकी मौखिक परंपरा भी शामिल होगी। लेकिन यह एक लंबी प्रक्रिया है।

(12) आदिवासी समाज ही नहीं, पूरे विश्व समुदाय को खतरा मात्र हिंदुत्ववाद से नहीं है, बल्कि सभी तरह के अंध-धार्मिकतावाद व कट्टरतावाद से है। क्योंकि कोई धर्म जब अपनी श्रेष्ठता और अपने वर्चस्व की बात करता है तो अंततः कहीं वह मनुष्य का ही विरोधी बन जाता है या बना दिया जाता है। इस संघर्ष में आदमी ही आदमी के खून का प्यासा हो जाता है। इसलिए खतरा हर प्रकार की अंध-धार्मिकता और कट्टरता से है।

दूसरी तरफ विकास के नाम पर विज्ञान और तकनीक का सहारा लेकर पनपता पूंजीवादी समाज अपनी सामंती, लालची, मुनाफाखोर और उपभोक्तावादी आकांक्षा से समस्त धरती को प्रकृति के संसाधनों से खोखला बनाने के लिए पागल दिखता है। ऐसे में आदिवासी और आदिवासी साहित्य मनुष्य, धरती और प्रकृति के संसाधनों की रक्षा करने सहजीविता, परस्पर सम्मानपूर्ण और शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए बाधा बने मुद्दों और परिस्थितियों को समझना चाहता है।

इसलिए आदिवासी समाज ही नहीं, विश्व मानव को हर प्रकार के अंध-धार्मिकतावाद, दिशाहीन आकांक्षा, श्रेष्ठतावाद, मुनाफाखोरी, धरतीखोरी और आदमखोर पूंजीवाद से बचाना जरूरी है। पहिए के आविष्कार से लेकर कंप्यूटर-नियंत्रित अंतरिक्ष यानों तक की हमारी यह यात्रा लगातार मनुष्य-विरोधी क्यों हो रही है? ऐसे सवालों पर सोचना जरूरी है। इसके लिए लगातार संवाद होते रहना चाहिए। आदिवासी साहित्य ने छोटी-सी पहल की है, बाकी लोग भी सोचें। 'वागर्थ' ने यह समझने की कोशिश की और अपने पाठकों से, हमारी बातें कहने का अवसर दिया, इसके लिए असंख्य धन्यवाद!

हरमू हाई कोर्ट कॉलोनी के पीछे, कार्तिक चौक के निकट, हरमू, राँची - 834002, झारखंड
मो.7250212369

आदिवासी भाषाओं में शिक्षा के मार्ग में अभी भी कठिनाइयाँ हैं

वाल्टर भेंगरा 'तरुण'

(1) आदिवासी भाषा, संस्कृति और रहन-सहन ही आदिवासी होने की मूल परिभाषा है। कट्टर हिंदुत्ववादी लोग इन्हें मूलवासी नहीं मानते। इसलिए वे इन्हें 'आदिवासी' कहना पसंद नहीं करते और 'वनवासी' कहते हैं। जयपाल सिंह मुण्डा ने संविधान समिति के सामने 'आदिवासी' होने की मांग उठाई थी, लेकिन समिति ने 'जनजाति' शब्द को स्वीकृत किया। यदि 'आदिवासी' शब्द को संवैधानिक स्वीकृति मिलती तो आज जो अड़चन आ रही है, वह नहीं होती। आदिवासी शब्द उनकी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विशेषता को प्रकट करता है। आदिवासियों ने ही सबसे पहले जंगल साफ कर खेती योग्य जमीन बनाई और गांव बसाया। प्रकृति उनकी आजीविका के साथ सांस्कृतिक जीवन का आधार बनी। हर आदिवासी समुदाय की अपनी-अपनी आजीविका की व्यवस्था है। शिकार और कृषि उनकी जीविका के आधार रहे हैं।

(3) पांचवीं और छठी अनुसूची में आदिवासी ग्राम सभाओं को संवैधानिक अधिकार दिया गया है। आदिवासी समाज व्यवस्था सामूहिकता और सहभागिता पर आधारित होती है। माझी परगना, पहाड़ परगना इत्यादि व्यवस्थाओं के जरिए उनका नियम-कानून चलता रहा है। ये उनकी गणतांत्रिक समाज व्यवस्था के आधार रहे हैं। इसलिए देश के सभी जिलों में आदिवासियों के लिए पांचवीं-छठी अनुसूची को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए।

(4) आदिवासी समाज के प्रति संवेदनशीलता घटती गई है, क्योंकि कारपोरेट घरानों ने राजनीति में दखल दिया है। आदिवासी क्षेत्रों में अपार प्राकृतिक संसाधन हैं। खनिजों की प्रचुरता के कारण कारपोरेट संगठन आदिवासी क्षेत्रों की ओर आकर्षित हुए हैं। राजनीति के साथ उनके गठबंधन के फलस्वरूप तथाकथित 'विकास' की बात कही जा रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है। शांतिप्रिय आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी समाज की जनसंख्या का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है और आदिवासियों का अस्तित्व संकट से घिर गया है। जमशेदपुर या सिंहभूम को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आज रांची झारखंड की राजधानी है, लेकिन रांची में आदिवासी देखने को नहीं मिलते हैं। शिक्षा के प्रभाव के कारण आदिवासी समुदाय में भी प्रतिस्पर्धा का भाव पैदा हो रहा है। इस वजह से शहरों में रहने वाले या नौकरीपेशा आदिवासी अन्य समाजों की जीवन शैली की तरफ आकर्षित हो रहे हैं । वे अपनी संस्कृति और भाषा से दूर होते जा रहे हैं।

(5) हिंदी में आदिवासी साहित्य का स्वर सुनाई दे रहा है। लेकिन रचनाएँ अभी बहुत कम हैं और बहुत ज्यादा लिखना बाकी है। आदिवासी लेखकों का साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। अब हिंदी साहित्य से जुड़े कई साहित्यकार यह मानने को तैयार हो रहे हैं कि आदिवासी साहित्यकार द्वारा लिखित कृतियाँ ही उनके जीवन का वास्तविक चित्रण करती हैं। इस दिशा में अभी और काम करने की जरूरत है। साहित्य अकादमी भी आदिवासी लेखकों को प्रोत्साहित कर रही है। इससे आदिवासी विमर्श को बढ़ावा मिल रहा है।

(6) संताली भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल करने के बाद आदिवासी भाषाओं की ओर लोगों का ध्यान गया। इसके साथ रमणिका गुप्ता द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर आदिवासी लेखक-लेखिकाओं को एकजुट करने का प्रयास किया

वाल्टर भेंगरा 'तरुण'

वरिष्ठ आदिवासी लेखक और विचारक। पांच उपन्यास और चार कहानी संग्रह प्रकाशित।

गया। ऑल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम का गठन हुआ। इस दिशा में साहित्य अकादमी ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पूर्वोत्तर सहित देश के सभी आदिवासी क्षेत्रों के लेखक-लेखिकाओं को मंच देने में रमणिका गुप्ता और साहित्य अकादमी का विशेष योगदान है। इसके अलावा, आदिवासी लेखक-लेखिकाओं ने निजी तौर पर अपनी कृतियों और प्रकाशन द्वारा भी आदिवासी साहित्य विमर्श में योगदान दिया है।

(7) आदिवासियों की लिपि 'ओल चिकि' को मान्यता मिलने के बाद आदिवासी लेखन का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। संताली फिल्म निर्माण से भी उनके लेखन का विस्तार हुआ है। मुंडारी और कुडुख भाषा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय काम हुआ। जॉन हॉफमैन द्वारा निर्मित 'मुंडारी इनसाइक्लोपीडिया' मुंडारी के क्षेत्र में किया गया ऐतिहासिक काम है। मेनास राम ओया द्वारा रचित आत्मकथात्मक उपन्यास 'मतु रअः कहनि' और बुदू बाबू की कविताएँ मुंडारी साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान रखती हैं। साहित्यिक दृष्टि से यूँ तो आदिवासी साहित्य का इतिहास नहीं लिखा गया है, लेकिन समय-समय पर रामदयाल मुंडा, निकोदिम केरकेट्टा, सिलास हेम्ब्रम इत्यादि मुंडारी भाषा के लेखकों ने अपने समय और परिस्थिति को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

(8) हम शिक्षा में भाषा के प्रयोग को मुख्यतः रोजगार से जोड़ कर देखते हैं। ऐसे में आदिवासी भाषाओं में शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण रोजगार की व्यवस्था भी नहीं हुई। आदिवासी भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने की दिशा में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इसके बावजूद कुडुख, मुंडारी, संताली, हो इत्यादि भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा देने का प्रयास चल रहा है। आदिवासी लेखकों द्वारा लिखित कहानी-कविताओं को प्राथमिक और उच्च विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है। रांची विश्वविद्यालय के अंतर्गत जनजातीय और क्षेत्रीय भाषा विभाग द्वारा भी झारखंड की आदिवासी भाषाओं में पढ़ाई की व्यवस्था है, लेकिन समुचित मार्गदर्शन और आर्थिक सहयोग के अभाव में वह मंजिल नहीं मिली है जहाँ उन्हें होना चाहिए। आदिवासी भाषा-साहित्य के अध्ययन की समुचित व्यवस्था होने से आदिवासी भाषाओं में लेखन को प्रोत्साहन मिलेगा। इससे विमर्श को भी बढ़ावा मिलेगा।

(9) दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन को आत्मकथाओं के द्वारा प्रस्तुत किया है। यह उनका अपना तरीका है। आदिवासी समाज का बृहद मौखिक साहित्य है। इसकी लंबी परंपरा है जो मूलतः गीतों और कथाओं के रूप में मौजूद है। मौखिक परंपरा और मौखिक शैली की वजह से आत्मकथा लेखन कम है। लेकिन पिछले तीन-चार दशकों से आदिवासी लेखन में बदलाव आ रहा है। मेनास राम ओया की रचना इसमें प्रमुख है।

(10) आदिवासी विमर्श के लिए कथा साहित्य और कविताएँ प्रमुखता से लिखी जा रही हैं। कथा साहित्य में निकोदिम केरकेट्टा, हरिराम मीणा आदि की रचनाएँ प्रमुख हैं। कविताओं में महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, जसिंता केरकेट्टा इत्यादि का नाम लिया जा सकता है।

(11) आदिवासी साहित्य का अपना अलग सौंदर्यबोध है। प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़े होने के कारण आदिवासी रचनाओं में प्रकृति सहज रूप से मौजूद है। आदिवासी रचनाकारों द्वारा रचित गीत, कविता इत्यादि में प्रेम और प्रकृति का रस प्रमुखता से मिलता है। चूंकि आदिवासी समाज में प्रेम के लिए बंदिश नहीं है, इसलिए उनकी रचनाओं में

उन्मुक्त प्रेम दिखता है। वे प्रेम को जीते हैं। गैर-आदिवासी रचनाकारों में इसका अभाव है, वे कल्पना और अनुभव का सहारा लेते हैं।

(12) आदिवासी समाज को हिंदुत्ववाद और पूंजीवाद दोनों से खतरा है। धार्मिक रूप से आदिवासी प्रकृति के पूजक हैं, जबकि हिंदू धर्म में देवी-देवताओं की बहुत बड़ी संख्या मौजूद है। एक ओर हिंदुत्ववाद आदिवासी समाज को उसके दर्शन से दूर ले जाता है, वहीं पूंजीवाद उन्हें उनकी प्रकृति से वंचित करता है। पूंजीवाद प्रकृति पूजकों की प्रकृति का लुटेरा है। जंगलों, पहाड़ों और खनिज से भरे क्षेत्रों में वास करने के कारण पूंजीवादी व्यवस्था आदिवासियों को विस्थापित करती है। औद्योगिक विकास और खनन के क्षेत्रों में आदिवासी विलुप्त हो रहे हैं। इसी वजह से उनका समाज बिखर रहा है।

पता- इग्नेस सदन, म.न.123, अमृतपुर, डाक और जिला-खूंटी 845210 (झारखंड)
मो.9798943597

बाहरी लोगों की ज्ञान मीमांसा आदिवासी पहचान को विकृत करने की रही है

प्रमोद मीणा

(1) आदिवासी समाज पारंपरिक रूप से जल-जंगल-जमीन पर निर्भर रहने वाला स्वनिर्भर समाज है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी रहे हैं जिनकी सामाजिक संरचना प्राय: मातृसत्तात्मक रही है। उनमें पुंसवादी समाजों की तरह स्त्री के नाचने-गाने और घर से बाहर स्वच्छंद विचरण करने पर रोक नहीं लगाई जाती। आदिवासी युवक-युवती बिना किसी रोक-टोक के आदिवासी उत्सवों और मेलों में नाच-गान और मौज-मस्ती के साथ भाग लेते देखे जाते हैं। आदिवासी समुदायों की अपनी समृद्ध भाषाएँ रही हैं। प्राय: उन्हें उनकी भाषाओं के आधार पर ही संबोधित किया जाता है। विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करते रहे ये आदिवासी हाल-फिलहाल तक मुख्य धारा के समाज से दूर अलग-थलग रहने वाले स्वायत्त समाज रहे हैं। आदिवासी संस्कृति प्रकृति को रौंद कर मनुष्य के अहंकारी जयघोष में यकीन नहीं करती। यही कारण है कि मुख्य धारा को भौतिक आधार पर ये पिछड़े-जाहिल दिखाई देते हैं। प्रकृति के साथ समन्वय में उनका विश्वास है किंतु विकास के पैरोकार बने लोग उन्हें आलसी और पौरुषहीन साबित करते रहते हैं।

हिंदूवादी संगठनों द्वारा इन्हें क्रमश: गिरिजन या वनवासी कहना उचित नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि गिरिजन और वनवासी संज्ञाएँ आदिवासियों के भौगोलिक अधिवास के रूप में क्रमश: पहाड़ों और वनों को ही चिह्नित करती हैं। दूसरी बात, पहाड़ों और वनों में आदिवासियों से इतर लोग भी रहते हैं। उन्हें किसी भी आधार पर आदिवासी नहीं

ठहराया जा सकता। 'आदिवासी' संज्ञा में जो स्वायत्तता और इस देश का मूल निवासी होने का भाव अंतर्निहित है, वह इन दोनों संज्ञाओं में नहीं है।

वास्तव में गैर-आदिवासी, बाहरी लोगों की ज्ञानमीमांसा ही आदिवासी पहचान को विकृत करने की रही है। औपनिवेशिक काल में विदेशी प्रभु वर्ग ने आदिवासियों को 'ट्राइबल्स' कह कर नृतत्वशास्त्र का इस्तेमाल जहाँ आदिवासियों के संदर्भ में अपने औपनिवेशिक हितों के निर्धारण हेतु किया, वहीं उत्तर-औपनिवेशिक काल में दक्षिणपंथी राजनीति उनके हिंदूकरण के माध्यम से अपने वोटों की रोटियाँ सेंकने में लगी है। चाहे विदेशी राजसत्ता हो या तथाकथित भारतीय हिंदुत्ववादी सांस्कृतिक विचारधारा, दोनों की शक्तिमीमांसा के लिए आदिवासी सिर्फ वस्तु मात्र होते हैं। दोनों के यहाँ कमोबेश नस्ल और धर्म के चश्मे से आदिवासियों को देखने की प्रवृत्ति रही है। यद्यपि एक श्रेणी के रूप में 'जनजाति' औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसा की सृष्टि है, किंतु इसकी जड़ें विदेशी साम्राज्यवाद के आगमन से कहीं ज्यादा पीछे तक फैली हुई हैं। जनजाति पद से व्यंजित मानव छवि और उसके निहितार्थ तथाकथित भारतीय सभ्य समाज द्वारा पहले से ही विशिष्ट समुदायों और समूहों के संदर्भ में इस्तेमाल होते आए हैं। पाश्चात्य नृतत्वशास्त्रियों ने औपनिवेशिक सत्ता से संचालित होकर इस पद का प्रयोग जंगलों-पहाड़ों में अलग-थलग पड़े उन लोगों को संबोधित करने के लिए किया था जो तथाकथित रूप से आदिम और बर्बर जीवन जीते हैं। श्वेत नस्ल के प्रभु वर्ग द्वारा स्वयं को सभ्य-सुशिक्षित और आदिवासियों को जंगली-जाहिल घोषित करने की यह नस्लभेदीय परंपरा भारतीय इतिहास-संस्कृति में भी साफ देखी जा सकती है। संस्कृत और हिंदू धार्मिक ग्रंथों और परंपराओं में इसी तर्ज पर सभ्य मनुष्यों ने गिरि-कंदरा निवासी आदिम जनों का वर्णन किया गया है। यहाँ आदिवासियों के लिए आए शब्द किसी भी तरह से नस्लीय भेदभाव और पूर्वाग्रहों से कमतर नहीं हैं, जैसे- दस्यु, दैत्य, राक्षस और निषाद आदि। इस प्रकार आदिवासियों को लेकर प्राच्यवादी औपनिवेशिक सत्ता और भारत की धार्मिक सत्ता, दोनों एक ही धरातल पर खड़ी हैं।

जहाँ गांधी जी पश्चिमोत्तर हिंदुस्तान के मुस्लिम कबीलों को मुस्लिम जनजातियों के नाम से संबोधित करते हैं, वहीं हिंदुस्तान की शेष गैर-मुस्लिम जनजातियों को आदिवासी कहते हैं। जनजाति और आदिवासी का जो विभेद गांधी जी के भाषणों और लेखनों में मिलता है, उसके पीछे मूलत: मुस्लिम और हिंदू धर्म के आधार पर दोनों के बीच पृथकता को स्वीकृति देना था, अन्यथा जनजाति या आदिवासी की स्वायत्त धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान पर गांधी जी प्राय: मौन ही रहते हैं। वे स्वायत्त पहचान का समर्थन नहीं करते। दूसरे, तत्कालीन अंग्रेज सरकार सीमावर्ती आदिवासी समुदायों को शेष भारतवासियों से अलगाने के लिए जनजाति पद से संबोधित करती थी। अत: इस संदर्भ में भी गांधी जी पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के मुस्लिम आदिवासियों को मुस्लिम जनजाति कहते हैं। इन मुस्लिम जनजातियों के संदर्भ में अगर वे आदिवासी पद का प्रयोग करते तो यह संदेश जाता कि मुस्लिम भी इस देश के मूल निवासी हैं, जबकि व्यक्ति अगर अपने राष्ट्र-राज्य का आदर्श राम राज्य मानता हो, वह कैसे मुस्लिमों को इस राम राज्य का आदि निवासी कह सकता था। गांधी जी आदिवासी समुदायों के लिए आदिवासी पद का प्रयोग करते हैं, वे उन्हें मूलत: हिंदू मान कर ही इस पद का प्रयोग कर रहे होते हैं। लेकिन क्या आदिवासी को हिंदू कहा जा सकता है? स्पष्ट है नहीं।

(2) संविधान में आदिवासियों के लिए 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग न करके अनुसूचित जनजाति (शेड्यूल ट्राइब) पद का प्रयोग किया गया है। 'आदिवासी' के स्थान पर 'शेड्यूल्ड ट्राइब' के प्रयोग के पीछे मुझे लगता है कि दो दृष्टियाँ कार्यरत रही हैं। एक दृष्टि तो अंग्रेजों द्वारा दी गई हर चीज को श्रेष्ठ मान उनका अनुकरण करने वाली औपनिवेशिक दृष्टि है। आजाद भारत के अंग्रेजीदां प्रशासक ट्राइब शब्द में निहित आदिमता और असभ्यता के चश्मे से

ही आदिवासी समाजों को देखते रहे, क्योंकि विदेशी प्रभु वर्ग की तरह यह देशी प्रभु वर्ग भी स्वयं को श्रेष्ठ मानने की ग्रंथि से पीड़ित था और आदिवासियों को ट्राइब संबोधित करके उन्हें सभ्य बनाने की जिस परियोजना में अंग्रेजों का विश्वास था, उसी का अनुकरण यह नया प्रभु वर्ग भी करने लगा था।

आदिवासी समुदायों की पहचान के रूप में उन्हें 'आदिवासी' संज्ञा से संबोधित न करने के पीछे जो एक दूसरी दृष्टि काम करती है, वह आर्य राष्ट्रवाद के गर्भ से निकली है। अपने आप को आर्य कहने वाले सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के ये प्रवक्ता अगर आदिवासी को आदिवासी कहने लगें तो इनका यह तथाकथित राष्ट्रवाद सिर के बल गिर जाएगा। आदिवासी को इस देश का मूल निवासी स्वीकार कर लेने पर इनकी मुस्लिम विरोधी सांप्रदायिक राजनीति की भी जड़ें उखड़ जाएंगी।

पूर्वोत्तर के ईसाई आदिवासी चर्च और ईसाई धर्म के द्वारा पैदा किए गए अलगाव के भाव के चलते देश के दूसरे आदिवासियों से स्वयं को विशिष्ट साबित करते हैं और स्वयं के लिए आदिवासी शब्द का प्रयोग न करके अंग्रेजों द्वारा दी गई संज्ञा 'ट्राइब' का प्रयोग उचित मानते हैं।

(3) भारत की जो दस करोड़ के लगभग आदिवासी आबादी है, उसके हितों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में पांचवीं और छठवीं अनुसूचियों का प्रावधान किया गया है। पांचवीं अनुसूची जहाँ आदिवासी बहुलता वाले नौ राज्यों में लागू होती है, वहीं छठवीं अनुसूची पूर्वोत्तर के अलग-थलग पड़े राज्यों को अपने क्षेत्राधिकार में लेती है। छठवीं अनुसूची में आदिवासियों की स्वायत्तता और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके पुश्तैनी अधिकारों को विशेष मान्यता दी गई है। मध्य भारत के आदिवासी भी पिछले कुछ वर्षों से पूर्वोत्तर की तर्ज पर छठवीं अनुसूची को अपने यहाँ लागू करने की बात कर रहे हैं, क्योंकि पांचवीं अनुसूची को कभी आदिवासी बहुलता वाले राज्यों में लागू नहीं किया गया। झारखंड, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के प्रबुद्ध आदिवासी बुद्धिजीवी और नेता आज स्वयं को ठगा-सा महसूस कर रहे हैं। छठवीं अनुसूची से वंचित रखे जाने की हताशा में कुछ आदिवासी अंबेडकर पर भी यह आरोप लगाने लगे हैं कि संविधान में उन्होंने मध्य भारत के आदिवासी समाज के हितों पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया।

26 अगस्त, 2014 की जनसत्ता में 'ओझल आदिवासी समाज' शीर्षक लेख में लेखक विनोद कुमार ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि अंबेडकर ने जाति उन्मूलन वाले अपने प्रसिद्ध और बहुचर्चित आलेख में एक नहीं, कई जगह आदिवासियों को जंगली और असभ्य कहा है। आधुनिक सभ्यता में दलितों की मुक्ति देखने वाले अंबेडकर गैर-आदिवासी होने के कारण ही संभवतः आदिवासी सभ्यता-संस्कृति की समझ नहीं रखते थे। शायद इसीलिए वे जंगली-असभ्य कहे गए। अंबेडकर पर यह आक्षेप भी किया जाता है कि मध्य भारत के आदिवासियों में विद्यमान किंचित हिंदुत्ववादी रिवाजों और मान्यताओं के कारण वे उन्हें सच्चा आदिवासी नहीं मानते थे। उन्होंने सचेतन रूप से छठवीं अनुसूची से उन्हें पृथक रखा। इस आरोप में कितनी सच्चाई है और कितना अंबेडकर-विरोधी दक्षिणपंथी राजनीति का हाथ है, इसे समझने के लिए छठवीं अनुसूची पर हुई संविधान सभा की बहस से गुजरना होगा।

पूर्वोत्तर के आदिवासी क्षेत्रों के लिए समुचित संवैधानिक प्रावधानों की जरूरत संविधान सभा में महसूस की गई, ताकि एक ओर जहाँ इस क्षेत्र के आदिवासियों की स्वायत्तता की इच्छा और मूलभूत मांगों को संतुष्ट किया जा सके, दूसरी ओर राष्ट्र की मुख्य धारा में उनका आत्मसातीकरण हो सके।

27 फरवरी, 1947 को गठित चार सदस्यीय पूर्वोत्तर सीमांत आदिवासी क्षेत्र उपसमिति के अध्यक्ष निचोल रॉय थे। 28 जुलाई, 1947 को इस उपसमिति ने सलाहकार समिति के अध्यक्ष वल्लभ भाई पटेल को अपनी रपट सौंपी। उपसमिति की इस रपट को सलाहकार समिति द्वारा किए गए दो संशोधनों के साथ 4 मार्च, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष राजेंद्र प्रसाद के समक्ष प्रस्तुत किया गया। संविधान

मसौदा समिति ने पूर्वोत्तर के आदिवासियों के लिए उपसमिति द्वारा सुझाए गए विशेष संवैधानिक प्रावधानों और तद्विषयक विभिन्न संशोधनों को छठवीं अनुसूची में रखा। इस अनुसूची पर संविधान सभा में 5, 6 और 7 सितंबर, 1949 को चर्चा हुई।

इस बहस में हिस्सा लेते हुए संविधान सभा में अंबेडकर ने पूर्वोत्तर के आदिवासियों की स्वायत्त और विशिष्ट सभ्यता, संस्कृति और समाज व्यवस्था का हवाला देते हुए छठवीं अनुसूची का समर्थन किया था। इसके तहत पूर्वोत्तर के आदिवासियों को दी जाने वाली प्रशासन और राजस्व आदि विषयक विशेष छूटों और सुविधाओं पर अपनी सहमति दर्ज़ कराते हुए अंबेडकर ने कहा था कि असम के आदिवासी अन्य क्षेत्रों के आदिवासियों से भिन्न हैं। दूसरे आदिवासियों की तुलना में उनका हिंदूकरण बहुत कम हुआ है। अपने चारों ओर जिन गैर-आदिवासियों से वे घिरे हैं, उनकी सभ्यता-संस्कृति को उन्होंने अंगीकृत नहीं किया है। अंबेडकर का कहना था कि उनकी जड़ें आज भी उनकी अपनी सभ्यता-संस्कृति में गहराई से समाई हुई हैं। अपने आसपास के हिंदुओं की प्रथाओं और रीतिरिवाजों से वे अछूते हैं। अंबेडकर ने पूर्वोत्तर के इन आदिवासियों में प्रचलित विवाह और उत्तराधिकार के नियमों को हिंदुओं के नियमों से बिल्कुल भिन्न बताया था। उन्होंने अपनी बहस में असम के आदिवासियों की स्थिति को संयुक्त राज्य अमेरिका के रेड इंडियन्स के समकक्ष बताया जो उस देश के अंदर रहते हुए भी स्वयं में एक गणतंत्र जैसे हैं। उन्हें अमेरिका में पृथक और स्वतंत्र लोगों की तरह देखा जाता है।

जिस तरह अमेरिका में रेड इंडियन्स लोगों के लिए प्रशासनिक प्रावधान हैं, उसी तर्ज पर अंबेडकर ने असम के आदिवासियों के लिए क्षेत्रीय और जिला परिषदों की स्थापना पर अपनी अनुशंसा दी थी। इस प्रकार छठवीं अनुसूची पर बहस में हिस्सा लेते हुए अंबेडकर ने पूर्वोत्तर के आदिवासियों की सभ्यता-संस्कृति के गैर-हिंदू चरित्र को विषेष रूप से रेखांकित करते हुए उनके पक्ष में छठवीं अनुसूची पर अपनी सैद्धांतिक सहमति व्यक्त की थी।

इस सहमति का निहितार्थ यह भी हो सकता है कि अंबेडकर मध्य भारत के आदिवासियों के हिंदूकरण के चलते उन्हें छठवीं अनुसूची के लिए उपयुक्त नहीं पाते थे। मध्य भारत के आदिवासियों के विरुद्ध अंबेडकर के निष्कर्ष के खतरे हमें समझने होंगे।

दक्षिणपंथी हिंदुत्ववादी दुष्प्रचार आदिवासियों को अंबेडकर से दूर ले जाने के लिए कोई अवसर खोना नहीं चाहता। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंबेडकर आदिवासियों के हिंदूकरण को लेकर चिंतित थे, लेकिन यह कहना भी अनुचित है कि वे मध्य भारत के तथाकथित हिंदुत्व-प्रभावित आदिवासियों को संवैधानिक संरक्षण देने के खिलाफ थे। जहाँ तक छठवीं अनुसूची की बात है, संविधान सभा में मध्य भारत के आदिवासियों के संदर्भ में इस अनुसूची पर चर्चा ही नहीं हुई थी। कारण यह है कि इस अनुसूची का प्रावधान तो पूर्वोत्तर के आदिवासियों में राजनैतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से जो अलगाव का भाव पैदा हो रहा था, उसके समाधान के लिए किया गया था। मध्य भारत के आदिवासियों में इस प्रकार के अलगाव और असंतोष की समस्या तत्कालीन परिस्थितियों में न थी। अतः संविधान सभा में किसी ने मध्य भारत के आदिवासियों के लिए छठवीं अनुसूची की मांग न की थी। यहाँ तक कि मध्य भारत के आदिवासी प्रतिनिधि जयपाल सिंह मुंडा ने भी इस बहस में पूर्वोत्तर के आदिवासियों की स्वायत्तता का समर्थन करते हुए कहा था कि सैन्य ताकत के बल पर उन्हें भारत में मिलाना समस्या का समाधान नहीं होगा, क्योंकि इस प्रकार की ताकत का इस्तेमाल करने से अलगाव का भाव ही वहाँ के आदिवासियों में और पनपेगा। उन्होंने मांग रखी कि आदिवासियों के स्वाभिमान का सम्मान किया जाना चाहिए। लेकिन जयपाल सिंह ने मध्य भारत के आदिवासियों के लिए इस प्रकार की छठवीं अनुसूची की बात कहीं नहीं उठाई।

संविधान निर्माण के समय चाहे पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समाजों के भौगोलिक-धार्मिक-राजनीतिक

प्रमोद मीणा
आदिवासी विमर्शकार और 'मूक आवाज़' पत्रिका के संपादक। दलित-आदिवासी सिनेमा पर एक पुस्तक का संपादन।

अलगाव के मद्देनजर उनके लिए छठवीं अनुसूची का प्रावधान रखा गया हो और मध्य भारत के आदिवासियों में इस प्रकार का अलगाव न पाकर उनके लिए पांचवीं अनुसूची से ही काम चलाया गया हो, किंतु देश की मुख्य धारा ने मध्य भारत के आदिवासियों को कभी बराबरी का दर्जा दिया ही नहीं। उनके प्राकृतिक संसाधनों को देशहित के नाम पर आंतरिक उपनिवेश बना कर लूटा गया। अत: अब मध्य भारत के आदिवासी समाजों की अस्तित्व रक्षा के लिए यहाँ भी छठवीं अनुसूची लागू करना जरूरी हो गया है। जहाँ तक इन अनुसूचियों के बहाने देश के आदिवासी समाजों के बीच होने वाले संभावित एका को रोकने की बात है तो दिकू शासक वर्ग क्यों चाहेगा कि आदिवासी समुदाय अपने शोषण के खिलाफ परस्पर एकजुट हों।

(4) जयपाल सिंह, वैरियर एल्विन और जवाहर लाल नेहरू आदि के कारण आदिवासियों की सांस्कृतिक विशिष्टता के संरक्षण के लिए संविधान में अपेक्षित प्रावधान किए गए थे। किंतु जिन लोगों के कंधों पर कानून के क्रियान्वयन और कानून की रक्षा की जिम्मेदारी होती है, उनके आदिवासी-विरोधी हिंदुत्ववादी पूर्वग्रहों के कारण शुरू से आदिवासियों के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का अपेक्षित संरक्षण नहीं हो पाया। यद्यपि अनुच्छेद 25 न सिर्फ भारतीय नागरिकों को अपितु यहाँ रहने वाले सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का बराबर अधिकार देता है, किंतु वैधानिक दस्तावेजों में आज भी आदिवासियों के अपने 'सरना' धर्म को मान्यता नहीं दी गई है। जनगणना प्रपत्र में भी उन्हें आदिवासी धर्म के स्थान पर गैर-आदिवासी धर्मों में से ही किसी एक का चयन करना पड़ता है। धर्म की स्वतंत्रता की ही तरह अनुच्छेद 29 के तहत भारतीय नागरिकों को संस्कृति-विषयक मूल अधिकार प्राप्त हैं। यह अनुच्छेद भारत में कहीं भी निवास करने वाले नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को 'जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है', उसे बचाए रखने के अधिकार का आश्वासन देता है। लेकिन यहाँ भी गैर-आदिवासी दिकू लोगों के आक्रामक प्रचार तंत्र के सामने आदिवासी संस्कृति अपनी पहचान खोती जाने को अभिशप्त है। कहीं आदिवासियों के हिंदूकरण की मुहिम छिड़ी है, तो कहीं आदिवासियों को सभ्य-सुसंस्कृत बनाने के नाम पर उनका ईसाईकरण चल रहा है।

उपभोग-केंद्रित सस्ती बाजारू संस्कृति ने आदिवासी संस्कृति की स्वायत्तता और सौंदर्य को खतरे में डाल दिया है। स्त्री-विरोधी दिकू संस्कृति की पुंसवादी कुप्रथाएँ आदिवासियों के मातृसत्तात्मक समाजों को भी दूषित करने लगी हैं। इस बाबत आदिवासियों के सांस्कृतिक मूल्यों का हस्तांतरण नई पीढ़ी को इस तरह से सुनिश्चित किया जाना अपेक्षित है कि जहाँ दिकुओं की भेदभावमूल संस्कृति की छूत से आदिवासी संस्कृति को बचाया जा सके, वहीं बाजार की शक्तियों द्वारा आदिवासी संस्कृति के पण्यीकरण की कुचेष्टाओं पर भी लगाम लग सके।

(5) आदिवासी साहित्य के विमर्शकारों के लिए आदिवासी विमर्श अपने जल-जंगल-जमीन को बचाने की और प्रकारांतर से इस देश और पूरी मानव सभ्यता को बचाने की जद्दोजहद है। आदिवासी विमर्श अन्य विमर्शों की तरह सत्ता में हिस्सेदारी के लिए चलाया जाने वाला विमर्श नहीं है। यह तो मनुष्य-केंद्रित सत्ता विमर्शों को खारिज करने वाला विमर्श है जो प्रकृति में सभी के सह-अस्तित्व में यकीन रखता है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विमर्शों के केंद्र में आने से पूर्ववर्ती केंद्र से ताल्लुक रखने वाले लोग आदिवासी विमर्श में अपने अस्तित्व के लिए

संभावनाएँ भी तलाश रहे हैं। आदिवासियों की अछूती अपरिचित दुनिया मुख्य धारा के साहित्यकारों के लिए रूमानियत का हेतु भी साबित हो रही है। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श में पैदा स्वानुभूति और सहानुभूति के सवालों से कतरा कर भी कुछ साहित्यकार आदिवासी विमर्श की ओर रुख करते देखे जा सकते हैं।

(6) आदिवासी साहित्यकार मन बहलाव या सत्ता में भागीदारी का लक्ष्य रख कर नहीं लिखता है। आदिवासी विमर्श में शुरू से आदिवासी समुदायों के अस्तित्व से जुड़े सवाल और मुद्दे केंद्र में रहे हैं। यह साहित्य जल, जंगल और जमीन की रक्षा के लिए जारी संघर्षों को लेकर चल रहा है। ऐसे में स्वाभाविक है कि आदिवासी विमर्शकार पूंजीवादी लूट और मुनाफा वृत्ति का विरोध करे। इसी क्रम में हमें यहाँ स्वत:स्फूर्त साम्यवाद की ध्वनि भी सुनाई देती है। लेकिन आदिवासी जीवन का सहज उल्लास और उमंग तमाम संघर्षों के बीच भी देखा जा सकता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान और स्वाधीनता के पश्चात राष्ट्र निर्माण से प्रेरित साहित्यकारों के यहाँ चित्रित आदिवासी समाज राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम मात्र बन कर आता है, वहीं अब आदिवासी विमर्शकार यह सवाल भी उठाने लगा है कि इस राष्ट्र का क्या अपने आदिवासी समुदायों के प्रति कोई दायित्व नहीं बनता।

(7) आदिवासी साहित्य इतिहास में हाशिए पर पड़े आदिवासियों को उनका वाजिब स्थान दिलाने की एक मुहिम है। महादेव टोप्पो अपनी कविता 'रचने होंगे ग्रंथ' में अपने समाज को, आदिवासियों को संबोधित करते हुए चेताते हैं कि अगर उन्हें दिकुओं के इतिहास ग्रंथों में बंदरों-भालुओं के रूप में दर्ज होते रहने की अमानवीय शृंखला तोड़नी है तो आगे बढ़ कर प्रभुत्व और मातहती के दिकू खेल के नियमों को ही उलट देना होगा। खुद अपने आदमी होने की परिभाषा गढ़ कर रचने होंगे स्वयं के ग्रंथ ताकि अपने साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय की क्षतिपूर्ति हो सके- 'उनके सिद्धांतों, स्थापनाओं, मंतव्यों के विरुद्ध/उनके वैचारिक हमलों के विरुद्ध/रचने होंगे/ स्वयं ग्रंथ।'

कवि ने इतिहास की गलती दुरुस्त करने के लिए खुद इतिहास लेखन की बात कही है। जहाँ तक आदिवासी इतिहास दृष्टि की बात है, आदिवासी साहित्यकार दिकू इतिहासकारों की तरह भूमि के टुकड़ों के लिए लड़ने का इतिहास नहीं लिखता। इतिहास के उन साम्राज्यवादी निरंकुश तानाशाह नायकों को आदिवासी साहित्य नायक नहीं मानता जो जंगलों-पहाड़ों की कठिनाइयों से जूझ कर जमीन को खेती योग्य बनाने वालों से ही उनकी मेहनत छीन लेते थे। उत्पादक श्रम का यही सौंदर्य-लगाव आदिवासियों के घरों-खेतों को उनके गीतों का अविभाज्य अंग बना देता है। अपनी जमीन को लेकर आदिवासी का यह प्यार थोथे आक्रामक राष्ट्रवादी उबाल से कहीं सच्चा है।

(8) दलितों और सवर्णों की भाषा समान होती है। हाँ, शैलीगत भेद अवश्य मिलता है, जैसे-सवर्ण लोग संस्कृतनिष्ठ भाषा बोलते हैं जबकि दलितों को चूंकि संस्कृत पढ़ने का अधिकार ही नहीं होता था, अतः उनकी भाषा सवर्णों की तरह सभ्यता-संस्कृति का रामनामी चोला पहने नहीं होती। दलितों को मनुवादी ताकतों द्वारा जी-हजूरी की भाषा बोलने को बाध्य किया जाता रहा है। जहाँ तक आदिवासियों की बात है, अपनी संस्कृति की ही तरह उनकी अपनी निजी भाषाएँ रही हैं। यह भी ध्यातव्य है कि भाषाई राष्ट्रवाद में जो भाषाई संकीर्णता दिखती है, उससे भी आदिवासी समुदाय मुक्त है। यही कारण है कि अपनी मूल आदिवासी भाषाओं के साथ-साथ आदिवासी साहित्यकार हिंदी और अंग्रेजी में भी आवश्यकता के अनुसार लिखते पाए जाते हैं।

झारखंड में लगभग तीस आदिवासी समुदाय हैं जिनकी अपनी-अपनी भाषा-बोलियाँ हैं। इनमें से छह को अब व्यापक स्वीकृति भी मिल चुकी है - संताली, हो, मुंडा, खड़िया, कुडुख और मालतो। इन भाषाओं में लिखित साहित्य भी आज मिलता है। इनमें से कुडुख और मालतो द्रविड़ परिवार अंतर्गत

आती हैं जबकि शेष चार आस्ट्रिक परिवार अंतर्गत।

वास्तव में गैर-आदिवासी आर्यों और द्रविड़ों के संपर्क में आने पर व्यावहारिक संप्रेषण की आवश्यकता और संस्कृतीकरण के कारण आर्य और द्रविड़ परिवार की गैर-आदिवासी भाषाओं और बोलियों का प्रचलन भी आदिवासियों में हुआ है और हो रहा है। इसके कारण, कई जगह द्विभाषिकता की स्थिति है। इसी क्रम में कुछ मिश्रित संपर्क भाषाओं का भी जन्म हुआ है, जैसे- सदानी, जेलियांग्रोंग जेमी, लियांगमेई, चकेसैंग आदि।

हर आदिवासी भाषा के पास अपनी समृद्ध साहित्यिक विरासत रही है। हाँ, लिपि के स्तर पर ज्यादातर आदिवासी भाषाएँ मौखिक परंपरा में आती हैं। लेकिन यही आदिवासी भाषा - साहित्य की जीवंतता है। इनमें बोलने वाले की अस्मिता झलकती है।

आठवीं अनुसूची की भाषाओं में बोडो और संताली को छोड़ कर कोई अन्य आदिवासी भाषा नहीं है। मुख्य धारा की भाषाओं की वर्चस्ववादी नीति और शिक्षा के माध्यम के रूप में आदिवासी भाषाओं की उपेक्षा ने आज लगभग सभी आदिवासी भाषाओं के सामने अस्तित्व रक्षा का संकट पैदा कर दिया है। रोजगार और शिक्षा का माध्यम न बन पाने के कारण आदिवासी समाज अपनी मातृभाषाओं-बोलियों को लेकर हीनता के शिकार देखे जा सकते हैं। पढ़-लिख जाने पर शहरी आदिवासी लोगों में अपनी आदिवासी भाषाओं के प्रति हिकारत का भाव देखा जाता है। अपने प्राकृतिक अधिवासों से विस्थापित किए जा रहे आदिवासी भी अपनी भाषाओं को बचाए रखने की चुनौती झेल रहे हैं। वास्तव में भाषा सिर्फ संप्रेषण और रोजगार का विषय नहीं है। हर भाषा के साथ उसकी अपनी संस्कृति-सभ्यता जुड़ी होती है। अगर आदिवासी भाषाएँ खत्म हो गईं तो आदिवासी भी नहीं बचेंगे। हमें अपने देश की इन भाषाई धरोहरों को बचाने के लिए संवेदनशीलता का परिचय देना चाहिए। आदिवासी विमर्श में भाषा का सवाल, शिक्षा की माध्यम भाषा का सवाल भी प्रमुखता पा रहा है।

(9) दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की तरह आत्मकथा के लिए आदिवासी विमर्श में कोई विशेष अवकाश नहीं दिखाई देता, क्योंकि आत्मकथा का व्यक्ति-केंद्रित स्वरूप आदिवासी जीवन की सामूहिकता से मेल नहीं खा सकता।

(10) आदिवासी समाज सामूहिकता में विश्वास करता है और आदिवासी दर्शन मनुष्य केंद्रित न होकर प्रकृति केंद्रित है, अत: आदिवासी समाज के अपने मिजाज के अनुकूल वह विधा नहीं हो सकती जिसका जन्म व्यक्ति-केंद्रित आधुनिकता के गर्भ से हुआ है। तो क्या हम आदिम समाजों में प्रचलित लोक साहित्य को आदिवासी साहित्य की प्रकृति के अनुकूल मानें? लोक साहित्य में निहित धार्मिकता के कारण वंदना टेटे आदिवासियों के लोक साहित्य को पुरखा साहित्य कहने के पक्ष में हैं। जहाँ तक आदिवासी विमर्श की बात है आदिवासी समाज से आने वाले साहित्यकार विकल्प के अभाव में साहित्य की आधुनिक विधाओं को अपना जरूर रहे हैं किंतु आदिवासी साहित्य को अभी स्वयं की प्रकृति के अनुकूल विधाओं की तलाश है। आदिवासी साहित्यकार जिस आधुनिक विधा में ज्यादा लिख रहे हैं, वह है कविता। सच कहें तो आदिवासी कविता ने पाठकहीन होती हिंदी कविता को एक नया जीवन देने का काम किया है। रामदयाल मुंडा,

महादेव टोप्पो, वहरु सोणवणे, हरिराम मीणा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे के साथ-साथ नई पीढ़ी में अनुज लुगुन और जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ चर्चा में हैं।

(11) आदिवासी साहित्य का सौंदर्य उसकी सामूहिकता और सहजता में है। कर्ता होने का अहम न पालने में है। आदिवासी दर्शन प्रकृति केंद्रित है, मनुष्य केंद्रित नहीं। गैर-आदिवासी समाजों में मनुष्य की श्रेष्ठता में यकीन किया जाता है और किसी मूर्त-अमूर्त ईश्वर को सृष्टि का नियंता और मालिक बताया जाता है। लेकिन आदिवासी समाज इस धरती को मनुष्य मात्र की बपौती नहीं मानता। उसके अनुसार यह धरती सभी की है, मनुष्य मात्र की नहीं। कोई ईश्वर इसका खुदा नहीं है। इन्सान भी दूसरे जीव-जंतुओं में से एक है। आदिवासी समुदाय जल-जंगल-पहाड़ की अपनी स्वायत्त व्यवस्था में यकीन रखते हैं। आदिवासी प्रकृति को अपना दुश्मन नहीं मानता। वह प्रकृति पर विजय का दंभ नहीं भरता। आदिवासी समाज सहजीविता, सह अस्तित्व और सामूहिकता में जीता है। गैर-आदिवासी समाज योग्यतम की उत्तरजीविता अर्थात प्रतिस्पर्धा में यकीन रखता है। आदिवासियों के बीच धर्मों की होड़ भी नहीं होती है।

आदिवासियों में न जातिगत और न वर्णगत स्तरभेद है और न ही रंगभेद और अस्पृश्यता। लैंगिक भेदभाव और हिंसा के लिए भी आदिवासियों के जीवन में कोई स्पेस नहीं होता। सत्ता जैसी कोई अवधारणा आदिवासी समुदायों में विकसित नहीं हो पाई है। इसीलिए गैर-आदिवासियों की तरह आदिवासियों ने कभी राष्ट्र की दीवारों और सीमाओं में धरती को नहीं बांटा। वैयक्तिक उपभोग-केंद्रित अर्थव्यवस्था के विपरीत आदिवासी अर्थव्यवस्था संसाधनों के सामूहिक इस्तेमाल में यकीन रखती है और उपभोग की जगह आधारभूत जरूरत पर बल दिया जाता है। प्रकृति के साथ समन्वयात्मक उत्सवधर्मिता आदिवासी समुदायों की आम विशेषता है।

जहाँ गैर-आदिवासी दुनिया वर्गीय आधार पर अमीर और गरीब के खांचों में बँटी हुई है और संसार भर के संसाधनों पर मुट्ठी भर ताकतवर लोगों का कब्जा है, वहीं आदिवासी समाज में समतामूलक दर्शन में विश्वास किया जाता है। मुद्रा जैसी अवधारणा और बाजारवाद से यह समाज मूलत: दूर रहा है। यही कारण है कि आदिवासी समाजों में आपको लालच और सब कुछ को हड़प जाने की भूख नहीं मिलेगी। संपत्ति के झगड़े नहीं मिलेंगे। प्राकृतिक वस्तुओं का दोहन करके अधिकाधिक उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करना गैर-आदिवासी समाजों में चाहे विकास माना जाता हो, चाहे इसे प्रगति का पर्याय माना जाता हो किंतु आदिवासी विकास की ऐसी उपभोग-केंद्रित अवधारणा में यकीन नहीं रखते। गैर-आदिवासी समाज सभ्यता और विकास का चाहे जितना दंभ भरते हों, उनके यहाँ सत्य, अहिंसा और शांति की तलाश आज तक पूरी नहीं हो पाई है और न कभी हो पाएगी, क्योंकि गैर-आदिवासी दर्शनों के मूल में ही विषमता की स्वीकृति है, मनुष्य की श्रेष्ठता का अहंकार है। विकास का कोई भी गैर-आदिवासी मॉडल भूख, गरीबी और असमानता के खात्मे का, हिंसा पर शांति की स्थापना का दावा ईमानदारी के साथ नहीं कर सकता। औद्योगिक उत्पादन और मनुष्य-केंद्रित सत्ता के मद और उपभोग की अंधी दौड़ में पर्यावरण असंतुलन की भयावह स्थिति आज पैदा हो गई है। धरती खत्म होने के कगार पर जा पहुँची है। अपने कर्ता होने का अहं पाले बैठे मनुष्य को याद रखना चाहिए कि जब धरती ही नहीं रहेगी तो उसका अस्तित्व भी नहीं बचेगा। व्यक्ति को उपभोक्ता बना देने वाली अर्थव्यवस्था से हमें आज पूछना चाहिए कि हमारी भावी पीढ़ियों और मानवेतर प्रकृति के प्रति क्या उसका कोई दायित्व नहीं है। अस्तु, नष्ट होती धरती और खत्म होते जीवन को बचाने का एकमात्र रास्ता है सहजीविता-सामूहिकता वाला आदिवासी दर्शन। नैसर्गिक प्रेम, अहिंसा, शांति, सद्भाव और सत्य ही आदिवासी आदर्श हैं। यह बात अलग है कि गैर-आदिवासी तथाकथित मुख्य धारा की छूत आज इन्हें भी लगती जा रही है।

(12) आदिवासी समाज के सामने आसन्न खतरे

की बात है तो जहाँ हिंदूकरण और ईसाईकरण, दोनों से आदिवासी समाज अपनी वास्तविक पहचान खोता जा रहा है, वहीं पूंजीवाद के कारण आज आदिवासी समुदाय अपने प्राकृतिक अधिवासों से विस्थापित हो कर कंक्रीट के जंगलों में गुम होने को अभिशप्त है। आदिवासी समाज समतामूलक समाज रहा है।

आदिवासियों को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की मुहिम छेड़ बैठे लोग भूल जाते हैं कि आदिवासियों की अपनी निजी संस्कृति–सभ्यता–धर्म है। दलितों की तुलना में आदिवासियों को अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं पर गर्व भी है। ये आधुनिक उखड़ी हुई जड़विहीन शहरी संस्कृति का प्रतिरोध करते हैं। दलित अपनी सांस्कृतिक पहचान यथासंभव मिटा देना चाहता है, क्योंकि दलित पर यह सांस्कृतिक बोझ सवर्णों ने लादा है, एक दलित की मुक्ति इसी में है कि सवर्णवादी–सामंती संस्कृति के जुए को उतार फेंके। वहीं आदिवासी अपनी अस्मिता बचाने के लिए प्राणपण से संघर्षरत रहता है। दिकू व्यापारियों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में बाजारू सिनेमाई संस्कृति का विपणन किया जाता है और भोले–भाले आदिवासियों में सस्ती उपभोक्तावादी वस्तुओं के इस्तेमाल की लत डाली जाती है। अगर आदिवासी आज अपनी संस्कृति को भूमंडलीकरण के हमलों से नहीं बचा पाया, तो उसकी निजी अस्मिता ही समाप्त हो जाएगी।

हिंदी विभाग, स्कूल ऑफ ह्यूमेनिटीज एंड लैंग्युएज, महात्मा गांधी सेंट्रल यूनिवर्सिटी, बिहार, जिला स्कूल कैम्पस, मोतीहारी–845401 मो.7320920958

व्यापक आदिवासी साहित्य अभी भी प्रकाश में नहीं आया है

सुनील कुमार 'सुमन'

(1) आदिवासी समाज अपनी अस्मिता, अपनी पहचान, अपने प्राकृतिक जीवन मूल्यों के कारण जाना जाता है। ये सब निर्मित होते हैं उसकी मातृभाषा, संस्कृति और उसके पूरे परिवेश से। ये गैर–आदिवासी समाज में नहीं पाए जाते। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'आदिवासी' होने की जो शर्तें तय की हैं, उनमें भाषा और संस्कृति सबसे अहम हैं। इन्हीं से 'आदिवासियत' का दर्शन तय होता है। इन्हीं से आदिवासी समाज को परिभाषित किया जा सकता है। संविधान में इन्हें 'जनजाति' कहे जाने के अपने तकनीकी कारण हो सकते हैं क्योंकि संविधान निर्माण के समय एक–एक बिंदु पर बहस हुई थी, फिर निर्णय लिया गया था। इसके बावजूद कुछ निर्णय कई तरह के दबाव और अन्य कारणों के चलते भी लिए गए थे।

(2) जिन्हें 'जनजाति' माना गया था, उन्हें लेकर कई असंगतियाँ थीं, जो आज भी मौजूद हैं। हिमाचल और उत्तराखंड जैसे प्रदेशों के क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले प्रायः सभी जाति–समुदायों के लोगों को इस श्रेणी में रख दिया गया। नतीजा यह है कि उन इलाकों के सवर्णों, 'जनजाति' आरक्षण का आज भी सबसे ज्यादा फायदा ले रहे हैं। वे आदिवासियत से कोसों दूर हैं। कुछ प्रदेशों के कतिपय समुदाय आदिवासी होने की शर्तें पूरा नहीं करते लेकिन वे सबसे ज्यादा इसका संवैधानिक लाभ लेते हैं। संविधान में 'जनजाति' की जगह 'आदिवासी' शब्द मिल जाता तो भी इस तरह की कई परेशानियाँ बनी रहतीं, जो आज मौजूद हैं। देश के अलग–अलग आदिवासी क्षेत्रों की अपनी–अपनी दिक्कतें रही हैं। यह सब एक पेचीदा और संवेदनशील मामला है, जिसका हल पहचानमूलक विशेषण नहीं है। इस सवाल को अब आज की परिस्थितियों में देखना–समझना पड़ेगा।

(3) इस प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न यह बनता है कि क्या पांचवीं–छठी अनुसूची में जो संवैधानिक प्रावधान दिए गए हैं, उन्हें कभी इस देश में लागू किया गया? इसका उत्तर नकारात्मक होगा। दिलचस्प यह है कि जिस झारखंड में एक आदिवासी महिला

सुनील कुमार 'सुमन'
युवा आदिवासी लेखक, चंतक और एक्टिविस्ट। हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रोफेसर और कोलकाता केंद्र के प्रभारी।

राज्यपाल हैं, वहाँ भी इन अनुसूचियों की धज्जियाँ उड़ रही हैं। देश का शायद ही कोई आदिवासी क्षेत्र हो, जहाँ ये संवैधानिक अधिकार आदिवासियों को जमीन पर मिलते दिखे हों, फिर बाकी बहस और सवालों का क्या मतलब रह जाता है! आदिवासियों को आज सरकार ही सुनियोजित तरीके से खत्म कर रही है। ब्राह्मणवादी शिक्षा व्यवस्था में डिग्री और नौकरी लेकर आदिवासी खुद भी अपनी मूल जड़ों से तेजी से अलग होते जा रहे हैं। ईसाई बनाम गैर-ईसाई आदिवासी का झगड़ा मनुवादियों के प्रयास से तेज गति पकड़ती जा रही है। ऐसे में बेचारी इन अनुसूचियों को आदिवासी विभाजन का कारण मानना उचित नहीं होगा। पहले इन्हें ढंग से लागू तो किया जाए!

(4) लोकतांत्रिक समाज में जनता की सत्ता होती है। भारत जैसे देश में यह सत्ता ही बहुत कुछ या कहा जाए कि सब कुछ तय करती है। दुर्भाग्य से आदिवासी इस सत्ता से हमेशा बाहर रहे हैं। राजनीतिक आरक्षण की वजह से निर्धारित संख्या में कुछ आदिवासी सांसद-विधायक जरूर चुन कर जाते रहे लेकिन वे अपनी-अपनी पार्टियों के नुमाइंदे बने रहे, अपने समाज के नहीं। आज भी यही स्थिति है। जयपाल सिंह मुंडा, कार्तिक उरांव जैसे कद्दावर नेता बाद के दिनों में पैदा नहीं हो पाए। बदलते समय में आदिवासी समाज बाहरी घुसपैठ और ब्राह्मणवादी लूटतंत्र का शिकार हो गया, जिसका दंश वह आज भी भुगत रहा है। अगर वह अपने 'आदिवासी भारत' में रहता तो कोई गड़बड़ी नहीं होती, लेकिन आज उसे 'ब्राह्मणी भारत' में जीना पड़ रहा है। यह सबसे बड़ी दिक्कत है। आदिवासियों की सारी समस्याओं की जड़ भी यही है।

(5) हिंदी में जो आदिवासी साहित्य आया है, उसमें ज्यादातर विभिन्न आदिवासी भाषाओं से अनूदित है। यद्यपि अभी कुछेक भाषाओं में कुछेक साहित्यकारों की ही रचनाएँ हिंदी में सामने आ पाई हैं। विभिन्न भाषाओं में रचा गया व्यापक आदिवासी साहित्य अभी भी प्रकाश में नहीं आ पाया है। दूसरी बात, आदिवासी विमर्श में अभी ज्यादातर शहरों में रहने और नौकरी करने वाले आदिवासी लेखक-विचारक ही लिख-पढ़ और बोल रहे हैं। जैसे-जैसे इसका दायरा बढ़ेगा, आदिवासी विमर्श का फलक विस्तृत और बहुआयामी होता जाएगा। आदिवासी समाज के मूल सवालों को अब आज के संदर्भ में देखना-समझना और उन्हें सामने लाना इस साहित्य चिंतन की जिम्मेदारी बनती है। बदलते समय और परिवेश में आदर्शवाद और रूमानियत से बचना होगा। मनुवादी भारत में जी रहे आदिवासियों की समस्याओं और उनके समाधान के नए रास्ते तलाशने होंगे और मुक्ति की व्यापक लड़ाई लड़नी होगी। इसका आधार तैयार करने में आदिवासी विमर्श की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

(6) विमर्शों की बात की जाए तो यह सही है कि दलित या स्त्री विमर्श की तरह आदिवासी विमर्श नहीं हो सकता। आदिवासी विमर्श की भाव-भंगिमा थोड़ी भिन्न होगी ही। अभी इस विमर्श के नाम पर सबसे ज्यादा गैर-आदिवासी लेखक ही प्रतिनिधित्व करने की भूमिका में हैं। विमर्शकार वही हैं तो वैचारिक भटकाव स्वाभाविक है। लेकिन जैसे-जैसे आदिवासियों की युवा पीढ़ी इसमें आगे आ रही है, वैसे-वैसे इस विमर्श का स्वरूप आदिवासियत और उसके व्यापक सवालों से जुड़ता जा रहा है। आने वाले समय में आदिवासी लेखकों और भाष्यकारों की सक्रियता से इस विमर्श का वैचारिक और संवेदनात्मक पक्ष वैविध्य और रचनात्मक ऊर्जा से भरपूर होगा।

(7) आदिवासियत में संस्कृति के साथ उसका ऐतिहासिक पक्ष ही सबसे मजबूत होता है। अच्छी बात है कि अभी आदिवासी साहित्य चिंतन में इतिहास पर ध्यान देना शुरू किया गया है। इस दिशा में गैर-

आदिवासियों द्वारा शोध कार्य ज्यादा किए गए हैं। जरूरत है कि अलग-अलग क्षेत्रों में आदिवासी अध्येता शोध-अध्ययन करें और सही इतिहास का दस्तावेजीकरण करें। यही इस समाज के रचने-बसने में सहायक सिद्ध होगा। आदिवासी इतिहास का जो उच्च मानवीय मूल्यों वाला पक्ष है, उसे खासतौर से बाहर लाने की जरूरत है। शायद आने वाले समय में ऐसा लेखन हो, ऐसी उम्मीद है।

(8) आज आदिवासियों के सामने इतनी तरह की समस्याएँ आ खड़ी हुई हैं कि मातृभाषा में शिक्षा की जरूरी बात दब-सी गई है। यह मनुवादी समाज की सुनियोजित साजिश है कि वे तेजी से आदिवासी मातृभाषाओं को खत्म करने के काम में लगे हुए हैं। कमजोर राजनीतिक ताकत के चलते आदिवासी भाषाओं में शिक्षा और साहित्य लेखन को प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है। आदिवासियत के कमजोर पड़ने का सबसे बड़ा कारण यही है। हिंदी या अंग्रेजी के आदिवासी विमर्श में मातृभाषा में शिक्षा के प्रश्न को एक आंदोलन का रूप नहीं दिया गया। अतः अब आदिवासी विमर्श की तरफ से आदिवासी मातृभाषाओं को मजबूत करने, खास कर नई पीढ़ी के बीच उन्हें जिंदा रखने की कोशिश करनी पड़ेगी, क्योंकि आदिवासी भाषा बचेगी तभी आदिवासी बचेंगे, आदिवासियत बचेगी और उसका विमर्श बचेगा।

(9) दलित समाज और आदिवासी समाज के स्वरूप में कुछ बुनियादी अंतर रहे हैं। दलित समाज वर्ण व्यवस्था का सीधे तौर पर शिकार रहा है, जबकि आदिवासी समाज इससे बाहर। दलित समाज को पढ़ने-लिखने से रोका गया, जबकि आदिवासी समाज अपनी समृद्ध मातृभाषा और देशज ज्ञान की बदौलत उच्च जीवन मूल्यों पर आधारित व्यवस्था बना कर उसमें रहता आया है। लेकिन आज चीज़ें वैसी नहीं रहीं। मातृभाषाओं में शिक्षा के खत्म होते अवसरों के चलते हिंदी या अंग्रेजी में पली-बढ़ी आदिवासी पीढ़ी उसी सवर्णवाद और जातिगत भेदभाव का शिकार होने लगी है। फिर भी दलितों की तरह इनके पास पीढ़ी-दर-पीढ़ी जातिगत दंश झेलने और अमानवीय जीवन जीने की व्यक्तिगत कहानियाँ नहीं हैं। इसलिए दलित साहित्य में आत्मकथाएँ व्यापक दलित समाज की संवेदना से जुड़ जाती हैं। इन आत्मकथाओं ने सामाजिक परिवर्तन की नींव मजबूत करने में भी बड़ी भूमिका निभाई है। आदिवासी विमर्श के लिए आत्मकथाओं की अभी जरूरत नहीं है। लेकिन आज की पीढ़ी जो भुगत रही है, वह आगे चल कर आदिवासी विमर्श में भी आत्मकथा की जमीन तैयार करेगी, ऐसी संभावनाएँ दिखने लगी हैं।

(10) गीत-संगीत आदिवासियों की धड़कन रहा है। जाहिर है कि कविता विधा ही आदिवासी जीवन के सबसे नजदीक रही है। एक-एक गीत में पहाड़, नदी और पूरा पर्यावरण समाया मिलता है। अब तक सामने आईं आदिवासी कविताएँ आदिवासी जीवन में कई रंगों की खुशबू बिखेरती नजर आती हैं।

हिंदी आदिवासी विमर्श में निर्मला पुतुल की कविताओं ने गजब का असर दिखाया था। क्या प्रकृति, क्या स्त्री और क्या प्रेम संवेदना, सभी कसौटियों पर निर्मला की कविताएँ पूरे हिंदी काव्य से टक्कर लेती हैं और अपनी गहरी छाप छोड़ती हैं। वैसे ही भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार से पुरस्कृत कविता 'अघोषित उलगुलान' से अनुज लुगुन अपने जीवंत इतिहासबोध, प्रेम संवेदना और गहरे सौंदर्यभाव के साथ उपस्थित होते हैं और हिंदी कविता की दुनिया में अपनी सार्थक रचनाशीलता को साबित करते हैं। अनुज की आदिवासी कविताओं में बौद्धिकता का

पुट मिलता है, जो उन्हें दूसरे कवियों से अलग करता है। आदिवासी लेखन में कथा साहित्य को और समृद्ध होना है। लेकिन विचार-चिंतन के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। शेष विधाओं में भी धीरे-धीरे काम होगा।

(11) दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र सवर्ण वर्चस्व के सौंदर्यशास्त्र से भिन्न है। वैसे ही आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र भी सवर्ण वर्चस्व के सौंदर्यशास्त्र से भिन्न है। कतिपय मामलों में वह दलित सौंदर्यशास्त्र से भी भिन्न है। यह प्राकृतिक दर्शन पर आधारित है। इसके केंद्र में उच्च मानवीय मूल्य होते हैं। इस सौंदर्यशास्त्र में मनुष्यों के साथ पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं, नदी-नालों और पहाड़ों के लिए भी जगह होती है। आदिवासी सौंदर्यशास्त्र में अलग से किसी 'वाद' को चलाने की जरूरत नहीं है। यह अपनी मौलिकता और स्वाभाविकता के लिए जाना जाता है और हर प्रकार के बनावटीपन का निषेध करता है। यह सामुदायिकता के दर्शन पर आधारित सौंदर्यशास्त्र है जिसके केंद्र में प्रेम, भाईचारा, संवेदना और जीवन है।

(12) आज आदिवासी समाज की जो इतनी बर्बादी हो रही है, वह सब एक कुचक्र का नतीजा है। हिंदू धर्म से आदिवासी समाज का दूर-दूर तक कभी कोई नाता नहीं रहा है, पर आदिवासियों के जीवन में आज जबरन अंधविश्वास और कर्मकांड घुसाए जा रहे हैं। झारखंड में आदिवासी उत्पीड़न की इंतेहा हो गई। लोग ईसाई और गैर-ईसाई आदिवासियों में लड़ाई कराने के काम में लगे हुए हैं। आज के समय को देखते हुए आदिवासी समाज को खुद को तैयार करना होगा। अब तीर-धनुष का नहीं, कलम के माध्यम से बौद्धिक लड़ाई का समय है। आदिवासियों को उन तमाम बहुजन महापुरुषों के विचारों और उनके योगदान को जानना-समझना होगा, जिन्होंने इस देश में ब्राह्मणवादी व्यवस्था से सबसे ज्यादा लड़ाई लड़ी थी। आदिवासियों को ऐसे वंचित समूहों के साथ मिल कर अपनी गोलबंदी मजबूत करनी होगी, तभी आज के और आगामी संकट का मुकाबला यह समाज कर पाएगा।

प्रभारी, हिंदी विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केंद्र, ऐकतान, आई ए- 290, साल्ट लेक, सेक्टर-03, कोलकाता-700097, मो. 9552733202

कला प्रेमियों को अर्धवस्त्र में स्तनपान कराती आदिवासी युवती अच्छी लगती है तो आदिवासी साहित्य क्यों पसंद नहीं आता

विश्वासी एक्का

(1) अनुसूचित जनजाति अर्थात शिड्यूल ट्राइब या एस.टी. एक प्रशासनिक शब्द है जो संविधान द्वारा प्रदत्त है। जन सामान्य के बीच अनुसूचित जनजातियों के लिए 'आदिवासी' शब्द ही बहु प्रचलित है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख भील, कोल, किरात, निषाद आदि नामों से मिलता है। समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने जनजातियों की परिभाषा लगभग एक जैसी दी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1950 में जनजाति समुदायों की पहचान कर उनकी सूची तैयार कर इसे संविधान में विनिर्दिष्ट किया गया। हिंदुत्ववादी संगठनों द्वारा जनजातियों को 'वनवासी' नाम देना संदेह उत्पन्न करता है, क्योंकि इसमें आर्यों की श्रेष्ठता का बोध समाहित है। आदिवासियों को यह

स्वीकार नहीं है। 'आदिवासी' होने से जो इतिहास और सांस्कृतिक विशेषता का बोध होता है, वह दूसरे विशेषणों में नहीं है।

(2) संविधान में आदिवासियों को उनका पहचानमूलक विशेषण नहीं मिला, यह उस समय की परिस्थितियों की वजह से होगा। लेकिन आज जबकि आदिवासी समुदाय पर हर तरफ से हमले हो रहे हैं और उनका अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया है, ऐसे में उन्हें 'आदिवासी' होने का पहचानमूलक विशेषण मिलना चाहिए।

(3) देश में आदिवासी समुदायों के लिए पांचवीं और छठी दो अनुसूचियाँ हैं। दोनों में अलग-अलग शक्तियाँ और प्रावधान हैं। मुझे नहीं लगता है कि इससे विभाजन की स्थिति बनती है। पूर्वोत्तर के राज्यों में छठी अनुसूची लागू है और शेष भारत में जहाँ आदिवासी निवास करते हैं वहाँ पांचवीं अनुसूची है। इसके अपने भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक कारण हैं। यह परिस्थितिजन्य है। कहीं-कहीं दोनों अनुसूचियाँ हैं जैसे बलाघाट का क्षेत्र। इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। शहरी क्षेत्र के आदिवासियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वहाँ मिश्रित जनसंख्या होने के कारण उन्हें दिक्कत होती है। कई ऐसे आदिवासी बहुल क्षेत्र हैं, जहाँ उन्हें किसी भी अनुसूची में शामिल नहीं किया गया है। जैसे अंडमान निकोबार, लक्षद्वीप, दादर, नागर हवेली, जम्मू-कश्मीर आदि। यह विडंबना है। धर्म और राजनीति आदिवासियों को निरंतर विभाजित करने का काम कर रही हैं।

(4) आज साहित्य जगत में आदिवासी विमर्श की आवाज जोर-शोर से सुनाई दे रही है, साथ ही उच्च शिक्षण संस्थाओं में कुछ वर्षों से निरंतर शोध कार्य, संगोष्ठियाँ और कार्यशालाएँ आयोजित की जा रही हैं। इनसे नवीन तथ्य और सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं, कई बातों से पर्दा उठ रहा है। इनसे निश्चय ही साहित्य के विमर्शकार लेखक आदिवासियों के जीवन से जुड़े सवालों से परिचित हो रहे हैं। साथ

ही, साहित्य के अध्येताओं की चाहे वे सामान्य हों या विशिष्ट, आदिवासियों को देखने-समझने की दृष्टि विकसित हो रही है। उनसे जुड़ाव और संवेदनात्मक सोच बन रही है। यह समय की मांग है और 'भारतीय एकता' की स्थापना के लिए अति आवश्यक है। आदिवासी विमर्शकारों के लिए आदिवासी विमर्श अवसर की तरह है या एक रूमानियत है, ऐसे प्रश्न भी उठ रहे हैं तो थोड़ी ही सही सचाई होगी। कोई भी व्यक्ति आदिवासी समाज या पाठक को ज्यादा समय धोखे में नहीं रख सकता। साहित्य का सजग पाठक उसे जल्दी ही नकार देगा।

(5) आदिवासियों के शोषण-दमन, उत्पीड़न, अधिकार-हनन, अपमान, आदिवासी अस्मिता पर मंडराते खतरे जैसे सवालों से आदिवासी विमर्श की शुरुआत हुई। इसकी संवेदना और वैचारिकी उबड़-खाबड़ और कांटों से भरे रास्तों पर आगे बढ़ती हुई सकारात्मक विस्तृत भावभूमि हासिल कर रही है और आशावादिता ही तो विकास में सहायक होती है।

(6) आदिवासी साहित्य लेखन में आदिवासियों का अपना इतिहास बखूबी व्यक्त हो रहा है। चाहे साहित्य की कोई विधा हो, आदिवासियों के इतिहास को लक्षित किया जा सकता है। उनकी बोलियों के लोक साहित्य में वह अधिक गहराई से व्यक्त हो रहा है।

(7) आदिवासियों की मातृभाषा आज खतरे में है। इसके लिए शासन भी जिम्मेदार है, वहीं स्वयं

विश्वासी एक्का

चर्चित आदिवासी कवयित्री और कथाकार। हिंदी सहित कुडुख में लेखन। कविता संग्रह 'लछमनिया का चूल्हा' और कहानी पुस्तक 'कजरी' प्रकाशित। संप्रति : राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अंबिकापुर में सहायक प्रोफेसर।

आदिवासी समुदाय भी जिम्मेदार है। पढ़ा-लिखा आदिवासी वर्ग अपनी मातृभाषा से दूर होता जा रहा है। इसके पीछे कई कारण हैं। सरकार को शिक्षा को मातृभाषा से जोड़ना चाहिए।

(8) आदिवासी विमर्श मुख्यधारा की भाषाओं के साथ आदिवासी भाषा-साहित्य में भी दिखाई दे रहा है। चिंता का विषय है कि आदिवासी भाषा का लिखित साहित्य थोड़ा है। वाचिक परंपरा का साहित्य लोक साहित्य के रूप में बड़े पैमाने पर विद्यमान है, उसमें आदिवासी विमर्श है। लेकिन यदि इसे लिखित रूप में परिणत नहीं किया गया तो यह धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएगा, इस बात की आशंका है।

(9) दलित विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण आधार उनकी आत्मकथाएँ रही हैं। दलित सवर्णों के आस-पास रहे, उनकी सेवकाई की, लेकिन पुरस्कार के रूप में उन्हें अधिकाधिक अपमानित होना पड़ा। दलितों की यह मर्मांतक पीड़ा उनकी आत्मकथाओं में अभिव्यक्त हुई है। आदिवासी भी शोषण और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं। पहले उनका निवास नगरों से दूर जंगल, पहाड़ और दुर्गम स्थलों में रहा, उनकी एक अलग ही दुनिया थी। अत: वे दलितों की तरह अपमानित होने से बचे रहे। वैसे शोषण के स्तर पर दोनों ही दलित कहलाएंगे। 1968 में भारतीय अंग्रेजी लेखकों की पांच आत्मकथाएँ छपी थीं, जिनमें सीता रत्नमाला की आत्मकथा 'बियोंड द जंगल' का अलग स्थान है। इन आत्मकथाओं में उनका प्रकृति पर आधारित कल कल ध्वनि करती नदियों-से नैसर्गिक जीवन का चित्रण है।

(10) आदिवासी विमर्श के लिए सबसे महत्वपूर्ण विधा के रूप में इस समय कविता ही दिखाई पड़ती है। आदिवासियों की प्रकृति के अनुरूप कविता ही उनके विमर्शों को सहजता से रूपायित करती जान पड़ती है। वैसे कहानियों और उपन्यासों में विमर्श और विचारों के लिए अधिक संभावना बन सकती है। आदिवासी साहित्यकारों को इन विधाओं में भी प्रवृत्त होने की जरूरत है।

वर्तमान में आदिवासी साहित्य के क्षेत्र में कविता ही सबसे समृद्ध विधा है। प्रमुख कवियों में राम दयाल मुंडा, रोज केरकेट्टा, तेमसुला आओ, महादेव टोप्पो, वाल्टर भेंगरा 'तरुण', हरिराम मीणा, वाहरू सोनवाने, जोराम मालाम नबाम, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, वंदना टेटे, अनुज लुगुन, केदार प्रसाद मीणा, हीरा मीणा, नीतिशा खलखो, अन्ना माधुरी तिर्की, ज्योति लकड़ा, जसिंता केरकेट्टा जैसे कवियों-कवयित्रियों की लंबी सूची है। महादेव टोप्पो की 'फिर भी हम कहते रहे तुम्हें जोहार', वाहरू सोनवाने की 'मेघा और आदिवासी', ग्रेस कुजूर की लंबी कविता 'एक औरजनी शिकार', भुजंग मेश्राम की 'ओ मेरे बिरसा', लखन लाल पाल की 'तीखी नोकों के पदचिह्न', निर्मला पुतुल की 'चुका सोरेन से' और अनुज लुगुन की कविता 'हमारी अर्थी शाही नहीं हो सकती' पाठकों पर गहरा प्रभाव डालती है।

(11) आदिवासी साहित्य एक अलग तरह का सौंदर्य रच रहा है। उसके सौंदर्य का मानक मुख्यधारा की भाषाओं से भिन्न है। अज्ञेय ने अपनी नायिका को चंद्रमा या हिरनी-सी नहीं, 'कलगी बाजरे की' कहा था, फिर आदिवासी साहित्य तो एक अलग मिजाज का साहित्य है। उसका सौंदर्यशास्त्र भी अलग है। मुख्यधारा के भाषा और साहित्य का सौंदर्यशास्त्र आनंद पर आधारित है और दलित साहित्य का व्यथा और वेदना पर, तो आदिवासी साहित्य नैसर्गिकता, पारदर्शिता, आडंबरहीनता और

सहजीविता आदि मानकों पर आधारित है। उसकी भाषिक संरचना भिन्न है और उसके बिंब, प्रतीक और मिथक भी भिन्न हैं। समीक्षकों की दृष्टि में आदिवासी साहित्य भले कलावादी न हो, अपनी सवर्ण मानसिकता और आदिवासी जीवन शैली की अनभिज्ञता के कारण वे समीक्षक आदिवासी साहित्य के वास्तविक सौंदर्य को नकार दें और उसे साहित्य ही न समझें, यह संभव है। ऐसी स्थिति में आदिवासी साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र के निर्माण की आवश्यकता होगी। कला प्रेमियों को अर्ध वस्त्र में स्तनपान कराती आदिवासी युवती, आखेटक और हल चलाते आदिवासी पुरुष पर आधारित पेंटिंग मोहक लगती है तो आदिवासी साहित्यकारों के विचार क्यों नहीं अच्छे लगते?

(12) आदिवासी समाज को किससे और क्यों खतरा है? उसे हिंदुत्ववाद और पूंजीवाद दोनों से खतरा है। हिंदुत्ववाद आदिवासी समाज को दिग्भ्रमित कर रहा है तो पूंजीवाद विकास का सपना दिखा कर उसे समूल उखाड़ फेंकना चाहता है। दरअसल आदिवासी समाज को खुद चेतना संपन्न बनना होगा।

सहायक प्राध्यापिका, राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अंबिकापुर, सरगुजा छतीसगढ़।

लघुकथा

तरीका

सुधीर निगम

एक नेत्रहीन व्यक्ति किसी बड़ी हवेली के सामने बैठ कर भीख मांग रहा था। उसने अपने पास एक छोटा-सा बोर्ड लगाया हुआ था जिस पर लिखा था- 'मैं अंधा हूँ, भगवान के लिए मेरी मदद करें।'

दोपहर होने को आई थी, पर उसके भिक्षापात्र में कुछ ही सिक्के आए थे। तभी वहाँ से एक रचनाकार गुजरा। उसकी नजर अंधे भिखारी पर पड़ी। उसने बोर्ड पर लिखी इबारत देखी, कुछ विचार किया फिर उसे मिटा कर उस पर कुछ और नया लिखा तथा भिक्षापात्र में कुछ सिक्के डाल कर चला गया।

शाम को जब वह व्यक्ति वापस लौटा तो उसने देखा कि भिखारी के भिक्षापात्र में ढेर सारे सिक्के थे। भिखारी उसके कदमों की आहट पहचान गया। उसने रचनाकार से पूछा, 'तुम वही व्यक्ति हो जो सुबह आए थे। यह बताइए आपने तख्ती पर ऐसा क्या लिख दिया था जिससे मुझे आज तक की सबसे ज्यादा भिक्षा मिली।'

रचनाकार ने कहा, 'कुछ खास नहीं। मैंने तुम्हारी ही बात को दूसरे तरीके से लिख दिया था।' 'जरा मुझे भी बताइए।' भिखारी ने दुबारा पूछा।

'मैंने लिखा था', रचनाकार ने बताया, 'आज से वसंत शुरू हो रहा है, लेकिन मैं देख नहीं सकता।'

104-ए/315, रामबाग, कानपुर-208012, मो.9839164507

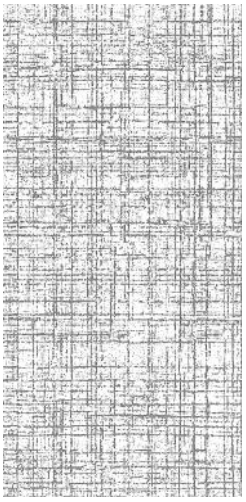

आलेख

हजारी प्रसाद द्विवेदी : इतिहास तथा साहित्य की जुगलबंदी

रमेश कुंतल मेघ

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (1907–1979) ने ऐतिहासिक उपन्यास तथा साहित्येतिहास दर्शन की मिलीजुली सिरजना की है। इसलिए हम भी प्रसंगानुसार इतिहास बनाम साहित्य तथा इतिहास और साहित्य दोनों के संदर्भ में उन्हें देखेंगे।

ऐसे परिप्रेक्ष्य में इतिहास के साथ वैश्विक आधुनिकता और देशज साहित्य के साथ बांग्ला रिनासां का यथातथा यथार्थ–बोधक अभिगम भी वांछनीय है।

उपन्यास में देश की प्रधानता होती है और वृत्तांत (नैरेटिव) की प्रक्रिया चलती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने देशकाल–वृत्ति के इस युग्म की छाया धुँधली करके, निजंधर प्रविधि का भरपूर उपयोग किया। इसके अलावा, उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्तमान प्रासंगिकता को भी अंतर्निहित कर डाला। इसलिए यह सूत्र जाने–अनजाने उनके कृतित्व में बहुव्याप्त है कि 'इतिहास अतीत का समाजशास्त्र है तथा समाजशास्त्र वर्तमान का इतिहास।' उनके इतिहास–पक्ष के प्रस्तुतीकरण में देशकाल का ज्ञान और उसके कार्य–कारण–परिणाम का प्रमाण है। इसी तरह उनके उपन्यास– पक्ष में वृत्तांत आधार है। हम यह भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि जब इतिहास अपने देशकाल के जीवंत दस्तावेजों से विच्छिन्न हो जाता है, तब वह मात्र वृत्तांत है। जब देशकाल धुँधले हों और ऐतिहासिकता की छायाएं छाई रहें तब कृति इतिहास के बजाय निजंधर (लेजेंड) होती है। आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यासों में लोकचित्त तथा जनजीवन की सर्वकालिक प्रस्तुति में प्रायः ऐसा किया है। तदपि इतिहास और साहित्य, दोनों में निरंतरता तथा परस्पर अति–आच्छादन भी है।

अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इतिहास के आकृतिबंधों (पैटर्न) की बिनाई उनके बुनकरों से स्वतंत्र है। वस्तुतः सांस्कृतिक फेनामेना के अध्ययन में जीवशास्त्रीय

(बायोलॉजिकल) अभिप्रायों पर ज्यादा झुकाव नहीं होना चाहिए। समाज-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों पर जोर देना ही सही है। एवज में नृतत्व से संपृक्त होना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना होगा कि संस्कृति प्रतीक की उपचेतन अभिव्यंजना भी होती है।

तो हम प्राक्आदिम जीवन (मिथक समेत) से सांस्कृतिक समाज में प्रवेश करते हैं इतिहास के द्वारा। इसमें अर्थवत्ता की दुनिया का भाव और तथ्यों के प्रतीक होते हैं। इस न्याय से तो यथार्थता का सच्चा चरित्र देशिक 'काल' ठहरता है। यह धुरी है इतिहास की भी।

साहित्य में कृतियाँ और कृतिकार तथ्य हैं। वे चिंतन तथा अनुभव के विधेय हैं। साहित्यिक कालिक तथा कालोत्तीर्ण होते हैं। कबीर तथा तुलसी मिसाल हैं। आचार्य द्विवेदी ने कबीर पर खूब लिखा, लेकिन तुलसी पर लेखनी उनकी अपूर्ण महत्वाकांक्षा के रूप में धरी की धरी रह गई। उन्होंने 'मध्यकाल' के एक बड़े युग में साहित्य का रूपन्वयन एक संपूणर्ता में किया, यह तथ्य रेखांकित किया जाए। जिन युगों में सामाजिक-ऐतिहासिक सादृश्य होता है उनके विविध दिशाओं वाले साहित्यों (हिंदी, पंजाबी, अवधी, ब्रज आदि) में भी अनगढ़ सादृश्य होता है। द्विवेदी जी ने इसकी भी छानबीन की है।

सांप्रदायिकता के उभरते ज्वार में एकपक्षता छा जाती है। इससे अतीत विभाजित होने के बजाय खंड-खंड हो जाता है। हमें नवल ढंग से काल-क्रम की सीमाएं तय करनी हैं। हम इन्हें मुस्लिम-हिंदू काल से नहीं जोड़ें। आचार्य द्विवेदी ने नहीं जोड़ा। उनके यहाँ 1206 से 1764 तक का 'मध्यकाल' है। इसे 'सामंतवादी युग' भी कहा गया है। अच्छा है, हम समाजार्थिक-सांस्कृतिक निर्मितियों को आधार बनाएँ। इतिहास भी ज्ञान का एक द्वंद्वात्मक संरूप है। अतीत की व्याख्या की कई विधियों से आचार्य जी ने धर्मनिरपेक्षता चुनी थी। वे काल विभाजन में सुदृढ़ समाजवैज्ञानिक जैसे थे। अतीत 'है' के बजाय उनकी नजर में 'हो रहा' है/था।

अतीत के पुनर्निर्माण में अतीत के खोज कर चुने गए तथ्य नाभिनाल हैं। जो 'तथ्य' हैं- प्रत्येक वस्तु जो घटती है, उसमें उसकी प्रकृति, विविधता तथा व्यापकता शामिल होती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मुद्दे पर सवाल किए हैं। उन्होंने इस प्रक्रिया में संस्कृति तथा जनचित्त को भी कारण बनाया है। यह उनका एक प्रवर्तक काम था। वस्तुतः कोई तथ्य विश्वसनीय हो जाने पर इतिहास में 'सामान्यीकरण' की ओर प्रवृत्त होता है। आचार्य द्विवेदी ने 'आदिकाल' के प्रकरण में ऐसा ही किया है। उन्होंने जनता के चित्त से जुड़े तथ्यों को 'लोक हिस्टोरियोग्राफी' का दर्जा दिया। किंतु उन्हें इतिहास की नैतिकता से भी आदर्शवादी ढंग से संयुक्त कर दिया। उनकी एक अन्य खूबी तथ्यों की चतुरंग 'व्याख्या' है जो नए ढंग से घटना के कारण और प्रभाव को जीवंत बनाती है।

इस संदर्भ में कुछ अनिवार्य नजरियों का सिंहावलोकन करना लाजिमी है। टायन्बी तथा स्पेंगलर ने मानव इतिहास को खोजने में 'उत्पादन-प्रणाली' के साथ 'चेतना क्षेत्र' को भी लिया था। टायन्बी ने अलग-थलग सभ्यताओं के 'बहुलतावाद की व्यवस्था' को धर्म के संरूप पर आश्रित किया था। इस तरह उन्होंने परंपरागत आदर्शवाद तथा अध्यात्मवाद का ही आधुनिकीकरण किया। सोरोकिन उन सभ्यताओं को 'अतिव्यवस्थाएँ' मानते हैं जो धार्मिक चेतना पर आधारित हैं। मैक्स वेबर ने 'आइडियेशनल टाइप' का सिद्धांत रचा। कार्ल पॉपर इसके विरुद्ध हैं। सर्वांगतः मार्क्सवाद ने इतिहास के प्रारूपीकरण (टाइपोलाइजेशन) के सहकार में इस विचार को आधार बनाया कि ऐतिहासिक प्रक्रिया का तात्पर्य रूपायनों का संक्रमण है। ऐसे चिंतक ऐतिहासिक प्रक्रिया के विधाता हैं। वे आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक रूप से बेहतर रूप में विकसित होते हैं। 'संस्कृति' ऐतिहासिक तथ्यों के परिवर्तनों के अलावा व्यक्ति तथा जनता की प्रकृति, समाज

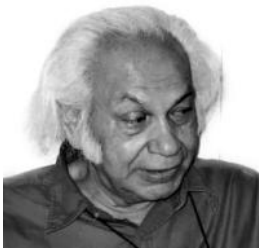

रमेश कुंतल मेघ
सुप्रसिद्ध आलोचक।
अद्यतन पुस्तक
'विश्व मिथक सरित सागर'।
साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित।

के प्रति और स्वयं अपने प्रति मानवीय तथा सामाजिक संबंधता को मूर्त करती है। अतः किसी भी अंतर्बाह्य व्यवस्था के समग्रतः चार आयाम होते हैं- संरचना, प्रतिमान, संबंध एवं संचेतना। इस व्यवस्था के परिवर्तन के घटक आर्थिक तथा बौद्धिक जिंदगी से आते हैं, स्वयं सांस्कृतिक तत्वों से भी आते हैं, अन्य व्यवस्थाओं के अतिरिक्त संघात से भी आते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'जनता' और 'संस्कृति' की दो आधारभूत इकाइयों को इतिहास के समायोजन में जोड़ा। उन्होंने तथ्यों के साथ जनचित्त को आधार बनाकर इतिहास को धाराप्रवाही बना दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी के लालित्य तत्व तथा पुनर्जागरण (रिनासां) के पुरुष हैं। उन्होंने अशोक के फूलों को हँसी दी, लालित्य तत्व को शोभानुभूति दी, भारतीय नवजागरण के लिए मानवतावाद को पल्लवित किया तथा साहित्येतिहास की धारा में सांस्कृतिक आकाशदीप जलाए। वे 'संपूर्ण' थे- अधिकांशरूपेण। उनके अंतर में एक स्वयंभू कवि तथा शाश्वत शिशुशोभा मौजूद रही है। वे महापंडित थे, पर पंडिताई के बोझ से मुक्त थे। वे सहज साधना से बाणभट्ट, कबीर तथा रामकृष्ण परमहंस को आत्मसात कर चुके थे। निष्कर्ष यह है कि वे गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के शिष्य थे। उनके सांस्कृतिक निर्माण में दीनबंधु एंड्रुज, विंटरनित्ज, कॉलिंस, विधुशेखर शास्त्री, क्षितिमोहन सेन, नंदलाल बसु का प्रभाव छा गया था।

उनके उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारुचंद्रलेख' महाक्लासिक की श्रेणी के हैं। उन्हीं के शब्दों में उनके जीवन तथा कृतित्व में 'कालदेवता' की शक्ति का चिद्विलास मिलता है।

चंडीगढ़ प्रवास की अवधि में उन्होंने विशुद्ध भारतीय सौंदर्यबोध शास्त्र के रूप में लालित्य तत्व की प्रतिष्ठा की। यह 'अनुभूति' की गहराई को दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक आयाम देना था। इसकी प्रेरणा 'कालिदास की लालित्य-योजना' में है। इनके अलावा, 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद', 'सिसृक्षा का स्वरूप' कृतियाँ भी हैं। सारतः उन्होंने 'अबोधपूर्वास्मृति', 'अन्यथाकरण', 'यथालिखितानुभव', 'भावानुप्रवेश', 'अन्वयन', 'यथाप्रदेशविनिवेश' जैसे पदों को परिभाषित किया है। अपने लालित्य दर्शन में वे सौंदर्य (लालित्य) और मंगल की, शैव दर्शन की इच्छा और क्रिया की तथा प्रेम और तपस्या की मैत्री कायम करते हैं। वे विशुद्ध सौंदर्य को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने 'सहज रूप' का अभिनंदन किया है। उन्होंने मानव-तत्व, लालित्व-तत्व, मिथक-तत्व के साथ लोक तत्व का जो चतुरस्त्र-विधान किया है वही समग्र लालित्य है। वे मिथक से इतिहास और सामाजिक इतिहास में आए । इस प्रकार वे आनंद कुमार स्वामी, कांतिचंद्र पांडेय, प्रवास जीवन चौधुरी की पंक्ति में खड़े होते हैं।

आचार्य द्विवेदी जी की 'मानवतावाद' की अवधारणा पाश्चात्य 'मानववाद' से भिन्न है। इसे 'ह्यूमेनिटेरियेनिज्म' के संदर्भ में अलगाया जाता है। मानववाद मध्यकालीन सामंतवाद के विरुद्ध एक ऐसा आंदोलन था जो स्वतंत्रता तथा मानवीय संकल्प के लिए था। इसमें भद्रलोकों की उस लड़ाई की पक्षधरता थी जो सभी प्रकार की अतिरिक्त आर्थिक विवशताओं के विरुद्ध थी, किंतु निजी संपत्ति को प्राकृतिक अधिकार मानती थी और श्रमिकों की 'मुक्त' मजदूरी का समर्थक-सी थी। यह मानववाद का प्रबल विरोधाभास था। यह नागर-प्रधान था, हालांकि इसमें कलाओं की सर्वोच्च अभिव्यक्तियां हुईं। भारत में मानवतावाद दरिद्रता,

दासता तथा दमन के परिवेश में फैला। यह क्रमशः राष्ट्रीयता, नागर-कुलीनता तथा सांस्कृतिक समृद्धि से मंडित होता रहा। इसने मध्यकालीन रहस्यवाद से मानव-मस्तिष्क को मुक्त किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सांस्कृतिक इतिहास' के विषय में विचार फैलाए। उन्होंने साधारण जन को केंद्र में प्रतिष्ठित किया। आचार्य जी राष्ट्रीय कला तथा भारतीय संस्कृति में मनुष्य की नई जययात्रा के गरुड़ध्वज वाहक बने। उन्होंने जीव तत्व की ऊर्ध्वगामी वृत्ति की परिणति के रूप में इसे संपादित किया। इतिहास को शुभम् एवं औचित्य के प्रयत्नों में निरूपित किया, मानवता के पक्ष में। उनका 'मनुष्य' स्वाधीन अर्थात अपनी इच्छाशक्ति का स्वामी है। वह रूढ़ियों, भेदों, प्रथाओं, कुरीतियों से बंधनमुक्त है। द्विवेदी जी की यही जीवन दृष्टि उनके साहित्यिक इतिहास लेखन के पीछे भी थी। उनका मनुष्य अमूर्त नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष जन है। अतः मनुष्य की जिजीविषा से आगे मानव-गरिमा है। उनके निबंध 'कुरज' में इसका भाष्य है। उन्होंने ग्राहक (गृहीता) की धारणा भी रखी। गृहीता साहित्यकार, विचारक, संत तथा सामाजिक व्यक्ति सबसे पहले मनुष्य है। इस तरह राष्ट्रीय मुक्ति तथा सामाजिक उद्धार जनजीवन के लक्ष्य हो गए।

आचार्य द्विवेदी ने एक करुणामय मानवीय स्वत्व का अभिनव ज्ञान मार्ग स्थापित किया। इस तरह उनके साहित्यिक चरित्र कोश में मिथकीय, काल्पनिक, ऐतिहासिक, अर्धऐतिहासिक, निजंधरी सब घुल-मिल गए हैं। उन्होंने भुजंग, बाणभट्ट, सीदी मौला, रैक्व, राजा सातवाहन, मातृगुप्त, कालिदास, महामाया भैरवी, निपुणिका, नाटी माता, भैरव आदि की लोकश्रुत तथा निजंधरी और रोमांटिक पात्रों द्वारा जनदृष्टि प्रतिष्ठित की। ध्यान रहे कि वे पात्र नैतिकता से ऐतिहासिक यथार्थ की ओर प्रयाण करने की कोशिश करते हैं, न कि अध्यात्मवाद की ओर। अलबत्ता उनमें भक्तिपरक समर्पण तथा सेवा भाव है। इस तरह उनके चरित्रों में सामाजिक न्याय तथा मनुष्य गरिमा की संस्थापना है, जिसमें नई संस्थाओं के पक्ष झिलमिलाते-जगमगाते हैं।

आचार्य द्विवेदी के साहित्येतिहास-दर्शन में जनसंस्कृति का सुंदर मेल हुआ है। उन्होंने ग्रियर्सन के पश्चात हिंदी साहित्येतिहास में पहला तिलक आदिकाल के अपभ्रंश भाषा वृत्त पर लगाया। इस दुर्लभ धारा में सिद्ध-नाथ-योगी कवि तथा परवर्ती चारण-कवि आते गए। आचार्य द्विवेदी जी ने उनको इतिहास-दर्शन के उपांग मानकर उन्हें पूर्ववर्ती संस्कृत-प्राकृत धारा का ही समीपी माना।

साहित्येतिहास तथा साहित्यालोचन का गठबंधन निर्णायक होता गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि तथा उनकी मानवतावादी दृष्टि हमें 'कवि-कीर्तनों' या 'इतिवृत्त संकलनों' के निरर्थक लोकों से बाहर निकाल लाती है। यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साहित्येतिहास में विश्लेषक की तेजस्विता देदीप्यमान है तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास में सर्जनात्मकता तथा निजंधरता का सौंदर्य तथा ज्ञान है। आचार्य द्विवेदी में परंपरा की खोज निरंतर है। इसका ग्रहीता विशाल हिंदी जन, जनता-मन है। इस तरह साहित्य 'चिह्न' तथा 'तथ्य' के बाद प्रतीक और ज्ञानपरक हो गया है। अंततोगत्वा नवजागरण को घोषित करने में रामचंद्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा हमारे आकाशदीप हैं। यह एक निरंतर महती धारावाहिक परंपरा है।

फ्लैट नं.3,(भूतल), स्वास्तिक विहार - 3, मनसा देवी कामप्लेक्स, पंचकूला-134109 (हरियाणा), मो. 9780772224

इतिहास और काल्पनिक यथार्थ

खगेंद्र ठाकुर

पाठकों को यह पूछने का हक है कि यह कैसे हो सकता है– यथार्थ भी और काल्पनिक भी। लेकिन मैं पूरी संजीदगी से कह रहा हूँ कि 'काल्पनिक' और 'यथार्थ' दोनों एक साथ हो ही नहीं सकते, बल्कि हैं। मैं क्या कहूँ, रवींद्रनाथ ने कहा है– 'राम और कृष्ण आदि कोई हुए नहीं। हाँ, वे हमारे महाकाव्यों के नायक हैं।' कृष्ण महाभारत में लड़े नहीं, वे अर्जुन के सारथी थे। लेकिन कृष्ण का व्यक्तित्व महाभारत तक सीमित नहीं है। वह उसके पहले और बाद में भी हैं। रामायण के आदि कवि वाल्मीकि खुद भी एक पात्र बन गए हैं। सीता को उन्होंने अपने आश्रम में शरण दी, जब राम ने उन्हें निकाल दिया। व्यास भी महाभारत में एक पात्र बने हुए हैं। यह कहना मुश्किल है कि वाल्मीकि कौन थे और व्यास कौन थे। चंपारण जिले में एक जगह का नाम है भैंसा लोटन। वहाँ गंडक पर बांध बना तो उसका उद्घाटन करने तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू गए थे। उन्होंने कहा–'यह कैसा नाम है भैंसा लोटन? यहाँ पर वाल्मीकि आश्रम था। अतः आज से इस जगह का नाम होगा– वाल्मीकिनगर। 'और यह हो गया। पंडित नेहरू वास्तव में पंडित थे इतिहास और संस्कृति के। लेकिन वाल्मीकि ऐतिहासिक नहीं हैं, पौराणिक हैं।

हमारे प्राचीन महापुरुषों में महात्मा बुद्ध पहले हैं, जो वास्तव में प्रमाणतः हुए। वैसे लोगों ने बुद्ध के पूर्व जन्म की भी कल्पना कर ली जातक कथाओं में। जातक कथाओं की बात छोड़ दें, लेकिन इतिहास में बुद्ध तो हुए। उन्होंने जीवन के लिए मज्झिम निकाय अर्थात मध्य मार्ग अपनाने का संदेश दिया। शरीर को न बहुत कष्ट दो और न विलास पूर्वक जीओ। इतिहास से भिन्न मैं काल्पनिक यथार्थ की बात करना चाह रहा हूँ। काल्पनिक यथार्थ के दृष्टांत केवल राम और कृष्ण नहीं हैं। इन महाकाव्यों से अलग भी बहुत–सी बातें हैं। स्वर्ग, नरक और वैतरणी क्या है?

हमारे समय में एक वैज्ञानिक हुए स्टीफेन हाकिंग। कुछ दिन पहले उनका देहांत हुआ है। वे अमरीकी थे। उनकी पुस्तक है– 'समय का संक्षिप्त इतिहास'। यह पुस्तक 1988 में प्रकाशित हुई थी और अपनी तथ्यपरकता और वैज्ञानिकता के कारण यह इतनी लोकप्रिय हुई कि दस वर्षों में इसकी दस लाख प्रतियाँ हाथों–हाथ बिक गईं। आज भी उसकी मांग बनी हुई है। यह हिंदी में भी उपलब्ध है। अमेरिका की विभिन्न पत्रिकाओं और अखबारों ने स्टीफेन हाकिंग को

असाधारण मेधा संपन्न और विचारोत्तक लेखक कहा है। हाकिंग ने ब्रह्माण्डीय भौतिकी की जटिलताओं को अद्भुत सहजता से समझाया है। हाकिंग ने अपनी पुस्तक की शुरुआत विख्यात अंग्रेज दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल के भाषण की चर्चा से की है। हाकिंग लिखते हैं- एक सुविख्यात वैज्ञानिक ने (कुछ लोगों का कहना है कि वह बर्ट्रेंड रसेल ही थे) एक बार खगोल विज्ञान पर व्याख्यान देते हुए कहा कि किस प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपने कक्ष में घूमती है। उसी क्रम में किस प्रकार सूर्य एक विशाल नक्षत्र पुंज (जिसे आकाश गंगा कहा जाता है।) के केंद्र की परिक्रमा करता है। व्याख्यान के बाद एक वृद्ध महिला ने कहा- 'यह सब बकवास है। विश्व वास्तव में एक कछुए की पीठ पर टिकी एक समतल तश्तरी है।' वैज्ञानिक रसेल ने पूछा, 'कछुआ किस चीज पर टिका है?' इस पर वृद्धा ने कहा- 'तुम बहुत होशियार और समझदार हो नवयुवक! लेकिन नीचे तक कछुआ ही कछुआ है।' उस वृद्धा की जगह कोई भारतीय महिला होती तो कहती- पृथ्वी तो कछुए की पीठ पर तब थी, जब पानी में डूबी थी। आज वह वाराह के दांतों पर टिकी है! यह सवाल किसी ने नहीं उठाया कि वाराह कहाँ खड़ा है?

कई वैज्ञानिकों के अन्वेषणों से पता चला कि ब्रह्मांड फैल रहा या सिकुड़ रहा है। इसका आशय यह है कि पृथ्वी या ब्रह्मांड का कोई स्रष्टा नहीं है। मैं कहना चाहता हूँ कि स्वर्ग, नरक, वैतरणी आदि कुछ नहीं है। ये काल्पनिक यथार्थ हैं। काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ इसलिए है कि ये आम लोगों की चेतना में बसे हुए हैं, बहुतेरे पढ़े-लिखे लोगों की चेतना में भी बसे हुए हैं। वे आज दो-चित्ते मालूम होते हैं, यानी द्वंद्वात्मक चेतना है उनकी। विज्ञान की बात भी उनके लिए विचारणीय है और परंपरा से चली आती हुई धारणा चेतना में है ही। कुछ दिन पहले यह समाचार आया कि हिमालय उत्तर की ओर

खगेंद्र ठाकुर

वरिष्ठ आलोचक। प्रमुख पुस्तकें : 'विकल्प की प्रक्रिया', 'छायावादी काव्य भाषा का विवेचना', 'रामधारी सिंह 'दिनकर' : व्यक्तित्व और कृतित्व' (आलोचना); रक्त कमल परती पर (कविता संग्रह); 'ईश्वर से भेंटवार्ता' (व्यंग्य)।

खिसक रहा है, अत्यंत धीमी गति से। इसी समाचार में कहा गया कि भारत चीन के नजदीक जा रहा है।

स्टीफेन हाकिंग कहते हैं कि मनुष्य चंद्रमा पर तो बहुत पहले टहल-वुल आया। आज वह मंगल, बुध, शुक्र आदि के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहा है। यह मनुष्य का पुरुषार्थ है। यहाँ पर बर्ट्रेंड रसेल का कथन याद आ गया कि मनुष्य के पुरुषार्थ के सामने किसी अदृश्य सत्ता को पेश कर देना उसके पुरुषार्थ का अपमान है।

वैज्ञानिक पहले कल्पना करते हैं, फिर उसे सिद्ध करने के लिए आधार ढूँढते हैं। नई खोज पहले के निष्कर्ष को बदलने वाली होती है। न्यूटन से लेकर आइंस्टीन तक सापेक्षता के आधार पर वैज्ञानिक लोग ब्रह्मांड के बनने की प्रक्रिया की व्याख्या करते रहे हैं।

एक रूसी कहावत है कि पहाड़ पहाड़ को नहीं खोजता, लेकिन मनुष्य मनुष्य को खोजता है। मनुष्य एक अजीब प्राणी है। दिनकर ने एक जगह लिखा है, 'आदमी का शत्रु केवल आदमी।' आदमी आदमी में दोस्ती भी होती है, प्यार भी होता है और दुश्मनी भी, लड़ाई-झगड़ा भी। छोटे-बड़े युद्ध भी होते रहे हैं। कहा जाता है कि अब तक सभ्यता के इतिहास में चौदह हजार लड़ाइयां हो चुकी हैं। एक कहानी है, शायद 'पंचतंत्र' में। एक बार जंगल के पशुओं का सम्मेलन हुआ, जिसमें विचारणीय विषय यह था कि सबसे खतरनाक जीव कौन है? कोई फैसला नहीं हो सका। जो जिससे पीड़ित और आतंकित था, उसने उसी का नाम लिया, जैसे मेढक ने साँप का नाम लिया, तो साँप ने मयूर या नेवला का, किसी ने हाथी

का नाम लिया तो हाथी ने शेर का। भेड़-बकरियों ने, गाय-बैल ने बाघ का नाम लिया। बाघ भी शेर से आतंकित था। इस हालत में फैसला तो नहीं ही होना था। अंत में सब मिल कर वट वृक्ष के पास गए। उन्होंने वृक्ष से पूछा- 'वट दादा, आप सबसे पुराने हैं। बताइए, सबसे खतरनाक जीव कौन है?' इस पर वट वृक्ष ने कहा, 'वह देखो वहाँ वह तीर-धनुष वाला जा रहा है, पहचानते हो?' सबने कहा- 'हाँ, वह तो आदमी है।' वट वृक्ष ने कहा- 'सबसे खतरनाक वही है।' तो न जाने कब से यह बात चली आ रही है कि सबसे खतरनाक जीव आदमी है।

महाकाव्यों में जो कथाएं हैं, वे किसी न किसी रूप में समाज में रही होंगी। एकदम काल्पनिक कोई बात या वस्तु नहीं हो सकती। वाल्मीकि ने अपनी रामायण की कथा लौकिक आधार पर लिखी थी। उनके राम ईश्वर नहीं हैं, लेकिन ईश्वर आदमी की चेतना में जब भी आया हो, जब से आया है, तब से उसकी चेतना में जम कर बैठा हुआ है।

ईश्वर कहाँ रहता है? कोई कहेगा स्वर्ग में, लेकिन स्वर्ग तो है नहीं। यह आज मान्य है। ईश्वर और उनका आवास भी काल्पनिक यथार्थ है।

स्टीफेन हाकिंग ने कहा है कि अंतरिक्ष में ऐसी कोई सत्ता नहीं है, जो पृथ्वी या सृष्टि का संचालन करती हो। यह भी कहा गया है कि ईश्वर क्षीर सागर में रहते हैं। नाग का फन उनके सिर के ऊपर छत्र की तरह है और लक्ष्मी उनके पैर दबा रही है। क्षीर सागर कहाँ है? किसी को पता नहीं। क्षीर यानी दूध। दूध का सागर कहीं है नहीं। यह आलंकारिक अभिव्यक्ति है जिसे समझना चाहिए। क्षीर सागर काल्पनिक यथार्थ है। लक्ष्मी धन की देवी है। समाज कभी स्त्री-सत्तात्मक या मातृ-सत्तात्मक था। उसी जमाने में कल्पना की गई कि धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की देवी दुर्गा, काली और विद्या की देवी सरस्वती। उनकी मूर्तियाँ बनती हैं। यह स्वरूप क्या काल्पनिक नहीं है, मूर्तिकार की कल्पना? सरस्वती को ब्रह्मा की बेटी कहा गया है। यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा सरस्वती की ओर कामासक्त हुए। जब ब्रह्मा ही नहीं हैं, उनकी बेटी कहाँ से आ गई? इतना ही नहीं, ब्रह्मा की पत्नी भी तो होनी चाहिए। हमारे महान पुरखों ने इतना नहीं सोचा। इस काल्पनिक यथार्थ को लोग चेतना में बसाए हुए हैं।

मैं मानव मस्तिष्क को ब्रह्म या ब्रह्मा कहता हूँ और विद्या का अर्जन मानव मन ही करता है। मन सोचता है। वह मनुष्य के पूरे शरीर का नियंत्रण करता है। ब्रह्मा स्वर्ग में रहते होंगे, लेकिन स्वर्ग का राजा तो इंद्र है। इंद्र के राज में अप्सराएं रहती हैं। वहाँ कल्पवृक्ष है। उससे जब जो चाहें मांग लें। लेकिन यह है कहाँ? मेरे मन में प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता रहा है कि जब-जब दैत्यों ने स्वर्ग पर हमला किया, तब-तब वे हारे और धरती के मनुष्य ने स्वर्ग की रक्षा की। दधीचि की याद होगी। उनकी हड्डी से बज्र बना और दैत्य को हराया गया। उर्वशी का अपहरण दैत्यों ने किया। उर्वशी ने रक्षा किए जाने की पुकार की तो धरती का राजा पुरूरवा उसको बचाने दौड़ा। उसे बचाया और अपना भी लिया। सोचिए और बताइए कि ऐसी हालत में स्वर्ग की या इंद्र की क्या हैसियत रह गई। ध्यान देने की बात यह भी है कि ऐसी कथाएं पौराणिक कथाएँ हैं, वे ऐतिहासिक नहीं हैं। ये काल्पनिक यथार्थ हैं।

गोकुल के कृष्ण ने इंद्र को चुनौती दी। इंद्र वर्षा के देवता कहे जाते हैं। किसान इंद्र की पूजा करते थे। कृष्ण ने लोगों को उनकी पूजा से को रोका। लोग मान गए। इंद्र ने बादलों को हुक्म दिया, गोकुल में बरस कर उसे डुबा दो। कृष्ण ने पहाड़ को उंगली पर उठा लिया। सभी गोकुल वासियों को उसके नीचे बुला कर वर्षा से बचा लिया। मुख्य बात यह है कि कृष्ण ने इंद्र को चुनौती दी। उससे भी मुख्य बात यह है कि क्या सचमुच ऐसा हुआ? यह आस्था की बात है, इतिहास की नहीं।

जरा यह देखिए कि वसुदेव, देवकी आदि मनुष्य हैं और देवकी का भाई कंस राक्षस है। राक्षस का जिक्र आते ही प्रह्लाद ध्यान में आ गए। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु राक्षस और प्रह्लाद आदमी। यह कैसे हुआ या कैसे हो सकता है? प्रह्लाद ईश्वर

भक्त है और हिरण्यकशिपु ईश्वर-विरोधी है। आज बहुत लोग ईश्वर को नहीं मानते हैं, खुद बुद्ध निरीश्वरवादी हैं। उन्हें तो राक्षस नहीं कहा जाता!

रावण का प्रसंग लीजिए। रावण को राक्षस कहा गया है। उसका भाई विभीषण ईश्वर भक्त है। तुलसी ने कहा- 'लंका निसिचर निकर निवासा। इहां, कहां सज्जन का वासा।' रावण के बारे में भी तुलसी ही आगे कहते हैं- 'उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती, पूजेउ सिव बिरंचि बहु भांती।' रावण भी काल्पनिक यथार्थ का नमूना है।

डार्विन ने जीवों के विकास का जो क्रम बताया है, उसमें कोई राक्षस योनि नहीं है। रावण पुलस्त्य ऋषि का नाती था और शिव और ब्रह्मा की पूजा किया करता था। अतः वह राक्षस नहीं था, लेकिन कर्म से राक्षस कहा गया।

हमारी महान आध्यात्मिक परंपरा में एक हैं नारद मुनि। खड़ाऊं पहन कर धरती-आकाश एक किए हुए थे। उनका खड़ाऊं ही जैसे हेलिकॉप्टर हो गया। वे ढाई घड़ी से ज्यादा कहीं नहीं रुकते। कहा जाता है कि उन्हें शाप दिया गया था कि ढाई घड़ी से ज्यादा रुकने से उनका माथा फट जाएगा। उनको भी अपने माथे की चिंता तो थी ही।

गोड्डा (संतालपरगना) से प्रायः पच्चीस-तीस किलोमीटर पर मंदार पहाड़ है। उसके बारे में प्रसिद्ध है कि इसी मंदार से देवताओं और दानवों ने मिल कर समुद्र-मंथन किया था।

मैं पूरी समझ और साहस के साथ कहता हूँ कि ईश्वर है ही नहीं। मैंने एक बार कह दिया- 'ईश्वर तो है, आप पूछिए कि वह कहाँ रहता है।' किसी ने पूछा, 'कहाँ रहता है?' मैंने कहा- 'वह दिमाग में रहता है।' काल्पनिक यथार्थ मनुष्य को बहुत परेशान करता रहता है, आज भी कर रहा है।

एक शायर ने कहा- 'फरिश्ते से बेहतर है इंसान बनना। मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज्यादा।' क्या बात है! फरिश्ते पूजे जा सकते हैं, लेकिन वे इंसान नहीं बन सकते। इंसान बनने में ज्यादा मेहनत की जरूरत पड़ती है। मैं सोचता हूँ कि यह कितना अच्छा होगा कि इंसान और इंसान का मुकाबला बंद हो जाए।

मुझे एक बात याद आ रही है। पैंतीस साल से कुछ ज्यादा हो गए, मैं मास्को गया था। मास्को में चालीस किलोमीटर दूर एक मठ था, जहाँ पादरी बनने की शिक्षा दी जाती थी। उस समय करीब छह-सात हजार खूबसूरत नौजवान लोग पादरी की शिक्षा पा रहे थे। वहाँ के संग्रहालय में दो सोने के मेडल थे, जिन पर सोवियत का चित्र बना था। मैंने पूछा, 'यह क्या है, अध्यक्ष ने कहा- 'इस मठ को सोवियत सत्ता की ओर से मिला पुरस्कार है।' मैंने पूछ दिया- 'क्यों दिया?' उन्होंने बताया- 'हमने देशभक्ति पूर्ण युद्ध में मठ की ओर से मदद की थी।' फिर मैंने पूछा- 'आप क्या पादरियों को लेकर लड़ने गए थे?' उन्होंने कहा- 'नहीं हम लड़ने नहीं गए थे। हमने मठ की ओर से राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में धन दिया था।' मैंने सोचा, हमारे देश के मठों-मंदिरों में भी अपार धन है, लेकिन उन्होंने कभी राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में धन नहीं दिया। तीन-तीन युद्ध भारत लड़ चुका है।

आप सोचिए इन बातों पर, काल्पनिक यथार्थ पर। सोचने से मुक्ति का रास्ता मिलने की संभावना बढ़ेगी। हमारे आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्त्तक भारतेंदु ने आह्वान किया था-

आवहु रोवहु सब मिलि भारत-भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा देखी न जाई।।

सब मिल कर रोने भी लगें तो भारत को दुर्दशा से निकालने का रास्ता दिख सकता है। मैथिली शरण गुप्त ने कहा- 'हम कौन थे, क्यों हो गए हैं और क्या होंगे अभी! आओ विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।'

हम सब मिल कर सोचें कि हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी। यानी पूरे इतिहास पर सोचें।

क्षितिज, जनशक्ति कॉलोनी, पथ सं.-24, राजीव नगर, पटना-800024 मो.9431102736

विश्व दृष्टि

चीनी कहानी

उड़ान

मो यान

अंग्रेजी अनुवाद : हॉवर्ड गोल्डब्लाट
हिंदी अनुवाद : **विजय शर्मा**

स्वर्ग और पृथ्वी को प्रणाम करने के बाद बड़ा, काला हॉन्ग जाई अपनी उत्तेजना छिपा नहीं पा रहा था। उसकी दुल्हन का चेहरा घूंघट में होने के कारण उससे छिपा हुआ था। लेकिन उसकी लंबी सुडौल बांहें तथा लचीली कमर बता रही थी कि वह नॉर्दर्न जिआओशौ टाउनशिप की लड़कियों से ज्यादा खूबसूरत थी। 40 साल के और बुरी तरह चेचक के दागों से भरे चेहरे वाला हॉन्ग जाई नॉर्थईस्ट का एक बहदुर कुआंरा था। उसकी बूढ़ी होती माँ ने उसकी शादी यानयान से उसकी बहन यानघुआ के एवज में करवा दी थी। यानघुआ अपने इलाके की वास्तविक सुंदरी थी, उसका विवाह यानयान के गूंगे बड़े भाई से हुआ था। अपनी बहन के बलिदान से हॉन्ग जाई बहुत प्रभावित था। उसने सोचा वह गूंगे के कैसे बच्चों को जन्म देगी। अपनी भावनाओं में भ्रमित अपनी नई दुल्हन के प्रति उसके मन में प्रतिकार का भाव था। गूंगे, यदि तुमने मेरी छोटी बहन के साथ कुछ उल्टा-सीधा किया तो मैं इसका बदला तुम्हारी बहन से निकालूंगा।

यह दोपहर का समय था जब हॉन्ग जाई की नई पत्नी ने दुल्हन के अपने कमरे में प्रवेश किया। शैतान बच्चों ने ईंट के बिस्तर के किनारे बैठी वधू को देखने के लिए खिड़की की दरार को ढंकने वाले गुलाबी पेपर में छेद कर लिए थे। पड़ोस की एक औरत ने हॉन्ग जाई का कंधा थपथपाया और खी-खी करते हुए कहा, 'चेचकरू, तुम बहुत भाग्यशाली हो! तुम्हें छोटी-सी कमलकली मिली है, नाजुक ढंग से छूना।'

हॉन्ग जाई के पाजामा में हलचल हुई। उसके चेहरे के दाग लाल हो कर चमकने लगे।

जब हॉन्ग जाई आंगन में चहलकदमी करते हुए रात का इंतजार कर रहा था, सूरज आकाश में स्थिर टंगा था। उसकी माँ ने उसे छड़ी से कोंचा और कहा, 'जाई, मेरी नई बहू में कुछ है जो मुझे तंग कर रहा है। सावधान रहना, कहीं वह भाग न जाए।'

'चिंता मत करो, माँ, यानघुआ के वहाँ रहते, यह कहीं नहीं जाने वाली। ये एक धागे से बंधी टिड्डी हैं। एक के बिना दूसरी कहीं नहीं जा सकती है।'

जब माँ-बेटा बात कर रहे थे, नई बहू दो लड़कियों के साथ आंगन में आई। हॉन्ग जाई की माँ अस्वीकृति में भुनभुनाई, 'कभी सुना है बहू अंधेरा होने से पहले बिस्तर से उठ कर पेशाब करने जाए? शादी नहीं चलेगी। मुझे लगता है, यह किसी फिराक में है।'

लेकिन अपनी पत्नी की सुंदरता के वश में हॉन्ग जाई अपनी माँ की चिंता साझा न कर सका। उसका चेहरा लंबोतरा, पतली भौंहें, ऊंची नासिका और फ़ीनिक्स की भांति तिरछी आंखें थीं। लेकिन जब उसने हॉन्ग जाई का चेहरा देखा, वह रास्ते में रुक गई, एक लंबे पल मौन रह कर एक चीख निकली और वह भाग पड़ी। लड़कियाँ उसकी बांह पकड़े आगे बढ़ीं, और चर्र-चर्र, उसका लाल गाउन फट गया, उसकी बांह की बर्फीली गोरी चमड़ी, पतली गर्दन और भीतर पहने हुए लाल कैमीसोल का सामने का हिस्सा नजर आया।

हॉन्ग जाई जड़ हो गया। उसके सिर पर अपनी छड़ी ठोंकती हुई उसकी माँ चिल्लाई, 'उसके पीछे जा, बेवकूफ़!'

उसमें हलचल हुई और वह उसके पीछे भागा।

यानयान गली में उड़ चली। उसके खुले बाल चिड़िया की पूंछ जैसे लग रहे थे।

'रोको उसे!' हॉन्ग जाई चिल्लाया, 'रोको उसे!'

उसकी चिल्लाहट लोगों को उनके घरों से बाहर गली में निकाल लाई और दर्जन से ज्यादा भयंकर कुत्तों को पागलपन में भौंकते खींच लाई।

यानयान एक लेन में घूमी और खेत की ओर चल दी, जहाँ गेहूँ की बालियाँ हवा में झुकी हुई थीं। उनकी फूलदार फुनगियाँ हरे समुद्र की लहरों की तरह हिल रही थीं। यानयान गेहूँ की कमर तक ऊंची लहरों को कुचलती हुई आगे बढ़ी, हरे के विपरीत उसका लाल कैमीसोल और दूधिया बांहें, गतिमान एक प्यारी-प्यारी पेंटिंग-सी थी।

दुल्हन शादी से भागे यह पूरे नॉर्थईस्ट गाओमी टाउनशिप के लिए शर्मनाक था। अत: गांव के पुरुषों ने गुस्से के साथ चारों ओर से उसका पीछा किया। कुत्ते भी हरी लहरों में कूद-फांद कर पीछा कर रहे थे।

जब आदमियों का घेरा कसने लगा, यानयान गेहूँ की लहरों में डुबकी लगा गई। हॉन्ग जाई ने राहत की सांस ली। पीछा करने वालों की सांस भारी और गति धीमी हो गई। हाथ से टटोलते हुए वे बहुत सावधानी से आगे बढ़ने लगे, जैसे मछुआरा जाल कसता है।

क्रोध ने उसका दिल जकड़ लिया, हॉन्ग जाई केवल यही सोच पाया कि ज्योंही वह उसकी पकड़ में आएगी, वह उसकी धुनाई करेगा।

अचानक एक लाल किरण गेहूँ के खेत से ऊपर उठी, नीचे की भीड़ को चकित और भ्रमित करती हुई। वे जमीन पर गिर पड़े। उन्होंने यानयान को देखा, हाथ हवा में फहराती, दोनों पैर खूबसूरत तितली की तरह जोड़े, वह गरिमामय ढंग से घेरे से ऊपर उठी।

जब वह अपनी बांहें लहराती, ऊपर मंडराती हुई उठी और फिर उड़ने लगी तो लोग मिट्टी के माधो की तरह जम गए। वह इतनी धीमी गति से उड़ रही थी कि वे लोग अगर उसके पीछे दौड़ें तो उसकी छाया पर पैर रख सकें। वह उनके सिर से मात्र छह-सात मीटर की ऊंचाई पर थी। लेकिन ओह, इतनी गरिमामयी, इतनी प्यारी। नॉर्थईस्ट गाओमी टाउनशिप में घटित हुई कई अनोखी बातें आप

सोच सकते हैं, लेकिन यह पहली बार हुआ था जब कोई स्त्री आकाश में उड़ी थी।

हादसे से उबरते ही लोग अपनी युक्तियाँ सुझाने लगे। कुछ घर भागे और बाइसिकिल लेकर लौटे और उसकी छाया का पीछा करने लगे, उसके जमीन पर आने की प्रतीक्षा करने लगे, ताकि उसे पकड़ सकें।

खेत में चारों ओर से चिल्लाते लोगों के बीच उड़ने वाली और नीचे उसका पीछा करने वाले, भागने और पकड़ने का ड्रामा करने लगे। शहर के बाहर से आने वाले लोग सारस की तरह अपनी गर्दन उठा कर आकाश के इस विचित्र दृश्य को देखने लगे। उड़न-स्त्री गजब की गरिमामयी थी, नीचे उसका पीछा करने वालों को दौड़ते हुए ऊपर देखना था, वे खेत में गिरते-पड़ते, भागती हुई सेना की तरह एक-दूसरे को कुचल रहे थे।

अंतत: यानयान शहर के पूर्वी किनारे पर पुराने कब्रिस्तान को घेरे पाइन पेड़ों के झुंड में सेटल हुई। करीब एक एकड़ को ढके हुए काले पाइन सैकड़ों ढूंह की निगरानी कर रहे थे, ढूंह जिनके नीचे नॉर्थईस्टर्न गाओमी के पूर्वज रखे हुए थे। पेड़ बहुत पुराने, सीधे-सतर और ऊंचे खड़े थे, उनकी फुनगियाँ नीचे उड़ते बादलों को बेधतीं हुई। पुराना कब्रिस्तान और काले पाइन का झुंड मिल कर टाउनशिप का सबसे पवित्र और सबसे डरावना स्थान था। पवित्र क्योंकि यह टाउनशिप के पूर्वजों का रहनवास था, और वहाँ होने वाली भूतही घटनाओं के कारण डरावना।

यानयान कब्रिस्तान के ठीक मध्य में सबसे ऊंचे और पुराने पाइन की फुनगी पर स्थित हुई। नीचे के लोगों ने वहाँ तक उसका पीछा किया। सब खड़े हो गए और ऊपर देखने लगे, जहाँ ऊंचे पेड़ों की शाखाओं में सर्वाधिक नाजुक और ऊंची फुनगी पर वह आराम कर रही थी। नाजुक शाख उसे सहारा दे रही थी, हालांकि वह अवश्य सौ पाउंड से ऊपर रही होगी। जो भी उसे नीचे से देख रहा था, यह उसके लिए चकित करने वाली बात थी।

एक दर्जन से अधिक कुत्ते अपना सिर उठा कर यानयान पर भौंक रहे थे।

हॉन्ग जाई चिल्लाया, 'नीचे उतर, इसी क्षण, वहाँ से नीचे उतर।'

कुत्तों के भौंकने और हॉन्ग जाई के चिल्लाने का उस पर कोई असर न हुआ। यानयान चुपचाप वहाँ बैठी रही, हवा की लहरों पर ऊपर-नीचे होती हुई।

कुछ बच्चे चिल्ला रहे थे, 'नई बहू, हे नई बहू, थोड़ा और उड़ कर दिखाओ न!' उन बच्चों के अलावा, नीचे खड़ी लाचार भीड़ जल्द ही ऊबने लगी।

यानयान ने अपनी बांहें उठाईं। 'उड़ी', बच्चे चिल्लाए, 'उड़ी, वो उड़ने जा रही है।' लेकिन वह नहीं उड़ी। इसके स्थान पर उसने अपने पंजों जैसी अंगुलियाँ अपने बालों में फिराई, जैसे चिड़िया अपने पंख साफ कर रही हो।

हॉन्ग जाई अपने घुटनों पर गिर पड़ा और उसने विलाप किया, 'भाइयो, टाउन के लोगो, किसी तरह उसे नीचे उतारने में मेरी सहायता करो। तुम्हें मालूम है, पत्नी पाना मेरे लिए कितना मुश्किल रहा है।'

ठीक उसी समय हॉन्ग जाई की माँ एक गधे पर चढ़ा कर वहाँ लाई गई। जानवर की पीठ से सरक कर वह दर्द से कराहती हुई जमीन पर लुढ़क पड़ी।

'कहाँ है वह?' बूढ़ी ने हॉन्ग जाई से पूछा। 'कहाँ है वह?'

हॉन्ग जाई ने पेड़ की फुनगी दिखाते हुए कहा, 'वह, वहाँ ऊपर है।'

अपनी आंखों को अपने हाथ की ओट में लेते हुए बूढ़ी ने ऊपर देखा जहाँ उसकी बहू पेड़ की चोटी पर टंगी हुई थी, 'राक्षसी, वह राक्षसी है!'

आयरन माउंटेन, टाउनशिप के प्रधान ने कहा, 'उसे नीचे लाने का उपाय करना है, राक्षसी हो या नहीं। इस तमाशे का अंत होना है, जैसे हर चीज का होता है।'

'बुजुर्ग', बूढ़ी ने कहा, 'कृपया इसकी जिम्मेदारी लो, मैं तुमसे भीख मांगती हूँ।'

मो यान

1955 में जन्म। 2012 में नाबेल पुरस्कार से सम्मानित चीनी कथाकार। इनकी तुलना काफ्का से की जाती है। 1987 में प्रकाशित उपन्यास 'रेड सोरघुम क्लॉन' के लिए विशेष रूप से जाने गए।

इसके उत्तर में आयरन माउंटेन ने कहा, 'सबसे पहले हम किसी को इसकी माँ, इसके भाई तथा यानघुआ को लाने नॉर्दर्न जिआओशौ टाउनशिप भेजेंगे। अगर फिर भी यह नीचे न आई तो हम यानघुआ को यहीं रख लेंगे, उसे वापस नहीं जाने देंगे। इसके बाद हम कुछ लोगों को तीर-कमान बनाने और लंबे बांस काट कर लाने के लिए भेजेंगे। अगर यह सब कारगर न हुआ तो हम कड़ा रुख अपनाएंगे। और हम इसकी रिपोर्ट स्थानीय शासन में करेंगे। चूंकि यह और हॉन्ग जाई पति-पत्नी हैं, सरकार अवश्य ही विवाह कानून लागू करेगी। ठीक है, हॉन्ग जाई तब तक तुम यहाँ पेड़ के नीचे से इस पर नजर रखो। हमलोग किसी को गॉन्ग के साथ भेजेंगे। अगर कुछ होता है तो अपनी पूरी ताकत से गॉन्ग बजाना। जिस तरह से यह व्यवहार कर रही है, मुझे पक्का विश्वास है कि यह किसी आत्मा की चपेट में है। हमें शहर जा कर कुत्ता मारना चाहिए ताकि जरूरत पड़ने पर कुत्ते का खून हमारे पास हो।'

भीड़ टुकड़ों में बंट कर तैयारी को अंजाम देने चल दी। हॉन्ग जाई की माँ अपने बेटे के पास रहने की जिद कर रही थी लेकिन आयरन माउंटेन अड़ा था, 'बेवकूफ मत बनो। यहाँ रह कर तुम कौन-सा तीर मार लोगी? अगर स्थिति बिगड़ी तो तुम बीच में फँस जाओगी। घर जाओ।' जब देखा कि तर्क करना व्यर्थ है तो बूढ़ी ने खुद को गधे पर चढ़ाने दिया और वह रोती-विलाप करती वहाँ से चली गई।

अब जबकि हल्ला-गुल्ला शांत हो गया था, हॉन्ग जाई, जो नॉर्थईस्ट गाओमी टाउनशिप का सबसे बहादुर व्यक्ति माना जाता था, को शांति खलने लगी। सूरज पश्चिम में डूब रहा था, हवा पेड़ों के बीच डोल और कराह रही थी। अपने सिर को नीचे गिरने दे कर, हॉन्ग जाई अपनी अकड़ी गर्दन को मलता हुआ पास की पत्थर की पटिया पर बैठ गया। जब वह सिगरेट जला रहा था, ऊपर से एक अशुभ हँसी तैरती हुई नीचे आई। उसके रोंगटे खड़े हो गए, सारे शरीर में ठंडी लहर दौड़ गई। तेजी से माचिस की तीली बुझाते हुए वह खड़ा हो गया, कई कदम पीछे हट कर उसने ऊपर फुनगी को देखा, 'मुझ पर अपना कोई तीर चलाने की कोशिश मत करो। बस मेरे हाथ लगने का इंतजार कर।'

डूबते सूरज की पृष्ठभूमि में उसके चेहरे को दमकाता हुआ, यानयान का लाल कैमीसोल आग लग रहा था। इसका कोई निशान न था कि अशुभ हँसी उससे आई थी। घोंसलों को लौटते एक झुंड कौवे वहाँ से गुजरे, उनकी धूसर बीट वर्षा की तरह गिर रही थी। गर्मागरम कुछ बीट उसके सिर पर भी गिरी। जमीन पर थूकते हुए उसे लगा कि कोई दुर्भाग्य उस पर गिरा है। पाइन का झुंड अंधेरे में डूबने लगा था, चमगादड़ पेड़ों के बीच से फड़फड़ाते हुए उड़ने लगे थे, लेकिन पेड़ का सिरा अभी भी रोशनी में चमक रहा था। कब्रिस्तान में लोमड़ियाँ बोलने लगीं। उसका भय लौट आया।

वहाँ चारों ओर आत्माएँ थीं। वह उनका अनुभव कर रहा था। उसके कान सब तरह की आवाजों से भरे हुए थे। अशुभ हँसी आ रही थी, हर बार उसे ठंडे पसीने से भिगोती हुई। उसने याद किया, अपनी मध्यमा के छोर को काटना बुरी आत्मा को भगाने का सर्वोत्तम इलाज है, उसने वही किया, तेज दर्द से उसका मस्तिष्क साफ हुआ। अब वह देख सकता था कि पाइन का झुंड उतना स्याह नहीं था, जितना

कुछ देर पहले उसे नजर आ रहा था। कब्रों के ढूह की कतार और सिरहाने के पत्थर उसे नजर आए। जाते सूरज की किरणों में वह पेड़ के तने देख पा रहा था। कब्रों के बीच कुछ छोटी लोमड़ियाँ खेल रही थीं। घास खाती हुई उनकी माँ बीच-बीच में अपने दांत चमका कर अपनी उपस्थिति जाहिर करती हुई उन्हें देख रही थी। अगली बार जब उसने आकाश की ओर देखा, उसने पाया कि यानयान हिली नहीं है, उसके चारों ओर वृत में कौवे थे।

दो पेड़ों के बीच से एक छोटा मरियल लड़का नमूदार हुआ। उसने हॉन्ग जाई को गॉन्ग, हथौड़ा, कुल्हाड़ी और एक बड़ा केक पकड़ाया। लड़के ने बताया कि आयरन माउंटेन तीर-धनुष बनाने की निगरानी कर रहा है, नॉर्दर्न जिआओशौ को लोग भेजे जा चुके हैं। टाउनशिप के नेता घटना को बहुत गंभीरता से ले रहे हैं। वे लोग जल्द ही किसी को यहाँ भेजेंगे। हॉन्ग जाई केक खा कर अपनी भूख शांत करे और निगरानी बनाए रखे। अगर कुछ होता है तो गॉन्ग बजाए।

छोटा लड़का चला गया तो हॉन्ग जाई ने गॉन्ग कब्र पत्थर पर रख दिया, कुल्हाड़ी अपने बेल्ट में खोंस ली और केक भकोसने लगा। ज्यों ही उसने खाना खतम किया, उसने कुल्हाड़ी निकाली और चिल्लाया, नीचे उतरती है, या नहीं? अगर नहीं, तो मैं पेड़ काट दूंगा।

यानयान की ओर से कोई आवाज नहीं आई।

अत: हॉन्ग जाई ने कुल्हाड़ी पेड़ में मार दी, जिससे पेड़ हिल गया। फिर भी यानयान से कोई आवाज नहीं आई। कुल्हाड़ी पेड़ में इतना धँस गई थी कि वह उसे बाहर न खींच सका।

हॉन्ग जाई ने सोचा, क्या यह मर गई?

अपना बेल्ट कस कर और जूते उतार कर वह पेड़ पर चढ़ने लगा। खुरदरी छाल के कारण चढ़ना आसान था। जब वह आधा चढ़ गया, उसने रुक कर ऊपर देखा। वहाँ से वह केवल उसके लटके पैर और शाखा पर टिका उसका पिछवाड़ा ही देख सका। उसने गुस्से से सोचा अब तक हमें बिस्तर में साथ होना था, लेकिन उसकी जगह पर तू मुझे पेड़ चढ़वा रही है। क्रोध से उसे ताकत मिली, और जैसे-जैसे तना पतला होता गया, शाखाएँ फूटती गईं, ऊपर चढ़ना आसान होता गया। एक स्थान पर पैर जमा कर उसने उसे पकड़ने के लिए तेजी से हाथ बढ़ाया। लेकिन ज्यों ही उसने उसके पैर का पोर छूआ, उसने एक उसांस सुनी और ऊपर की शाखाओं में कुछ हलचल अनुभव की और वह सुनहरी किरण हवा में उड़ चली। यानयान ने अपनी बांहें फड़फड़ाई और वहाँ से उठी। उसके चारों अंगों में हरकत हुई और उसके बाल हवा में लहरा उठे। वह आराम से दूसरे पेड़ पर सरक गई। हॉन्ग जाई यह देख कर सतर्क हो गया कि गेहूँ के खेत की अपेक्षा उसकी उड़ने की कुशलता बेहतर हो गई थी।

वह पहले की तरह एक नए पेड़ पर जा बैठी। गुलाबी सूर्यास्त की ओर मुँह करके। वह नए खिले गुलाब-सी लग रही थी। 'यानयान', हॉन्ग जाई ने अश्रूपूरित स्वर में पुकारा, 'मेरी प्यारी, घर आ जाओ और मेरे साथ संसार बसाओ। अगर तुम नहीं आई, मैं तुम्हारे गूंगे भाई के साथ यानघुआ को हमबिस्तर नहीं होने दूंगा।'

उसकी पुकार हवा में थी, तभी उसने अपने नीचे से पेड़ की डरावनी चरमराहट सुनी। डाल फट गई और वह जमीन पर मांस के लोंदे की तरह धप्प से गिरा। अपने पैरों पर उठने के पहले वह वहाँ काफी देर तक जमीन पर पड़ा रहा। फिर उठा और कुछ कदम सरक कर तने के सहारे बैठ गया। संभावित चुभन और दर्द के अलावा वह साबुत था- कोई हड्डी नहीं टूटी। उसने यानयान को देखने के लिए आकाश टटोला। उसे सिर्फ चांद दिखा, जिसकी पनीली किरणें पाइन की शाखाओं से छन कर कब्र के एक हिस्से पर पड़ रही थीं। वहाँ कब्र का सिरहाना था और यहाँ-वहाँ घास थी। यानयान चांदनी में नहाई हुई थी, मानो एक बड़ा पक्षी रात होने पर पेड़ की फुनगी पर बैठा हुआ हो।

पत्थर पर पड़े गॉन्ग की याद आते ही उसने उसे

उठा लिया, लेकिन हथौड़ा कहीं नहीं खोज पाया।

लालटेन, टॉर्च और फ्लैशलाइट के साथ हल्ला करती भीड़ पाइन झुंड में घुसी। पेड़ों के बीच की खाली जगहों पर अपनी रोशनी डालती और चांदनी को पीछे ढकेलती हुई।

भीड़ में यानयान की बूढ़ी माँ, उसका गूंगा बड़ा भाई और यानघुआ भी थी। उसने आयरन माउंटेन को भी देखा और साथ ही शहर से आए, अपनी पीठ पर तीर-धनुष लिए सात या आठ कसरती आदमियों को भी। दूसरे लोग लंबे बांस, या शिकारी बंदूक यहाँ तक कि जाल भी लिए हुए थे। एक खूबसूरत नौजवान मूंगिया यूनिफॉर्म में था, उसकी कमर में चमड़े की चौड़ी बेल्ट में सर्विस रिवॉल्वर उड़सी हुई थी। हॉन्ग जाई ने उसे लोकल पुलिसमैन के रूप में जाना।

हॉन्ग जाई के चेहरे पर खरोंच देख आयरन माउंटेन ने पूछा, 'यह कैसे हुआ?'

'ओह, कुछ नहीं।' उसने कहा।

'वह कहाँ है?' यानयान की माँ ने जोर से पूछा।

किसी ने ठीक उसके चेहरे को चमकाती हुई फ़्लैशलाइट पेड़ की फुनगी पर डाली। लोगों ने पेड़ की ऊपरी शाखाओं में हलचल सुनी, फिर एक काली छाया को चुपचाप उस फुनगी से दूसरी फुनगी पर सरकते देखा।

'हरामी!' यानयान की माँ ने सरापा। 'मैं जानती हूँ, तुमने मेरी बेटी को मार डाला है और इस विधवा और उसके अनाथ बेटे को कहानी बना कर सुना रहे हो। भला एक लड़की उल्लू की तरह कैसे उड़ सकती है?'

'शांत हो जाओ, चाची।' आयरन माउंटेन ने कहा। 'अगर हमने अपनी आंखों से न देखा होता तो हम भी विश्वास नहीं करते। अच्छा बताओ, तुम्हारी बेटी कभी किसी मास्टर से पढ़ी थी? कोई अनोखी विद्या सीखी है? चुड़ैल से संबंधित? जादूगरनी से?'

'मेरी बेटी ने कभी किसी से कुछ नहीं सीखा है', यानयान की माँ ने कहा, 'कोई अनोखी विद्या नहीं सीखी है। और न ही उसका किसी चुड़ैल या जादूगरनी से कोई रिश्ता है। जब वह बड़ी हो रही थी, मैंने कभी उसे अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। उसने सदा वही किया जो उसे कहा गया। सारे पड़ोसी कहते, मेरी बेटी कितनी अच्छी है। और इस अच्छी लड़की ने एक दिन तुम्हारे घर में गुजारा और अभी बाज बन कर पेड़ पर बैठी है। ऐसा कैसे हुआ? मैं चैन से नहीं बैठने वाली, जब तक मुझे पता नहीं चल जाता कि तुम लोगों ने उसके साथ क्या किया है। मुझे मेरी यानयान दो या फिर तुम लोग यानघुआ को कभी वापस नहीं पाओगे!'

'बहुत बकबक हो गई बुढ़िया', पुलिसमैन ने कहा। अपनी आंखें पेड़ के ऊपर रखो। उसने अपनी फ़्लैशलाइट पेड़ के ऊपर की छाया पर साधी और फिर उसे जला कर यानयान के चेहरे पर रोशनी फेंकी। उसने अपनी बांहें फैलाई और उठ कर दूसरे पेड़ पर सरक गई।

'तुमने उसे देखा, बूढ़ी काकी?' पुलिसमैन ने पूछा।

'हाँ', यानयान की माँ ने कहा।

'तुम्हारी बेटी है?'

'हाँ, मेरी बेटी है।'

'जब तक जरूरी नहीं हो जाएगा हम कोई कड़ा कदम नहीं उठाएंगे', पुलिसमैन ने कहा। 'उसे बात माननी चाहिए, तुम उसे वहाँ से नीचे आने को कहो।'

ठीक उसी समय, यानयान का गूंगा भाई उत्तेजना में गोंगियाने लगा और अपनी बांहें लहराने लगा, मानो अपनी बहन के उड़ने की नकल कर रहा हो।

यानयान की माँ रो रही थी, 'पिछले जनम में मैंने क्या किया जो यह मेरे सिर पड़ा है?'

'रोओ मत, बूढ़ी काकी', पुलिसमैन ने कहा। 'अपनी बेटी को नीचे उतारने की सोचो।'

'वह सदा से जिद्दी लड़की रही है। मेरी बात नहीं सुनेगी।' यानयान की माँ ने दुख से स्वीकारा।

'इन सब बातों का समय नहीं है, बूढ़ी काकी',

पुलिसमैन ने कहा। 'उसे नीचे बुलाओ।'

छोटे, बंधे डगमगाते पैरों से यानयान की माँ उस पेड़ के पास आई, जहाँ उसकी बेटी बैठी थी, सिर पीछे करके उसने रोते हुए पुकारा, 'यानयान, भली लड़की अपनी माँ की बात सुनो। प्लीज नीचे आ जाओ।

'मुझे मालूम है तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार हुआ है, लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता है। अगर तुम नीचे नहीं आई तो हम यानघुआ को नहीं रख सकेंगे और अगर ऐसा हुआ परिवार खतम हो जाएगा...।'

बूढ़ी फूट पड़ी और विलाप करते हुए अपना सिर पेड़ के तने पर पटकने लगी। पेड़ के ऊपर से एक खरखराती आवाज नीचे उतरी, पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट जैसी।

'बोलती रहो', पुलिसमैन ने गुजारिश की।

गूंगे ने अपनी बांहें हिलाई और अपने ऊपर ऊंची टंगी बहन पर जोर से गोंगियाया।

'यानयान', हॉन्ग जाई चिल्लाया, 'तुम अभी भी मनुष्य हो, हो न? अगर तुम्हारे अंदर थोड़ी-सी भी मनुष्यता बची है, वहाँ से नीचे उतर आओ।'

यानघुआ ने भी रोने में साथ दिया : 'ननदिया, प्लीज नीचे आ जाओ। तुम और मैं दोनों इस दुनिया में भाग्यहीन हैं। मेरा भाई बदसूरत है, लेकिन कम-से-कम वह बोल सकता है। लेकिन तुम्हारा भाई...। प्लीज नीचे आ जाओ, यह हमारा भाग्य है...।'

यानयान हवा में फिर से सरक गई और उसने लोगों के ऊपर आकाश में चक्कर लगाया। ठंडी ओस की बूंदें जमीन पर गिर रही थीं -शायद ये उसके आंसू थे।

'रास्ते से हटो, उसे कुछ जगह दो और उसे जमीन पर उतरने दो', आयरन माउंटेन ने भीड़ से कहा।

यानघुआ और बुढ़िया को छोड़ कर सब पीछे हट गए।

मगर वैसा कुछ नहीं हुआ, जैसा आयरन माउंटेन ने आशा की थी। उनके ऊपर हवा में चक्कर लगाने के बाद यानयान वापस फुनगी पर जा बैठी।

चांद पश्चिमी आकाश की ओर सरक गया था, रात गहरा रही थी। जमीन पर लोगों को थकान और ठंड घेरने लगी थी। मुझे लगता है हमें कठोर रुख अपनाना होगा', पुलिसमैन ने कहा।

आयरन माउंटेन ने कहा, 'मुझे फिकर है, भीड़ उसे कब्रिस्तान से भगा न दे। अगर हमने इसे आज नहीं पकड़ा तो बाद में बहुत मुश्किल हो जाएगी।'

'जैसा मैं देख रहा हूँ', पुलिसमैन ने कहा, 'वह बहुत दूर नहीं उड़ सकती है, मतलब अगर यह कब्रिस्तान छोड़ दे तो पकड़ना आसान होगा।'

'लेकिन अगर इसके परिवार ने हमारी योजना में साथ न दिया तो?' आयरन माउंटेन ने कहा।

'मुझे हैंडल करने दो', पुलिसमैन ने उसे ढाढस दिलाया।

उसने कुछ युवकों से बूढ़ी और गूंगे को पाइन के झुंड से बाहर ले जाने को कहा। रो-रो कर हलकान हुई बूढ़ी ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। दूसरी ओर गूंगे ने गोंगिया कर अपनी असहमति जताई, लेकिन पुलिसमैन के एक बार अपनी सर्विस पिस्तौल लहराते ही वह चुपचाप वहाँ से चला गया। अब मौके पर केवल पुलिसमैन, आयरन माउंटेन, हॉन्ग जाई और एक लंबा बांस लिए तथा एक जाल लिए दो जवान आदमी थे।

'बंदूक लोगों को सचेत कर देगी', पुलिसमैन ने कहा- 'अत: तीर-धनुष का प्रयोग करते हैं।'

'मेरी नजर कमजोर है', आयरन माउंटेन ने कहा, 'मैं यह नहीं करूंगा, अगर मेरा निशाना थोड़ा भी चूक गया तो वह मर सकती है। हॉन्ग जाई को यह करने दो।'

उसने बांस का धनुष और तीखी नोंक वाला पंख का तीर हॉन्ग जाई को पकड़ाया। उसने ले लिया, लेकिन गहन विचार में डूबा खड़ा रहा। 'मैं यह नहीं कर सकता', उससे क्या अपेक्षा की जा रही है, यह समझते ही उसने कहा। 'मैं नहीं कर सकता, मैं नहीं करूंगा। वह मेरी पत्नी है, है कि नहीं मेरी पत्नी?'

'हॉन्ग जाई', आयरन माउंटेन ने कहा, 'बेवकूफ़ मत बनो! तुम्हारी बांहों में वह तुम्हारी पत्नी है, मगर पेड़ पर टंगी हुई, वह कोई विचित्र चिड़िया है।'

'तुम लोग', पुलिसमैन ने चिढ़ कर कहा, 'कुछ कर नहीं सकते हो? अगर तुम लोग यहाँ खड़े हो कर केवल भुनभुनाने वाले हो, तो मुझे दो तीर-धनुष।'

उसने अपनी रिवॉल्वर उढस ली, तीर-कमान लिया, पेड़ की चोटी पर निशाना साधा और एक तीर उड़ा दिया। दबी आवाज ने बताया कि उसने निशाने पर तीर मारा है। पेड़ की चोटी सरसराई और लोगों ने यानयान को देखा, उसके पेट में तीर लगा था, वह चांदनी में ऊपर उठी और पास के छोटे पेड़ पर गिरी। जाहिर है, वह अब अपना संतुलन नहीं बनाए रख सकती थी। पुलिसमैन ने दूसरा तीर चढ़ाया, छोटे पाइन पेड़ पर लटकी यानयान पर निशाना साधा, और चिल्लाया, 'नीचे उतरो!' दूसरा तीर उसकी चिल्लाहट के समाप्त होने के पहले उड़ा, दर्द की एक चीख उठी और यानयान जमीन पर सिर के बल गिरी।

'हरामी', हॉन्ग जाई चीखा, 'तुमने मेरी बीवी को मार डाला...।'

जो लोग वहाँ से हट गए थे, वे अपनी लानटेनों और टॉर्चों के साथ वहाँ आए। 'मर गई?' उन्होंने चिंतित स्वर में पूछा। 'इसके बदन पर पंख हैं?'

बिना एक शब्द बोले आयरन माउंटेन ने कुत्ते के खून से भरी बाल्टी उठाई और यानयान के बदन पर पूरी उड़ेल दी।

विजय शर्मा, 326, सीतारामडेरा, एग्रीको, जमशेदपुर 831009 मो.9430381718

लघुकथा

आधुनिकताबोध

सुधीर निगम

आदम के बाग अदन में सेव का पेड़ खूब फला था। हौवा रोज एक ताजा फल तोड़ती और उसे आदम को खिलाने के लिए ले जाती। पर आदम किसी भी तरह वह वर्जित फल नहीं खाता।

हौवा को लगा कि आदम ऐसे नहीं मानेगा। उसने अपना 'गेटअप' बदला। पचास पत्तों के स्थान पर मात्र पाँच पत्तों की पोशाक पहनकर इठलाती हुई सेव लेकर आदम के सामने खड़ी हो गई। आदम हौवा को देखता रह गया। उसे पता नहीं चला कि कब उसने स्वयं हौवा के हाथ से फल ले लिया और खा लिया। जैसा कि विधाता ने कहा था वर्जित फल खाते ही वह पतित हो गया। पतित होते ही उसके भीतर आनंद की एक लहर दौड़ गई।

आदम ने हौवा से कहा, 'क्या एक फल और खिलाओगी?'

हौवा ने उंगली उठाते हुए कहा, 'वह रहा पेड़, जितने चाहो तोड़ो और खाओ। मैं तो चली।'

'कहाँ चली?' आदम ने पूछा।

हौवा ने हाथ हिलाते हुए कहा, 'नए आदम की तलाश में। तुम तो अब उपभोक्ता बन गए हो!'

मो.9839164507

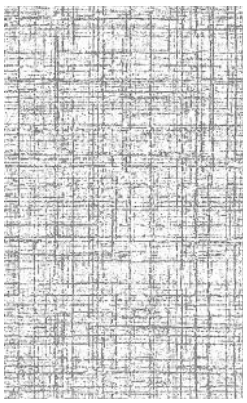

वातायन

पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम

(उपन्यास : भाग - सत्ताइस)

एकांत श्रीवास्तव

'अच्छा...'- दुर्गा से प्रेम ने कहा और कोठरी से बाहर निकल आई।

उसने देखा कि आँगन लोगों से भरा हुआ है। प्रेम ललककर आगे बढ़ी और उन लोगों के बीच सबके अभिवादन का उत्तर देती चबूतरे पर जाकर बैठ गई। उसने हंसकर बारी-बारी सबके चेहरों पर दृष्टि डाली- परदेसी, उमेन, डेरहा, सुखीराम, भुलऊ, गोकुल, गजरू, दुकालु, फागुराम, समारू, मोतीलाल, गनपत और महिलाओं के समूह में केकती, सिरवन्तिन, सुमरित, बुधियारिन, इंदरौतिन, दसरी, तुलसी, गुलापा, रामहीन, हटियारिन, गोमेश्वरी, दुलौरी उपस्थित थीं। बच्चों की कोई गिनती न थी। अम्मा के घर के दरवाजे सबके लिए सदा खुले रहते हैं। जो जब चाहे, बेरोकटोक चला आए।

'कइसे हस अम्मा' (कैसी हो अम्मा)- गोकुल ने पूछा।

'बने हों बेटा' (ठीक हूँ बेटा)- प्रेम ने उत्तर दिया।

गोकुल भी दुर्गा के साथ प्रेम का प्रिय छात्र था।

'अब जर त नइ धरे बहनी'- हटियारिन ने पूछा (अब बुखार तो नहीं आता न बहन?)

'नहीं'- प्रेम ने हँसकर हटियारिन की तरफ देखा- 'अब बुखार नहीं आता।'

'हमन ल बिकट चिन्ता रिहिस या...' - सुमरित बोली। (हम सबको बहुत चिंता थी) 'या' छत्तीसगढ़ में संबोधन के लिए प्रयुक्त होता है समवयस्क स्त्रियों या सहेलियों के बीच में।

'मे जानत हौं सुमरित' (मैं जानती हूँ सुमरित)- प्रेम ने कहा। सुमरित उसकी प्रिय सहेलियों में से एक थी। लगभग नियमित आना-जाना और मिलना था।

इस तरह सब बड़ी देर तक प्रेम से बातें करते रहे और प्रेम का हाल चाल लेते रहे। दुर्गा सबके लिए चाय बनाने गई तो गुलापा, तुलसी, दसरी और रामहीन भी उसके साथ मदद के लिए चली गईं। कप, गिलास, प्लेट, कटोरी में बारी-बारी इस जनसमूह ने चाय पी। इतने कप-प्लेट तो एक साथ किसी घर में उपलब्ध होते नहीं। चाय पीकर और प्रेम का हालचाल जानकर अधिकतर लोग विदा हो गए। प्रेम को स्वस्थ देखकर सबने प्रसन्नता प्रकट की। कुछ लोग जो प्रेम के अधिक निकट थे, वे बैठे रहे। उन्होंने जाने की जल्दी नहीं दिखाई। इनमें परदेसी, उमेन, सुखीराम, भुलऊ, गोकुल, केकती, सुमरित, दसरी, तुलसी और दुलौरी थे।

प्रेम को दिनों बाद अपार सुख मिला। सबसे मिलकर प्रेम को लगा जैसे इस लोक-गंगा में नहाकर वह पवित्र हो गई है। कौन कहता है कि वह अकेली है, इस विशाल कुटुम्ब के होते हुए। क्या हुआ जो बब्बू और रत्ना दूर हैं और उनका साथ मयस्सर नहीं... स्मृतियाँ हर समय हरी रहती हैं, वे कभी नहीं सूखतीं। उन्हें सावन-भादों की झड़ी दरकार नहीं। जेठ की प्रचण्ड धूप में भी वे सदाबहार हैं। प्रेम के लिए सब कुछ जैसे अभी कल की ही बात हो... कल ही बब्बू की नौकरी लगी थी... कल ही

बब्बू का ब्याह हुआ था...।

चौदह साल में तो घूरों के दिन भी फिर जाते हैं। फिर प्रेम तो एक इन्सान थी। बब्बू का ब्याह हो चुका है। बहू बुंदेलखंड की है- रत्ना। सागर-दमोह तरफ उसका मायका है। ब्याह से पहले प्रेम नारायणपुर जाकर बब्बू का घर ठीक-ठाक कर आई थी। वह आधा माह बब्बू के साथ रहती फिर खेती-बाड़ी का काम सँभालने तरजुंगा चली आती। बब्बू ने रुपये जोड़कर अपनी गाढ़ी कमाई से धीरे-धीरे चार एकड़ खेत गाँव में खरीद लिया था। प्रेम प्रसन्न थी। अब वह शुद्ध एक किसान थी। दुधारू गाय के साथ घर में बैलों की जोड़ी भी आ गई थी। खेती के काम में हल चलाने आदि के लिए बैलों की आवश्यकता थी। बैलगाड़ी भी धीरे से खरीद ली गई। अब खेतों में खरीफ की एक फसल ली जाने लगी। वर्षा पर गाँव की खेती निर्भर थी। मेड़ों पर अरहर-मूँग आदि दाल के पौधे उगा दिये जाते लेकिन छत्तीसगढ़ अंचल की मुख्य पैदावार धान ही था। यह अंचल धान का कटोरा कहलाता था। बब्बू निश्चिंत था कि अम्मा के कारण गाँव के घर, बखरी, गाय-बैल की देख-रेख भी ठीक से हो रही है और खेती भी सँभल रही है।

ब्याह के पहले तक प्रेम का आना-जाना नारायणपुर और तरजुंगा के बीच चलता रहा। ब्याह के बाद रत्ना के आ जाने से प्रेम ने अपने विवेक से नारायणपुर जाना कम कर दिया ताकि बेटा-बहू स्वतंत्र और बिना हस्तक्षेप का जीवन जी सकें। प्रेम का अधिकतर समय अब तरजुंगा में गाँववालों के साथ ही बीतने लगा। शासकीय सेवा, अवकाश की कमी और दूरी के कारण बब्बू और रत्ना का आना कभी-कभार तीज-त्यौहार में ही हो पाता। प्रेम किन्तु प्रत्येक समय इंतज़ार करती रहती। घर की सूनी दीवारों का रंग तो बब्बू और रत्ना के आने से ही खिलता था...।

प्रेम ने तय किया कि छेरछेरा पुन्नी (दानपर्व) के अवसर पर वह दुर्गा को सतघरा का मेला ले जाएगी। साथ में गाँव के कुछ चुने हुए उसके प्रियजन भी रहेंगे- मनबोध, गजरा, परदेसी, भुलऊ, गोकुल, सुमरित, केकती, तुलसी और दुलौरी। दुर्गा और प्रेम तो रहेंगे ही। दुर्गा का बहुत मन था। उसने यह मेला कभी नहीं देखा था और पिछले साल से हठ कर रही थी। पिछले साल किसी कारण से प्रेम दुर्गा को मेला नहीं दिखा पाई थी। तय किया गया कि कम से कम तीन बैलगाड़ियों में भरकर सब निकलेंगे, भोर के होते ही और शाम के ढलते-ढलते तक लौट आएंगे। दुर्गा बहुत खुश थी। अब वह प्रेम की बेटी जैसी ही थी। बचपन से वह प्रेम के पास रहकर ही बड़ी हुई है। प्रेम जैसी परवरिश उसके माता-पिता उसे दे भी कहाँ पाते। अतः उन लोगों ने निश्चिंत होकर दुर्गा को प्रेम के पास छोड़ दिया था। छोटा-सा गाँव था। पास में ही दुर्गा का घर था। दोनों घरों में निर्बाध दुर्गा की आवाज़ाही थी। उसके माता-पिता पुनिया और फागूराम भी जब-तब प्रेम के घर आ जाते थे।

सतघरा एक छोटा सा गाँव था- वन प्रांतर में बसा हुआ। तरजुंगा से लगभग बीस-बाईस कोस दूर। उसके बाद पहाड़ शुरू हो जाते। सतघरा का वास्तविक नाम सतधरा था। दरअसल यह सतधारा था। अर्थात सात धारा। इस जगह से एक साथ एक सोते के रूप में धरती के गर्भ से सात धाराएँ फूटती थीं। आगे चलकर ये धाराएँ सरगी नदी का रूप ले लेती थीं। सरगी नदी फिंगेश्वर के करीब से बहते हुए आगे बढ़ती और अनेक गाँवों से होती हुई महानदी में मिल जाती। यह एक छोटी सी नदी थी। सात धारा से ही सतधारा हुआ, फिर सतघरा। इसके करीब कुछ दूरी पर दो-चार घरों का एक छोटा-सा कमार आदिवासियों का गाँव बस गया था। इसी का नाम पड़ा सतघरा। प्रत्येक वर्ष छेरछेरा पुन्नी के अवसर पर इन सात धाराओं के सोते के पास एक छोटा-सा मेला लगता। आसपास के गाँवों से लोग इस मेले में आया करते थे।

प्रेम ने पुए बनाकर रख लिए। बाकी लोग भी ठेठरी, खुरमी, मुठिया जैसे देशज पकवान बनाकर रख लिए ताकि आते-जाते रास्ते में भूख लगे तो कलेवा उपलब्ध रहे। बड़ी सुबह बैलगाड़ियों में सब

निकल गए। तीन बैलगाड़ियाँ थीं। एक को मनबोध चला रहा था, दूसरे को परदेसी और तीसरे को गोकुल। मनबोध वाली बैलगाड़ी में गजरा, प्रेम, दुर्गा, सुमरित, केकती, तुलसी और दुलौरी बैठ गईं। गाड़ी आठ लोगों में भर गयी थी। सब एक-दूसरे को जगह देते पर सटे हुए बैठे थे। चूंकि मनबोध को छोड़कर सभी महिलाएँ थीं, अतः कोई कठिनाई नहीं थी। मनबोध ने बैलों को हाँका तो सबकी हँसी-ठिठोली चल निकली। प्रेम ने सबको मीठे पुए दिए। गाते-गुनगुनाते लोगों का जत्था बैलगाड़ियों पर चल पड़ा।

'तुम पुए बहुत अच्छे बनाती हो प्रेम, गोल, नरम और मीठे...' - सुमरित बोली।

प्रेम मुस्कुराई- 'बड़ी जल्दबाजी में बनाए हैं।'

'कुछ गुड़ सना आटा तो छूट भी गया'-दुर्गा बोली।

'दुर्गा न होती तो बन ही नहीं पाते पुए'- प्रेम ने कहा।

'वह देखो... नीलकंठ...' -दुलौरी ने इंगित किया।

सेहुड़ की डाल पर नीलकंठ बैठा था। सब उसे देखने लगे।

प्रेम ने एक बार देखा और दृष्टि फेर ली। नहीं देखना चाहती अब वह नीलकंठ। तब तो कम्बख्त दिखा नहीं, जब कुंज के साथ वह खेत-मैदान और वन में भटक रही थी।

मेला छोटा सा था। गाँव में इस छोटे मेले को मड़ई कहते हैं। एक तरफ मिठाई वालों की दुकानें थीं- उखरा (मीठी लाई गुड़ में पगी), बताशे, पेड़े, जलेबियाँ बिक रही थीं। दूसरी तरफ कपड़ों और मनिहारी (जनरल स्टोर और प्रसाधन की वस्तुएँ, साज-शृंगार के सामान) की दुकानें थीं। खिलौने, अनाज, फल, सब्जियाँ भी बिक रही थीं। चाट-गुपचुप के ठेले थे। उड़न खटोला था और एक चक्कर वाला झूला भी। मेले में बहुत शोर-शराबा था। धूल उड़ रही थी। फिर भी लोग घूम रहे थे, चीजें खरीद रहे थे, मिठाइयाँ खा रहे थे और झूला झूल रहे थे। झूलों में स्त्रियाँ और बच्चों की भीड़ थी। दुर्गा, तुलसी, दुलौरी और गजरा उड़न खटोला में बैठे। सुमरित और केकती प्रेम के साथ नीचे खड़े रहे।

'तुम लोग भी जाओ...'- प्रेम बोली।

'ना बाबा'- केकती ने कहा- 'झूला जब ऊपर से नीचे आता है तो ऐसा लगता है जैसे प्राण निकल रहे हों...'

'हाँ, डर तो लगता है...'- सुमरित ने समर्थन किया।

प्रेम हँसी। उसे चंदा की याद आई। बचपन में दोनों बहनें सहेलियों के साथ कितना झूलती थीं उड़न खटोले में जब भी मेला लगता था। तब भी सुमरित और केकती नीचे खड़ी रहतीं, तब भी दोनों डरती थीं। चंदा और प्रेम के लाख कहने पर भी झूले में नहीं बैठतीं। बड़ी पुरानी सहेलियाँ हैं- सुमरित और केकती बचपन की। सबका साथ धीरे-धीर छूट गया। इनका बना रहा। चंदा की स्मृति से प्रेम के हृदय में टीस-सी उठी।

कहाँ होगी चंदा, कैसी होगी। अपनी छोटी बहन की कभी खोज-खबर नहीं लेती। तरजुंगा भी वह कितने वर्षों से नहीं आई। चिट्ठी तो लिख सकती है। प्रेम ने कई बार अंतर्देशीय उठाया लेकिन जाने किस संकोच ने उसका हाथ पकड़ लिया। मन की बात मन में रह गई।

प्रेम ने गहरी साँस ली। ख़ैर। अब इस मेले में वह उदासी को पास नहीं फटकने देगी। उसने झूलती हुई दुर्गा को देखा। ईश्वर ने उसके पास दुर्गा के रूप में एक बेटी भी दे दी है। कितना करती है दुर्गा उसके लिए। कोई बेटा माँ का ऐसा ध्यान नहीं रख सकता।

उड़न खटोले से दुर्गा ने देखा कि कुछ दूर खड़ा गोकुल दुर्गा को मुग्ध भाव से निहारे जा रहा है। वह पहले लजाई। फिर झूठे क्रोध से आँख तरेर कर गोकुल को देखा। गोकुल हँसने लगा।

प्रेम ने दुर्गा की दृष्टि का अनुसरण किया तो हँसते हुए गोकुल को देखा। प्रेम मुस्कुराई।

तो दुर्गा के हाथ पीले करने का समय आ गया है।

मो. 9433135365

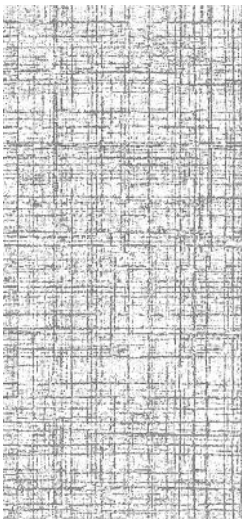

समीक्षा संवाद

स्त्री और दलित : पीड़ा की नदियाँ

यशस्विनी पांडेय

पवन करण के कविता संग्रह **'स्त्रीशतक'** में इतिहास, धर्म और पौराणिक मिथक के सौ स्त्री पात्रों को आधार बना कर लिखी गईं कविताएँ हैं। यह चर्चा अक्सर की जाती है कि प्राचीन सभ्यता में स्त्री का कितना ऊंचा स्थान था, लेकिन प्राचीन स्त्री पात्रों की वेदना, उनके सवाल, टीस कभी हमारे सामने नहीं लाई गई। महिलाओं से जुड़े बहुत से सवाल तब भी उतने ही गहरे, मारक, व्यापक थे, जबकि उन पर कान नहीं दिया जाता था। उन स्त्री पात्रों पर आज तक स्त्रियों के नजरिये से न कोई शोध हुआ है और न ही प्राचीन ग्रंथों या पात्रों का पुनःपाठ ही किसी ने किया है। पवन करण का यह कविता संग्रह हमारे सामने धर्म, पुराण और आख्यान से जुड़े ऐसे 100 स्त्री पात्रों के दर्द, संत्रास, कचोट, परतंत्र व्यक्तित्व और उनके द्वंद्व को हमारे सामने बेहद मार्मिक तरीके से लाने में सफल होता है। उनकी कविताएँ राजाओं की रानियों, बेटियों, पत्नियों, स्वर्ग की अप्सराओं, गणिकाओं और वेश्याओं के भीतर के नासूर को सदियों बाद आज बड़ी मुस्तैदी से पकड़ती हैं। साथ ही उस दौर के पुरुषों, राजाओं, महर्षियों को कटघरे में खड़ा करती जाती हैं।

इन कविताओं का एक सशक्त पक्ष यह है कि स्त्रियों की वेदना और टीस में डूब कर ये इतनी विद्रोही हो जाती हैं कि देवताओं तक को उनकी औकात दिखाने से बाज नहीं आतीं। यह कविता संग्रह उन पौराणिक स्त्री पात्रों का पुनःपाठ करता है जिन्हें स्त्री के नजरिये से देखा, सुना या पढ़ा नहीं गया। यहाँ कवि हर एक नक्काशीदार चौखट वाली अट्टालिका को शक की नजर से देखता है और चुपचाप उन अंधेरे कोनों में घुस कर महिलाओं के सदियों से बंदी बनाए गए सपनों, दम तोड़ती इच्छाओं, दिमाग भन्ना देने वाले द्वंद्वों को खोज निकालता है। पृथ्वी के पहले राजा पृथु की पत्नी अर्ची के सती होने के समय उसकी मानसिक स्थिति का बेहद मार्मिक चित्रण करते हुए पवन करण लिखते हैं, 'इस समय कोई नहीं हमारे बीच/

जिज्ञासा : प्राचीन और गुमनाम स्त्री पात्रों पर कविताएँ लिखने की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

पवन करण : जब मैंने धार्मिक-पौराणिक भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करना प्रारंभ किया, तब मुझे 'स्त्रीशतक' में शामिल स्त्रियाँ मिलती चली गईं। ये वे स्त्रियाँ थीं जिनसे मैं अब तक अपरिचित था। कुछ ही स्त्रियाँ ऐसी थीं जो भारतीय समाज में पहले से जानी जाती थीं। मगर ऐसी अनेक स्त्रियाँ थीं जो अपरिचय भोग रही थीं। मुझे लगा कि मुझे कविता लिख कर इन स्त्रियों के साथ हुए अन्याय को सामने लाना चाहिए।

पवन करण

जिज्ञासा : 'स्त्रीशतक' में दर्ज तीन ऐसे सशक्त महिला पात्रों के बारे में बताइए जिन्होंने आपको सबसे ज्यादा प्रभावित किया?

पवन करण : 'स्त्रीशतक' की सभी स्त्रियों का वैचारिक और प्रतिरोधी पक्ष मजबूत है। तीन स्त्री पात्र आपने पूछे हैं तो उनमें एक मृदा है। मृदा वह भीलनी है जो कुंती और पांचों पांडवों के षडयंत्र का शिकार होकर वारणाव्रत में जल कर मर गई। उसका क्या दोष था? वारणाव्रत उसका अपना घर था जहाँ कुंती और उसके पांचों पुत्रों के लिए अपने पांचों पुत्रों के साथ अपना जीवन गंवाना पड़ा। दूसरी हिडिंबा है। वन में उसकी सखियाँ उसे भीम के पास इंद्रप्रस्थ जाने के लिए कहती हैं। वह अपनी सखियों के समक्ष इंद्रप्रस्थ न जाने और घटोत्कच को लेकर अपना पक्ष रखती है। तीसरी कविता रेणुका है। पिता के कहने पर परशुराम ने उसका गला काट दिया था। विवाहित होते हुए प्रेम करने की इतनी बड़ी सजा? क्या एक स्त्री का मात्र प्रेम के कारण गला काटा जा सकता है?

जिज्ञासा : वह क्या चीज है जो आपकी स्त्री संवेदना को इतना तीव्र बनाती है और आपको बार-बार उसी के इर्द-गिर्द कविताएँ लिखने को प्रेरित करती है?

पवन करण : हर पुरुष के भीतर एक स्त्री होती है या ऐसी कविताओं के लिए कवि के पास स्त्री मन जरूरी है। मैं यहाँ अपनी पारिवारिक परिस्थितियों का जिक्र कर सकता हूँ। मैंने अपनी माँ और मुझसे छोटी मगर बहनों में सबसे बड़ी बहन को अत्यंत गरीबी में तपेदिक से जूझते और फिर मरते हुए देखा है। इनके लिए मैं कुछ नहीं कर सका था। पिता मिल मजदूर थे। वे जैसे-तैसे हम सबका पेट भर रहे थे। मैंने बाद में अपनी शेष तीनों बहनों को बुनियादी आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करते देखा। मेरा आस-पास भी संघर्ष करती औरतों से भरा था। इन सबका प्रभाव मेरी कविता में इतनी तीव्रता से सबको नजर आता हो।

जिज्ञासा : क्या ऐसी स्त्री-संवेदी कविताएँ समाज में स्त्रियों के प्रति संवेदना बढ़ाने में कोई भूमिका निभा सकती हैं?

पवन करण : बिलकुल। आप देखिए, स्त्री विषयक सिनेमा, साहित्य और कला तेजी से समाज का अपनी ओर ध्यान खीचते हैं। महान सिनेमा और साहित्य के केंद्र में स्त्री रही है। सबसे प्रसिद्ध पेंटिंगों में से एक मोनालिसा है। स्त्री विषयक कविताएँ मनुष्य के भीतर की नमी में बढ़ोतरी करती हैं। स्त्रियाँ मनुष्य हैं। उनकी इच्छाएँ और जरूरतें हैं। आप स्त्री-विषयक कविताएँ पढ़िए। वे आपको उस लोक में ले जाने में कामयाब होती हैं, जहाँ आप खुद को स्त्रियों के अपराधी पाते हैं।

एक ओर तुम्हारी चिता है/और दूसरी तरफ मैं,
मगर रीत यही है/प्रथा हाथ पकड़ कर मेरा/मुझे
आग की तरफ खींच रही है/मन में आ रहा है कि
मैं उसका/हाथ झटक दूँ, मगर मैं बच कर/किस-
किस को समझाऊंगी/कि अक्सर मुझे आग से/
बचाने वाले की चिता की आग में/कैसे जल सकती
थी मैं।'

'पुत्रवती भव' होने और 'दूधो नहाओ पूतो फलो' के विषैले आशीर्वाद ने कितनी मांओं के मादा भ्रूणों की उपेक्षा और हत्या की है, यह आज तक कोई नहीं जानता, न पिता जानते और मानते हैं कि अपने उत्तराधिकारी की अंधी चाहत में वे अपनी

कितनी बेटियों की हत्या के दोषी हैं! न भाई जानते हैं कि उनके स्वागत में कितनी बहनों को होम किया गया है! सिर्फ माँएं हैं जो ऐसे तमाम दहकते पलों की गवाह हैं। ऐसे ही विषय पर एक मार्मिक कविता है 'सौत्रामणि' (द्रौपदी की माँ)। इसमें सौत्रामणि के मन की उस वक्त की गहरी टीस को कवि ने दर्ज किया है, जब पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया जा रहा था। कवि लिखता है, 'पुत्र काम्येष्टि के यज्ञ में पढ़े जा रहे मंत्र/लातों के प्रहार बन कर/ बरस रहे थे मेरे गर्भाशय पर/अग्निकुंड से उठती गंध/विषैली थी मेरे लिए/यज्ञ में यरूतुरंग (बलि में चढ़ाया जाने वाला घोड़ा) की तरह/चढ़ाई जा रही थी मेरी कोख की बलि।'

पवन करण महल की किसी पुरानी और सहृदय सेविका की तरह महिला पात्रों के रंगमहल में घुस कर, उनके माथे और बालों को सहलाते हुए सारे राज चुटकियों में खोल लेते हैं। मन के ऐसे गहनतम राज भी जो कि उनके माता-पिता और सखियों को भी शायद पता न हों। इस संग्रह की एक सबसे बड़ी कमी यह लगती है कि यहाँ जिन पौराणिक महिला पात्रों के बारे में या किसी खास घटना के बारे में कविता लिखी गई है, वे ज्यादातर पाठकों को नहीं मालूम है, हालांकि सभी पात्रों के संक्षिप्त परिचय दिए गए हैं।

धार्मिक, पौराणिक, मिथकीय स्त्री पात्रों पर बड़े ही आधुनिक, मानवीय और स्त्री-संवेदी नजरिए से ये कविताएँ लिखी गई हैं। इन स्त्री पात्रों की हताशा, आक्रोश, द्वंद्व और वेदना से उपजे सवाल पुरुषों के दंभ और खोखले अभिमान पर चोट करके समाज को जबरदस्त अपराधबोध में डालते हैं। कवि का यह प्रयास खुद की (पुरुष वर्ग) प्रासंगिकता बचाए रखने की कोशिश भी नजर आता है। उन्हीं की एक स्त्री पात्र कहती है, 'अपनी कथाओं में आखिर/ कितनी स्त्रियों का वध करेंगे आप?' पवन करण एक बार फिर अपने स्त्री-मन से चौंकाते हैं और अभिभूत करते हैं।

आज के समय में दलित, महिला, आदिवासी, एलजीबीटी समूह आदि सभी हाशियाकृत लोगों का जिक्र मुख्यधारा के विमर्श में है। हमेशा परिधि पर रहने वाले इन लोगों में सबसे बड़ा तबका दलित वर्ग का है। भारत में बड़े तबके का मतलब है 'बड़ा वोट बैंक'। 'बड़ा वोट बैंक' मतलब उसे लेकर ज्यादा राजनीतिक हलचल, ज्यादा जिक्र। वोट बैंक होने के नाते दलित वर्ग आज के समय में खबरों और चर्चा में अक्सर बना रहता है। लेकिन उसके दुख को समझने की कोशिश कम होती है। **श्यौराज सिंह बेचैन** का कविता संग्रह '**भोर के अंधेरे में**' दलितों के अतीत, वर्तमान और भविष्य में झांकने की कोशिश करते हुए, समाज के भेदभाव पर खुल कर प्रहार करता है।

दलितों से जुड़े बहुत से सवाल आज भी अनुत्तरित हैं। आरक्षण के माध्यम से उनकी सामाजिक स्थिति बदलने की कोशिशें हुईं, पर वे एक तबके तक सिमट कर रह गईं। इस समुदाय का बड़ा तबका आज भी दिशाहीन, गरिमाहीन जीवन जीने को अभिशप्त है। उसके मन में सवालों का बड़ा जखीरा है, लेकिन ऐसा कोई नहीं जो सवालों के जवाब ढूंढने में उनकी मदद कर सके। ऐसे ही सवालों को दर्ज करती एक कविता 'तस्वीर' की कुछ पंक्तियाँ है, 'हम क्या करें/जब तुम हमें/हमारा बयान किसी/ थाने, कोर्ट में/पेश नहीं करने दे रहे हो/हम क्या करें जब/हमारे हाथों से लेखनी/और आंखों से आजादी की उम्मीदें छिन रही हों/हम क्या करें जब/वे हमारी मुक्ति की संभावनाएँ समाप्त कर/ खुशियाँ उजाड़ कर/सपनों को मार कर/रोते और रोते रहने की/ आजादी देते हों हमें।'

सवर्ण साहित्यकारों ने अक्सर दलित साहित्य को मुख्यधारा में जगह देने में कुछ नानुकर की है। वैसा ही तिरस्कार दलित साहित्यकारों के मन में सवर्ण साहित्य के प्रति है। इनका मानना है, और जो कि सही भी है, कि सवर्ण साहित्य ने समाज के एक बड़े दलित और पिछड़े तबके के जीवन, संघर्ष, सपनों को अपने सोच और साहित्य से सदा दूर रखा। इस कारण दलित लेखक सवर्णों के साहित्य

की तुलना मरे हुए मवेशी को ढोने से करता है। उसे लगता है कि मरा हुआ मवेशी भी बहुत काम का होता है, लेकिन सवर्ण साहित्य तो उससे भी गया-गुजरा है! इसी तेवर की कविता 'बेकार' में श्यौराज सिंह लिखते हैं। कवि अपनी आने वाली पीढ़ियों के प्रति कई चिंताओं से घिरा हुआ है। निजी संस्थानों की संख्या ज्यादा बढ़ती जाएगी, तब वे अपना भविष्य और भी ज्यादा असुरक्षित पाएंगे। मीडिया संस्थान, सामाजिक विकास संस्थान समाज के अलग-अलग वर्गों पर शोध और आंकड़ों का आकलन करते रहते हैं। लेकिन श्यौराज सिंह बुनियादी सवाल उठाते हैं कि जातिभेद से समाज को हुए नुकसान का जायजा लेने के लिए कभी कोई शोध क्यों नहीं हुआ? वे पूछते हैं, 'कितनी कल्पना चावला/परिवेश के अभाव में/वर्णभेद के दबाव में/जन्म लेने से पहले ही/भेंट चढ़ जाती हैं/क्या हम कभी/जन्म भेद से होने वाली/देश की क्षति का/आकलन करते हैं/हिसाब लगाते हैं?'

दलितों का जीवन कितना करुणामय, संत्रासपूर्ण और शापित रहा है और देश के एक बड़े हिस्से में आज भी है, यह कविता संग्रह दिखा देता है। इसमें दलितों के अतीत, वर्तमान और भविष्य के ब्लू प्रिंट हैं। उनके सवाल, उनको लेकर चिंता और ज्यादा मानवीय समाज के बनने की गहरी इच्छा

जिज्ञासा : आपकी ज्यादातर कविताओं में अमानवीयता और अन्याय के बरक्स एक जातिविहीन मानवीय समाज बनाने की अपील है। ऐसे समाज की तरफ बढ़ने के लिए आप किन तीन चीजों को सबसे जरूरी समझते हैं?

श्यौराज सिंह बेचैन : जाति भेद मिटाने के लिए जातियों की पहचान मिटाने की कवायद करना जरूरी नहीं है। दरअसल हर जाति के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, जीवन-शैली, स्वभाव, संस्कार, विरासत के अनुभव, समान अधिकार और सह-अस्तित्व को स्वीकार करना ही ज्यादा जरूरी है। विविधता को मिटा कर किसी एक में विलीन नहीं करना है। उनको जोड़ कर संयुक्त शक्ति बनाना है। लोकतांत्रिक गंतव्य की ओर बढ़ने और मानवीय मूल्यों के विकास के मार्ग में विभिन्न जातियाँ आपसी संपर्क में आती हैं। उनमें द्वेष-जलन कम होती है, प्रेम बढ़ता है। यह विवाह की संभावना पैदा करता है। जब अश्वेत और श्वेत के बीच विवाह हो सकते हैं, तो दलित और गैर-दलित के बीच क्यों नहीं हो सकते। बराक ओबामा के पिता अश्वेत थे और उनकी माँ-नानी गोरी थीं। पर जब तक जाति विद्वेष है, अंतरजातीय विवाह करने में दलित को खतरा है। हाल में दक्षिण भारत में एक सवर्ण युवती ने दलित से प्रेम विवाह किया तो उसके धनी पिता ने पांच करोड़ की सुपारी देकर दलित दामाद की हत्या करा दी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। जातिविहीन समाज का निर्माण और जातियों में समानता लाना मानवाधिकार है, संवैधानिक व्यवस्था है और प्राकृतिक न्याय भी है।

श्यौराज सिंह बेचैन

दूसरी चीज जरूरी है, जो व्यक्ति अंतरजातीय विवाह कर चुके हैं, उन्हें ईमानदारी से अपने अनुभव साझा करने चाहिए। क्या उनके ऐसा करने से जातिविहीन समाज बन रहा है या कमजोर जाति का व्यक्ति अपनी जाति पहचान मजबूत जाति में विलीन कर रहा है? दलित स्त्री अपने पति का शर्मा जातिसूचक नहीं हटा रही है। वह अपने नाम के साथ श्रीमती शर्मा जोड़ रही है। इससे जातिविहीनता नहीं आती, वर्चस्व में बढ़ोतरी होती है।

तीसरी चीज है, कृषि व्यवस्था जाति व्यवस्था का पोषण करती है। कृषि का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए।

जिज्ञासा : आपने अपनी एक कविता 'बेकार' में सवर्ण साहित्य की तुलना मरे हुए पशु से की

है, जिस तरह सवर्ण साहित्यकारों ने दलित साहित्य को सदा दोयम दर्जे का माना है। क्या उसी तर्ज पर दलित साहित्यकारों द्वारा सवर्ण साहित्य को हीन और उपेक्षा योग्य माना जा रहा है? यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है या फिर रोष, आवेश और कुछ-कुछ बदले की भावना से सोची-समझी प्रतिक्रिया है?

श्यौराज सिंह बेचैन : सवर्ण साहित्यकार अपने साहित्य में जातिभेद की समस्या उठाते हैं। प्रगतिशील कहलाने वाले आलोचक, सांप्रदायिकता में केवल हिंदू-मुस्लिम समस्या तक सिमटे रहते हैं। जातिभेद भी सांप्रदायिकता है, यह सामाजिक लोकतंत्र का शत्रु है। भारतीय दलित लेखकों को छोड़कर किसी भी हिंदू लेखन में जाति समस्या पर ध्यान नहीं दिया जाता तो कोई सुधारवादी या परिवर्तन प्रिय ऐसे साहित्य को पढ़ कर या पढ़ा कर क्या प्राप्त करे? मार्क्सवादी होकर भी कई जातिसूचक सरनेम से ही जाने जाते हैं। सुविधाभोगी सवर्ण लेखिकाओं के लेखन में हिंदू कोड बिल के निर्माता के प्रति सम्मान और कृतज्ञता नहीं दिखती, क्योंकि ये लेखिकाएँ भी जातिभेद के भाव से मुक्त नहीं होती हैं। अंबेडकर इनके लिए भी अछूत हैं।

और कल्पना भी यहाँ है। लेकिन अनुभवों की वैसी तीव्रता पाठकों को खास महसूस नहीं होती, जैसी इतने कंटीले और लहूलुहान कर देने वाले रास्ते से गुजरने के बाद अपेक्षित होती। कविताओं में आत्मालाप के बावजूद दृष्टि व्यापक और मानवतावादी है। भेदभाव से मुक्त समाज बनाने और विद्रूपताओं के अंधकार को हर लेने की तीव्र चाह भी इस संग्रह में मौजूद है।

दलित आज केंद्रीय राजनीति का हिस्सा जरूर बन गए हैं, लेकिन उनके बुनियादी मुद्दे अभी भी विमर्श से बहुत दूर हैं। बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि राजनीति के केंद्र में आते-आते उनके मुद्दे राजनीति के शिकार हो गए हैं। दलितों के मुद्दे, पीड़ा, जरूरत, गुस्सा, आक्रोश आदि को अभिव्यक्त करने वाले भी कहीं न कहीं राजनीति या फिर गुटबंदी के शिकार हुए हैं। **उम्मेद गोठवाल** का यह कविता संग्रह '**पेपलो चमार**' बिना किसी गुटबंदी में फँसे दलितों की पीड़ाओं को व्यक्त करने में सफल है। इसकी कविताएँ मार्मिक, प्रभावी और सशक्त है।

ये कविताएँ जिस पीड़ा और अपमान को महसूस करने के बाद लिखी गई हैं, लगभग उसी तरह की तकलीफ इन्हें पढ़ कर पाठक भी महसूस करता है। अपने ही देश, समाज के लोगों से मिली घृणा, वैमनस्य और हीनता को भोगने के बाद कवि अपने खास अंदाज से पूरी सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करता है। वह दलितों के प्रति क्रूरता के भाव को चरम पर ले जाने में सफल होता है और पाठकों के पुराने संस्कारों पर गहरी चोट करता है।

सबसे अच्छी बात यह है कि ये दलित शब्द खोखले राजनीतिक नारे नहीं हैं। इसके उलट ये दलित जीवन के मार्मिक चित्र इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि पढ़ने वाले के दिल में बहुत बार सिहरन पैदा हो जाती है। एक तरफ ये कविताएँ बेहद सादगी और भोलेपन से दलितों के नारकीय जीवन को परत-दर-परत उघाड़ती हैं, दूसरी तरफ उनमें जातिगत हीनता से निकलने और अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान के लिए लड़ने का जबरदस्त जज्बा भी पैदा करती हैं। इसी मिजाज की एक बेहद प्रभावी कविता है 'जाति 6'। उसकी पंक्तियाँ हैं, 'अब पूछना कभी/मेरी जाति/उसी वाहियात मुस्कान के साथ/अब नहीं, पड़ेगा मुझ पर घड़ों पानी/अब नहीं उखड़ेगी मेरी श्वास/खींच कर अपना सारा दम/चिल्ला कर कहूंगा/ हाँ,/ हाँ, मैं चमार हूँ।'

इस संग्रह की कविताएँ आरक्षण की बैसाखी के

सहारे जीवन भर चलने को सहज जीवन न मान कर खुल कर चुनौती देते हुए कहती हैं कि जिसमें दम हो वह दलितों को सिर्फ जीवन की बुनियादी जरूरतें सौंप दे, वे उसी समय अपना आरक्षण लौटा देंगे। वे लिखते हैं, 'अपनी सदियों की/संचित पूंजी/ तुम्हारी उच्चता/तुम्हारा धर्म/तुम्हारे देवता/सब पेपलो को सौंप दो/पेपला भी आपको/खुद का आरक्षण सौंपता है।'

जिस देश में पशु, पक्षी और प्रकृति की पूजा होती है, उस महान देश में एक इन्सान दूसरे इन्सान के प्रति इतनी भयंकर अमानवीयता पाल सकता है, यह न सिर्फ आश्चर्य बल्कि शर्म का भी विषय है। उम्मेद गोठवाल अपनी कविताओं के माध्यम से 'चमार' को इन्सान के रूप में स्थापित करने का जटिल बीड़ा उठाते हैं। वे अपनी कविताओं से सिर्फ द्रवित ही नहीं करते बल्कि समाज, सरकार, व्यवस्था, धर्म, ईश्वर आदि सत्ता के मठों से कई स्तरों पर सवाल करते हैं। उनकी नजर से वे दलित भी नहीं बचते, जो अवसर पाकर आर्थिक रूप से संपन्न होकर अपने ही दलित समाज के लोगों के

जिज्ञासा : क्या पेपलो कोई काल्पनिक पात्र है या एक जीवंत चरित्र है? इस तरह से किसी को संबोधित करके कविताएँ लिखने का खास अंदाज आपने क्यों चुना?

उम्मेद गोठवाल : पेपलो कोई काल्पनिक पात्र नहीं है। कवर पर जो फोटो है, वह यथार्थ में पेपलो है। दलित साहित्य की सबसे बडी कोई शक्ति है तो वह भोगा हुआ यथार्थ है। मुझसे कोई दस साल बड़ा पेपलो बचपन में मेरा सहचर था। रेवड़ चराते हुए पेपले के साथ मैंने अपनी छुट्टियों के कई लू-भरे भीषण दिन रोही में गुजारे थे। फसलों से भरे खेत की कई चाँदनी रातें हममें सांझा की थीं। साँझा दुख थे, विवशताएँ थीं और वे अमानवीयताएँ थीं जो किसी जाति विशेष में पैदा होने के कारण हम पर थोप दी गई थीं। जब मैं दलित कविताओं की इस किताब की भूमिका बना रहा था, तो मेरे जेहन में पेपलो था। उसके दुख थे, दर्द थे, भोगी जाने वाली यातनाएँ थीं। फिर दलित समाज में हर कहीं, हर गली, मोड़ पर आपको पेपलो खड़ा मिलेगा, अपने तमाम सुख-दुख के साथ जिंदगी को ढोता हुआ। विकास के तमाम प्रतिमानों को ठेंगा दिखाता हुआ। वह राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक बिसात का एक मामूली मोहरा होता है, जिसकी उपयोगिता केवल उसके वैसा ही बने रहने में होती है। संबोधन और संवाद की मेरी शैली हर पेपले को जगाने और वास्तविकता को पहचानने के लिए है।

उम्मेद गोठवाल

जिज्ञासा : मैं जानना चाहती हूँ कि आत्मविश्वास से भरी 'जाति-6' कविता लिखने का साहस आपको कहाँ से मिला?

उम्मेद गोठवाल : आजादी के इतने सालों बाद शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके बूते दलित जान पाया है कि जाति कोई दैवीय विधान नहीं है, बल्कि मानव रचित कुत्सित षड्यंत्र है। धर्म और समाज की ये बेड़ियाँ इतनी मजबूत हैं कि इन्हें तोड़ना नामुमकिन लगता है। ईश्वर और धर्म तार्किकता के आगे सदा हार जाते हैं। फिर भी वे हमारे संस्कारों में इस कदर भर दिए गए हैं कि हमारी मति मूढ़ हो चुकी है। आज धर्म का कारोबार दलितों के दम पर कायम है। यह धर्म और जाति ही है जिसने दलितों को दोयम तो क्या कहें अंतिम दर्जे का नागरिक भी नहीं माना और तमाम आर्थिक साधनों से वंचित रखा। दलितों के पास संपत्ति के नाम पर उसकी देह थी जिसका दोहन सदियों से होता रहा है। आज शिक्षा की अलख के कारण धर्म और जाति के इस तिलिस्म और कुत्सित षड्यंत्र को दलित ने समझा है। उसकी यह जातीय अस्मिता और गौरव की हुंकार है कि हाँ, मैं चमार हूँ। चमार होने में मुझ मेहनतकश

को शर्म क्यों हो, शर्म उन लोथड़ों को आनी चाहिए जो हमारी देह के लहू पर पलते रहे हैं।

जिज्ञासा : वे क्या तीन चीजें हैं जो दलित समाज को साहस और आत्मविश्वास से भरने में मदद कर सकती हैं?

उम्मेद गोठवाल : शिक्षा, हीनता का त्याग और आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव के साथ जातीय गौरव। हम जैसे हैं, वे अपने किसी कर्म की वजह से नहीं वरन उस कुत्सित षड्यंत्र के कारण हैं जो सदियों से जारी है। हम शिक्षित और संगठित होकर बदलाव की बयार ला सकते हैं। हमारी मुक्ति बाबा साहेब के दिखाए गए मार्ग से ही संभव है। हमें प्रतिरोध के मार्ग पर चल कर वैमनस्य का त्याग कर समता के लक्ष्य को पाना है।

जिज्ञासा : आरक्षण को आपने 'डेढ़ टांग वालों की बैसाखी' कहते हुए एक जगह लिखा है– 'बैसाखी आपको मुबारक/वह तो सदियों से मुड़ी/आधी टांग को/कर सीधा/खड़ा होना चाहता है/तन कर/तीर–सा'। एक दूसरी जगह आपने लिखा है 'संचित पूंजी/तुम्हारी उच्चता/तुम्हारा धर्म/तुम्हारे देवता/सब पेपलो को सौंप दो/पेपला भी आपको/खुद का आरक्षण सौंपता है'। इन सभी पंक्तियों में यह भाव मुखर हो रहा है कि अनचाही चीज की तरह दिए गए आरक्षण को दलित भी छोड़ना चाहते हैं, बशर्ते उन्हें सम्मान से जीने और बढ़ने की बुनियादी चीजें मुहैया हों। मैं यह जानना चाहती हूँ कि दलितों को मिले आरक्षण के वर्तमान स्वरूप से क्या आप संतुष्ट हैं?

उम्मेद गोठवाल : आज एक तयशुदा नीति के तहत आरक्षण को विवादित बनाया जा रहा है। आरक्षण कोई गरीबी हटाओ कार्यक्रम नहीं है, यह समतामूलक समाज की स्थापना का उपक्रम है। दलित समाज का सबसे बड़ा अभाव उसका संसाधनविहीन होना है। एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत दलितों को स्वामित्व से विहीन किया गया है, संपत्ति से विहीन करने के इस षड्यंत्र में धर्म और जाति ने प्रभावी भूमिका निभाई है। उत्तर–आधुनिकता के युग में भी हम धर्म और जाति की अंधगुफा में कैद हैं।

यदि आरक्षण के कारण दलित साधन संपन्न हो रहा है, जातीयहीनता को त्याग कर स्वाभिमान से जी रहा है तो हम आरक्षण का विरोध कर क्या उस बदलती स्थितियों का विरोध नहीं कर रहे हैं। आज भी स्थिति यह है कि बिना किसी आरक्षित सीट के दलित हमें स्वीकार नहीं है। उद्योगों या व्यवसाय में दलित सक्रियता के क्या आँकड़े हैं? आर्थिक संबलता और संलिप्तता में दलितों की स्थिति क्या है? ये सारे डाटा हैरान करने वाले हैं। षड्यंत्रकारी सक्रिय हैं, वे दलितों की देह का दोहन जारी रखना चाहते हैं।

आश्चर्य होता है कि विकास के तमाम प्रतिमानों के बीच जाति का जिन्न हमारे भीतर गहरे घुसा है जो हमें गाहे–बगाहे दलित उत्पीड़न के लिए उकसाता है। जब तक देश के अखबार दलित उत्पीड़न से भरे रहेंगे, जब तक साधन और स्वामित्व का युक्तिसंगत वितरण नहीं होता, आरक्षण को जारी रखा जाना चाहिए। अफसोस तब होता है जब शोषक, शोषित बन कर आरक्षण की मांग कर के और भ्रामक आँकड़ों से उसे विवादित बनाते हैं। वे दिखाते हैं कि देश की तमाम समस्याओं की जड़ आरक्षण है।

साथ सवर्णों की तरह पेश आने लगते हैं।

'पेपलो चमार' मूलतः राजस्थानी भाषा का पहला दलित काव्य संग्रह है जो लेखक द्वारा खुद हिंदी में अनूदित किया गया है। संभवतः हिंदी के दलित साहित्य में इतनी सशक्त कविताएँ अभी तक सामने नहीं आई हैं। इस कविता संग्रह की लगभग सभी कविताएँ पाठकों को उद्वेलित करती हैं, गहरी टीस पैदा करती हैं। दलितों की सदियों की पीड़ा को बेहद सूक्ष्मता से दर्ज करतीं ये बेहद संवेदी, सशक्त और सक्षम कविताएँ हैं। ये कविताएँ न सिर्फ

राजस्थानी बल्कि भारत की श्रेष्ठ दलित कविताओं में शामिल होने का दावा पेश करने में समर्थ हैं। इन दलित कविताओं में 'संवेदना की लय' है। इनमें पेपला का गढ़ा एक आकर्षक 'शिल्प' है। ये 'अनगढ़' नहीं हैं!

यशस्विनी पांडेय

युवा लेखिका। एक कविता पुस्तक 'शायद ऐसा हो' और एक यात्रा संस्मरण 'य से यशस्विनी य से यात्रा'। संप्रति : अध्यापन।

(1) **स्त्रीशतक** : पवन करण, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली। (2) **भोर के अंधेरे में** : श्यौराज सिंह बेचैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। (3) **पेपलो चमार** : उम्मेद गोठवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

221/4, एयर फोर्स स्टेशन, दरजीपुरा-390022, वडोदरा, गुजरात मो.8306396839

पत्रिका संबंधी विवरण

पत्रिका का नाम	:	**वागर्थ**
प्रकाशन का स्थान	:	भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक का नाम	:	**नंदलाल शाह** भारतीय भाषा परिषद 36, ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700017
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
पता	:	**भारतीय भाषा परिषद,** 36 ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700017
मुद्रक का नाम	:	सी.देवनाथ
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
पता	:	**सत्ययुग एम्प्लाइज को-ऑपरेटिव**, इंडस्ट्रीयल सोसाइटी लि., 13 प्रफुल्ल, सरकार स्ट्रीट, कोलकाता-700072
संपादक का नाम	:	**शंभुनाथ**
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
पता	:	भारतीय भाषा परिषद, 36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700017

मैं घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही है

(**नंदलाल शाह**)
प्रकाशक के हस्ताक्षर
भारतीय भाषा परिषद,
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700017

विचार

नेहरू और निराला

रामचंद्र गुहा

कई सालों पहले, समाजशास्त्री त्रिलोकी नारायण पांडेय ने मुझसे एक घटना का जिक्र किया था, जो जवाहरलाल नेहरू और हिंदी के प्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' से जुड़ी हुई थी। प्रधानमंत्री नेहरू तब अपनी चीन की यात्रा से लौटे ही थे और वे अपने गृहनगर इलाहाबाद में एक सभा को संबोधित कर रहे थे। वह इलाहाबाद, जहाँ तब निराला रहा करते थे और त्रिलोकी पांडेय तब छात्र हुआ करते थे। निराला उस सभा में अगली पंक्ति में बैठे हुए थे, खुला हुआ सीना, जिस पर अभी-अभी तेल की मालिश हुई थी। लगता था जैसे निराला, जो कुश्ती के दाँव-पेंच में भी महारत रखते थे, सीधे अखाड़े से होकर सभा में चले आए हैं। निराला अपनी उस अनूठी मुद्रा में सबके आकर्षण का केंद्र थे। नेहरू ने अपना भाषण शुरू करने से पहले अपने कुछ प्रशंसकों द्वारा पहनाई जा रही मालाओं को स्वीकार किया। फिर अपना भाषण शुरू करते हुए नेहरू ने एक किस्सा सुनाया, मैं चीन से लौटा हूँ और वहाँ मैंने एक कहानी सुनी। एक महान राजा और उसके दो बेटों की कहानी। एक चतुर और दूसरा मूर्ख। जब ये बेटे बड़े हो गए, तो राजा ने कहा कि मेरा मूर्ख बेटा राजा बनेगा, क्योंकि वह सिर्फ शासक बनने लायक ही है। पर मेरा चतुर और विद्वान बेटा कवि बनेगा क्योंकि वह महान कार्य करने के लिए बना हुआ है। यह कह कर नेहरू ने अपने गले से माला उतारी और श्रद्धा भाव से निराला के पैरों की तरफ उछाल दिया।

कुछ दस्तावेज हाल ही में मुझे मिले जो यह प्रमाणित करते हैं कि वास्तव में नेहरू निराला के प्रशंसक तो थे ही, उन्हें निराला से गहरा स्नेह भी था। यह प्रमाण मुझे मिला, डी.एस. राव द्वारा लिखे गए साहित्य अकादेमी के इतिहास, फाइव डिकेड्स के परिशिष्ट में। साहित्य अकादेमी का औपचारिक उद्घाटन संसद के केंद्रीय हाल में 12 मार्च, 1954 को हुआ था। अगले ही दिन यानी 13 मार्च को प्रधानमंत्री नेहरू ने साहित्य अकादेमी के नवनियुक्त सचिव कृष्ण कृपलानी को निराला के बारे में एक खत लिखा। नेहरू ने लिखा कि निराला पहले भी काफी सृजनात्मक लेखन कर चुके हैं। आज भी जब अपने रौ में लिखते हैं तो बेहतर ही लिखते हैं।

निराला की किताबें तब लोकप्रिय थीं और पाठ्य-पुस्तकों के रूप में भी उन्हें पढ़ा जाने लगा था। पर नेहरू के शब्दों में- निराला ने अपनी किताबों को महज 25, 30 या 50 रुपए पाकर प्रकाशकों को दे दिया। लगभग सारी किताबों

के कॉपीराइट वे (निराला) प्रकाशकों को दे चुके थे। नतीजा यह कि प्रकाशक तो निराला की किताबों को बेच कर अच्छा-खासा धन कमा रहे हैं, पर निराला मुफलिसी में जी रहे हैं। नेहरू ने अपने खत में लिखा कि निराला का उदाहरण प्रकाशकों द्वारा एक लेखक के शोषण का ज्वलंत उदाहरण है। उन्होंने अकादेमी से आग्रह किया कि वह कॉपीराइट कानून में कुछ ऐसे बदलाव करे, जिससे भविष्य में भारतीय लेखकों का कोई शोषण न हो। आगे नेहरू ने लिखा- इस दौरान निराला को कुछ आर्थिक मदद जरूर दी जानी चाहिए। यह आर्थिक मदद सीधे तौर पर निराला के हाथ में नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि वे तुरंत ही इसे किसी दूसरे जरूरतमंद को दे देंगे। असल में, वे अपने कपड़े और सारी चीजें ऐसे ही लोगों को दे दिया करते थे। उस समय महादेवी वर्मा और इलाहाबाद के एक साहित्यिक संगठन से जुड़े सदस्य निराला की जरूरतों का खयाल रखते थे और उनकी आर्थिक मदद भी किया करते थे।

नेहरू ने अकादेमी को सुझाव दिया कि निराला को सौ रुपए की मासिक वृत्ति दी जाय, और यह रकम निराला के की जगह महादेवी वर्मा को दी जाय। 16 मार्च 1954 को अकादेमी के सचिव ने नेहरू को जवाबी खत लिखा। सचिव ने लिखा कि उन्होंने अपने मंत्रालय के प्रमुख मौलाना अबुल कलाम आजाद से बात की है। उन्होंने इस बात के लिए अपनी सहमति दे दी है कि निराला को सौ रुपए की मासिक वृत्ति दी जाए और यह रकम महादेवी वर्मा को सौंपी जाए। सरकारी कामों और निर्णय लेने की गति को ध्यान में रखें तो सब कुछ मानो प्रकाश की गति से हुआ तीन दिनों के भीतर निर्णय ले लिए गए और उनका क्रियान्वयन भी कर दिया गया!

आज के भारत यह सोचना भी असंभव है कि एक कवि की तंगहाली से चिंतित होकर, कोई प्रधानमंत्री उसे आर्थिक मदद देने की बात सुझाते हुए खत लिखेगा और यह भी बताएगा कि यह किसके हाथों में या किसके जरिए दी जाए। पर यह उस हिंदुस्तान में बिलकुल संभव था जो नेहरू और आजाद का हिंदुस्तान था। यह प्रवृत्ति सिर्फ कांग्रेस पार्टी तक सीमित नहीं थी। डी.एस. राव ने साहित्य अकादेमी के अपने इतिहास में, कम्युनिस्ट सांसद हीरेन मुखर्जी और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के खतों का भी हवाला दिया है। वे साहित्य अकादेमी के आरंभिक वर्षों में उसकी गतिविधियों और कार्यों पर की गई टिप्पणियाँ थीं।

निराला की कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले डेविड रूबिन ने सेलेक्टेड पोयम्स ऑफ निराला में लिखा है कि निराला के काव्य में जितनी विविधता है, वह 20वीं सदी के हिंदी के किसी भी दूसरे कवि से कहीं ज्यादा है।

(अनुवाद: **शुभनीत कौशिक**)

कविता

अब तो मजबह कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए

आग बहती है यहाँ गंगा में झेलम में भी
कोई बतलाए कहाँ जाके नहाया जाए

प्यार का खून हुआ क्यों ये समझने के लिए
हर अँधेरे को उजाले में बुलाया जाए

मेरे दुख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए

जिस्म दो होके भी दिल एक हों अपने ऐसे
मेरा आँसू तेरी पलकों से उठाया जाए।

गोपालदास नीरज

बर्तोल्त ब्रेख्त की कविताएँ

आने वाले महान समय की रंगीन कहावत

जंगल पनपेंगे फिर भी
किसान पैदा करेंगे फिर भी
मौजूद रहेंगे शहर फिर भी
आदमी लेंगे सांस फिर भी।

युद्ध जो आ रहा है

युद्ध जो आ रहा है
पहला युद्ध नहीं है
इसे पहले भी युद्ध हुए थे
पिछला युद्ध जब खत्म हुआ
तब कुछ विजेता बने और कुछ विजित–
विजितों के बीच आम आदमी भूखों मरा
विजेताओं के बीच भी मरा वह भूखा ही।

जीवन संदेश

शब्दों का भी तापमान होता है। ये सुकून देते हैं और जला भी देते हैं!

…

प्रसन्न व्यक्ति वह है, जो निरंतर स्वयं का मूल्यांकन करते हुए सुधार करता है, जबकि दुखी व्यक्ति वह है, जो सिर्फ दूसरों का मूल्याकंन करते हुए हर समय उनकी बुराई, आलोचना, निंदा और ईर्ष्या करता है!

….

उस पछतावे के साथ मत जागिए जिसे आप कल पूरा नहीं कर सके। उस संकल्प के साथ जागिए जिसे आपको आज पूरा करना है।

…

परवाह, आदर और थोड़ा–सा समय– यही वह दौलत है जो अक्सर हम अपने से और अपने हम से चाहते हैं।

…

रिश्तों में निखार सिर्फ हाथ मिलाने से नहीं आता, विपरीत हालातों में हाथ थामे रहने से आता है!

…

रिश्ते अंकुरित होते हैं प्रेम से, जिंदा रहते हैं संवाद से, महसूस होते हैं संवेदनाओं से, जिए जाते हैं दिल से, मुरझा जाते हैं गलतफहमियों से और बिखर जाते हैं अहंकार से।

…

शुरुआत करने के लिए महान होने की जरूरत नहीं है, लेकिन महान होने के लिए शुरुआत की जरूरत होती है।

…

लाख जमाने भर की डिग्रियाँ हों हमारे पास, अपनों की तकलीफ़ नहीं पढ़ पाए तो अनपढ़ ही हैं हम जनाब!

…

लोग तारीफ करते हैं या निंदा इसकी चिंता छोड़ दें, सिर्फ एक बात सोचें कि ईमानदारी से जिम्मेदारियाँ पूरी हो गई हैं या नहीं।

…

जो लोग सवाल नहीं उठाते, वे पाखंडी हैं। जो सवाल नहीं कर सकते, वे मूर्ख हैं। जिनके जहन में सवाल उभरता ही नहीं, वे गुलाम हैं।

जब भी कुछ बोलें, देख लें कि प्लग लगा है या नहीं!

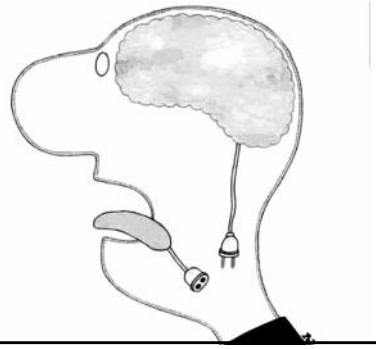

हास्य–व्यंग्य

सोशल मीडिया का हाल!

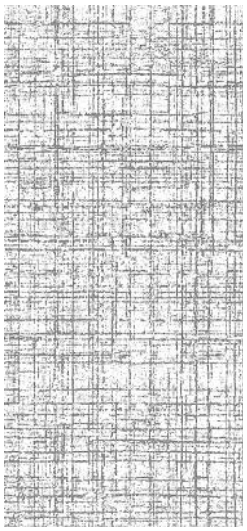

मत-मतांतर

नंदकिशोर तिवारी, वाराणसी : वागर्थ का जनवरी '19 अपने कलेवर के साथ बहुत भाया। संकीर्णतावादी राजनीति द्वारा किसी नेता द्वारा षड्यंत्र आसान हो जाता है। वहिष्कार करनेवाला कहीं खुद भी वहिष्कृत हो रहा होता है, यह युग सत्य है। शुभ्रा उपाध्याय की 'नीली साड़ी' अच्छी लगी। सरिता कुमारी की 'पोटली' में भी कुछ सार्थक सामग्री मिली। हंसा दीप की 'एक मर्द एक औरत' कहानी तथा शिवशंकरी की कहानी 'इमली के पत्ते' का अनुवादित स्वाद भी अच्छा लगा। मधु कांकरिया का माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी मिट्टी' ने तो अंत तक भिगो दिया। मानवीय संवेदना के ताप में निखरी यह कहानी वाकई लाजवाब है। पूर्वजों की जमीन की माटी, अपनी माटी का मोह, यह देश किसका है? यह सोचने पर मजबूर कर देता है।

श्रीप्रकाश शुक्ल, पंकज चतुर्वेदी, अशोक अंजुम, मानिक बच्छावत व जहीर कुरेशी की कविताएँ भी भाईं। निशा राय की रचना 'मी टू' भी शब्द और समय का सत्य दर्शा रहा है। नवारुण भट्टाचार्य की कविता 'गोली मारो' अच्छी लगी। परिचर्चा 'गांधी : निर्भयता की आवाज' में लोगों के वर्णित विचारों और विमर्शों ने भी अंधेरे में रोशनी का जुगाड़ किया। सभी रचनाकारों को हार्दिक धन्यवाद और आपके सामयिक सद्चिंतन के लिए साधुवाद।

के. के. सिंह, जगदल पुर : कोलकाता का चरित्र अज्ञेय ने जैसा खींचा है, वह इस शहर को भयावह घोषित करता है। कलकत्ता का साहित्यिक और सांस्कृतिक पक्ष समर्थ है। ...गांधी ईश्वर की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति थे। सरल और अहिंसा से सराबोर। गांधी इस सदी के पथ प्रदर्शक रहे। वागर्थ का जनवरी 2019 अंक गांधी प्रसंग के कारण विशिष्ट बन गया है। हिंदुस्तान महात्मा की चर्चा के बिना सत्य को उद्घाटित नहीं कर सकता। सत्य और अहिंसा इसके उत्स हैं।

मनोज कुमार, उत्तर 24 परगाना : 'वागर्थ' का फरवरी 2019 अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस अंक में जितेंद्र कुमार सोनी, तरसेम गुजराल और हरिप्रकाश राठी की कहानियाँ काफी अच्छी और पठनीय हैं। अनामिका की कविताएँ स्त्री-विमर्श की आवाज बन कर आई हैं। 'शिक्षा और लोकतंत्र' पर परिचर्चा ने शिक्षा के मूल्यों पर विचार के लिए नई खिड़कियाँ खोली हैं। इस परिचर्चा में भाग लेने वाले सभी शिक्षाविदों ने जो प्रश्न उठाए हैं उन पर चर्चा होनी चाहिए। शिक्षा व्यवस्था को स्तरीय बनाने के साथ-साथ लोकतांत्रिक बनाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। यह एक बड़ी विडंबना है कि अच्छी शिक्षा तक सिर्फ अमीरों की पैठ है, जबकि साधारण परिवार के बच्चे अपनी मातृभाषा में ही सबसे खराब शिक्षा पा रहे हैं।

किताबें

जाति के विरुद्ध गांधी का संघर्ष (गांधी दर्शन) : **निशिकांत कोलगे** (अनुवाद : **रमाशंकर सिंह**)
ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली : मूल्य : 495 रुपए
लेखक ने जातिगत भेदभावों से जुड़े गांधी के विचारों और बयानों का विश्लेषण किया है। गांधी ने भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया या वे वस्तुतः जाति प्रथा के खिलाफ थे? इस पुस्तक में सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को लेकर गांधी के विचारों को रखा गया है।

निशिकांत कोलगे

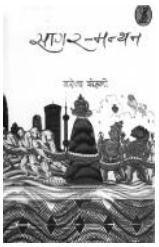

सागर-मंथन (उपन्यास) : **नरेंद्र कोहली**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : मूल्य : 695 रुपए
इसमें अनेक महाद्वीपों के लोगों के परस्पर गुंथे होने और एक नया संसार गढ़ने की कथा है। इसके चरित्र व्यक्ति नहीं हैं, प्रवृत्तियाँ हैं, जो अभी स्थिर नहीं हो पाई हैं।

नरेंद्र कोहली

उर्दू जिसे कहते हैं (आलोचना) : **सुल्तान अहमद**
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली : मूल्य : 500 रुपए
इस किताब में उर्दू जिसे कहते हैं, उसी तरह की हिंदी की चीजों का जिक्र है। उर्दू को हिंदी या हिंदी को उर्दू कह देने से दोनों एक नहीं मान ली जाएंगी। फिर भी दोनों की एक जमीन की तलाश इस पुस्तक में है।

सुल्तान अहमद

नुक्कड़ पर दस्तक (नुक्कड़ नाटकों का संग्रह) : **अरविंद गौड़**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : मूल्य : 395 रुपए
इस संग्रह के नुक्कड़ नाटकों में छोटी-छोटी मगर सीधी बातें हैं जो हम सभी महसूस कर सकते हैं, पर बोलते नहीं। इसमें भ्रष्टाचार, सामाजिक भेदभाव, पर्यावरण की दुर्दशा, बुढ़ापे की यातना, जाति-धर्म और इनसानियत की बातें हैं।

अरविंद गौड़

माँदर पर थाप (आदिवासी जीवन की कहानियाँ) :
संपादन : **अजय मेहताब, अनुज्ञा बुक्स,** दिल्ली, मूल्य : 250 रुपए
इसमें उन कहानियों को जगह दी गई है जो आदिवासी जीवन पर केंद्रित हैं। आदिवासी दुनिया को समग्रता में जानने-समझने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। यहाँ आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों को अलगाया नहीं गया है।

अजय मेहताब

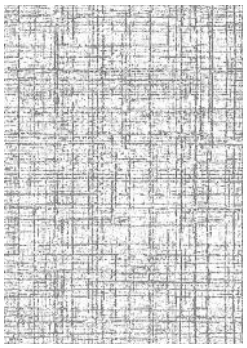

सांस्कृतिक गतिविधियाँ

राहुल सांकृत्यायन सबसे पहले मानवतावादी थे

भारतीय भाषा परिषद में राहुल सांकृत्यायन की 125वीं जयंती के अवसर पर आयोजित एक संगोष्ठी में रविभूषण ने कहा कि राहुल ने विज्ञान को देश का मार्गदर्शक माना था। आज का भारत राहुल और उनके युग के आदर्शों के एकदम विरुद्ध खड़ा है। संस्कृत की प्रोफेसर रत्ना बसु ने कहा कि तिब्बत से दुलर्भ बौद्ध ग्रंथों का उद्धार करना राहुल सांकृत्यायन का एक महान काम था। उनका प्रधान लक्ष्य ज्ञान को जनता तक पहुंचाना था। रवींद्र भारती विश्वविद्यालय के प्रो. हितेंद्र पटेल ने कहा कि राहुल से जुड़ने का अर्थ अपनी परंपराओं, सामाजिक विविधताओं और भारतीय संस्कृति से जुड़ना है। डॉ शंभुनाथ ने कहा कि राहुल सांकृत्यायन आज की तरह के टूरिस्ट न होकर यात्री थे। वे साहित्य को संकुचित अर्थ में नहीं लेते थे, बल्कि उसका संबंध इतिहास, दर्शन, संस्कृति और सामाजिक सक्रियता से मानते थे। वे धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध थे, क्योंकि इनके रहते समाज में लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती थी। राहुल सांकृत्यायन के सुपुत्र और सिक्किम विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रो. जेता सांकृत्यायन ने कहा कि राहुल जी में समय-समय पर वैचारिक परिवर्तन आया, पर उनकी मानवतावादी दृष्टि सदैव बनी रही। उन्होंने उनसे जुड़े संस्मरणों की डिजिटल प्रस्तुति की और कहा, जब तक उनके इतने चाहने वाले हैं राहुल का स्वप्न नहीं मर सकता। अध्यक्षता करते हुए पल्लव सेनगुप्ता ने कहा कि राहुल सांकृत्यायन ऐतिहासिक भौतिकवादी थे, जबकि आज अंध-भौतिकवाद छाया है। उन्हें कोलकाता से बड़ा प्रेम था। पीयूषकांत ने कहा कि कोलकाता राहुल सांकृत्यायन को कभी नहीं भूलेगा। परिषद के मंत्री नंदलाल शाह ने धन्यवाद दिया।

प्रस्तुति : ***मधु सिंह***

भोजपुरी गीतों का संरक्षण जरूरी है

मॉरीशस में भारत से वे लोग आए थे, जो पढ़े-लिखे भले न हों पर शिक्षित और संस्कारवान थे। मैं आज यहाँ कालीघाट के पास आदि गंगा को देखकर भाव-विह्वल हो गई। ये विचार मॉरीशस से आई भोजपुरी की विदुषी सरिता बुधु ने भारतीय भाषा परिषद के एक परिसंवाद में व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि भोजपुरी गीतों को संरक्षण जरूरी है। इसके लिए मॉरीशस में कई स्कूल खोले गए हैं। उन्होंने कहा कि मॉरीशस की भोजपुरी संस्कृति में जातीय संकीर्णता नहीं है।

परिसंवाद में हिस्सा लेते हुए डॉ.चंद्रकला पांडेय ने कहा कि मॉरीशस के लोग यात्रा पर गए भारतवासियों का स्पर्श करके अपनापा महसूस करते हैं। कथाकार मृत्युंजय कुमार सिंह ने कहा कि भारत की कविताओं और गीतों ने वहाँ के लोगों को हमेशा ऊर्जस्वित किया है। शंभुनाथ ने कहा कि मॉरीशस में भारतीयों का श्रमिक जीवन नारियल के खोल सा कठोर रहा है पर उनकी भावनाएँ नारियल के पानी की तरह मीठी हैं। भोजपुरी और हिंदी का संबंध मिट्टी और पेड़ की तरह है। पेड़ तभी बचेगा जब मिट्टी बचेगी। कार्यक्रम के आरंभ में परिषद की अध्यक्ष डॉ.कुसुम खेमानी ने अतिथियों का स्वागत किया।

प्रस्तुति : ***मधु सिंह***